



# वर्णी-वाणी

( तृतीय भाग )



सङ्कलपिता और सम्पादक—

विद्यार्थी नरेन्द्र

काव्यतीर्थ, शास्त्री, साहित्याचार्य, पी० ए०

प्रकाराक—

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

भद्रीनीघाट, कारी

# श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला काशी

ग्रन्थमाला सम्पादन और नियामक

शूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रथम संस्करण गीर नि० सं० २४८१  
मूल्य ३।।)

मुद्रक

मंगलाल गुप्त,

धर्मई प्रिंटिंग कार्टेज

घोस पार्क,

धनारम ।

# सिद्धि

पूज्य गुरुवर्य श्री पं. पद्मलाल शर्मा

साहित्य अकादमी का अध्यक्ष

जिन्होंने मुझ जैसे अल्पज्ञ को इस उच्च शिखर पर

साहित्य-शिक्षा का अद्भुत विस्तार कर

संरक्षण का साहित्य देना ही अपने धर्म कहा

मुझ पर सार्पित का शक्ति-संज्ञक

पूज्य गुरुवर्य

॥

कर शिष्य

॥

॥

॥

नरेंद्र

## प्रकाशकीय वक्तव्य

जैसा कि हमने 'वर्णोवाणी' द्वितीय भागका प्रकाशन करते समय सूचना किया था कि "अत्रिप्यर्भ वर्णोवाणीका जितना संकलन होता जायगा उसका प्रकाशन तासरे चौथे आदि भागोंके रूपमें प्रथमाला द्वारा हाता जायगा' इसरु अनुसार प्रसन्नताकी धान है कि वर्णोवाणी तासरे भागके प्रकाशन करनेका सौभाग्य अति शीघ्र प्रथमालाको प्राप्त हो रहा है। इस तरह आत्मरक्ष्याणार्था पाठकोंका पुन्यपाद वर्णोवाणीके उपदेशका एक और सुयोग आत्मरक्ष्याणक लिय प्राप्त हागा।

वास्तवमें आत्मरक्ष्याणका साधन जीवनकी पवित्रता है। लेकिन जीवनकी पवित्रता परात्मरक्ष्याणवृत्तिसे उन्मुख हाकर अधिक से अधिक म्यात्मरक्ष्याणवृत्ति अपनातम ही हो सकती है। जिसके लिये पर (पौडलिक) वस्तुओंमें अनासक्तिकी भावनाका अन्त वरणमें स्थान देते हुए उनका (पर वस्तुआका) यथाशक्ति त्याग करना आवश्यक है। जैसे तो वनावाणीके प्रत्येक भागमें इनकी प्रेरणा पाठकोंको मिलती है फिर भी तीसरे भागकी विशयना यह है कि श्रीपण्डित पद्मालालजी साहित्याचार्य सागरवाल्लोंकी सृष्ट्यामे उनक द्वारा संकलित और संपादित पुन्यपाद वर्णोवाणीका द्वा धर्म उपदेशात्मक भा इसमें जोड़ दिया गया है जो जनसमाजका अनासक्ति भावना और त्यागकी आर अमर होनेके लिये अत्यन्त स्फूर्ति प्रदान करता है। श्रीपण्डित पद्मालालजी साहित्याचार्यके इस प्रयत्न और कृपाके लिये प्रथमाला उनकी अतीव आभारी है।

दश धर्म उपदेशात्मकके अनिरिक्त तीसरे भागक द्वा विषयोंका संकलन और संपादन प्रथम और द्वितीय भागके समान भी विद्यामों

नरेन्द्रजीने किया है। पाठक श्री त्रिचार्यजीसे काफी परिचित हो चुके हैं अतः उनका विषयमें मुझ विशेष कुछ नहीं कहना है। यही बात मैं श्री पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीके विषयमें भी कहना चाहता हूँ। साथ ही इतना अवश्य कहूँगा कि वे ग्रन्थमालाके संयुक्तमंत्री पदपर भासोंन अवश्य हैं परन्तु मैं तो ग्रन्थमाला और पंडितजी दानारो पृथक् पृथक् माननेको तैयार नहीं हूँ। वास्तवमें कार्यकी दृष्टिसे ग्रन्थमाला पंडितजीके अतिरिक्त कुछ शेष नहीं रह जाती है।

इस समय भा. में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोगियोंके प्रति भा.भार प्रदर्शित किये बिना नहीं रह सकता हूँ। कारण कि उनका सहायकके बिना इसका सुचारु रूपसे प्रकाशित होना असंभव था।

श्री १०५ पृथपाद भात स्मरणीय गुरुदेव वर्णीना महोदयके विषयमें मुझ जैसे व्यक्तिका प्रशंसाके रूपमें कुछ लिखना भा.भा नहीं होता जब कि इस सब प्रयत्नके मूल सूत्रधार वे ही हैं। आध्यात्मिक जगत्में जो उच्चतम स्थान उनका प्राप्त है उसके कारण अस्त-करणसे यार-भार यहाँ आवाज निकलती है—

“तव पादौ मम हृदये मम हृदय तव पदद्वये लीन ।  
तिष्ठतु वर्णिमहोदय ”

माननीय पाठकोंमें मैं यही आशा रखता हूँ कि वे प्रथम व द्वितीय भा.गकी तरह इस तीसरे भा.गका भी समुचित रूपसे अपनावेंगे।

निवेदक—

सा० २८-८-५४  
माना

वशीधर व्याकरणाचार्य  
मंत्री श्री ग० वर्णी ग्रन्थमाला काशी।

पूज्य वर्णाश्रमके साहित्यसंश्रद्धात्रु पाठक सुपरिचित हैं। द्वितीय भागकी तरह तृतीय भाग क संकलन और सम्पादन करनेमें मैंने चा-  
 रान-दानुभव किया वह यथनाश्रित है। दोनों ही भागों की वैसी ही  
 शक्ति और तृतीय भागकी उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा—यह दोनों ही उसकी  
 लोकप्रियताके प्रताक हैं। यह लोकरुचियता मुझ इस भागकी तरह अनुभू-  
 त और पश्य भागका संकलित करनेकी प्रेरणा देगी ऐसा मरा विश्वास है।

प्रस्तुत भागमें ही यह सामग्रामें पूज्य गुरुदेव श्रीमान् पं० पद्म  
 लालजी साहित्याचार्य वसन्त महादय द्वारा सङ्कलित व सम्पादित  
 पूज्य वर्णाश्रमके नागरमे हुए प्रवचन इस पुस्तकका साङ्गोपाङ्ग बनानेमें  
 पूज्य गुरु धरदानके रूपमें प्राप्त हुए हैं। बिना सङ्कलन लिपिका सहायता  
 किये, तत्काल बिना कुछ लिख मन्दिरमें घर आकर समय मिलनेपर,  
 वर्णाश्रमके प्रवचनोंको उपाका तथा लिपिकरना पूज्य गुरुदेवकी  
 विलक्षण क्षमोपशम शक्ति द्वारा ही सम्भव था। इस पुण्य कार्यके लिये  
 मैं उनका चिरऋणी हूँ। १५ सामग्रामें पूज्य थाका मन् १९४०, ४८,  
 ५०, ५१ की दिनदिनी तथा गयामें हुए प्रवचन प्रमुख हैं।

पूज्य गुरुमण्डलका जिसकी सलाह पूर्व शुभाशीर्वादसे इस पुण्य  
 कार्यमें सफलता मिली श्रीमान् पूज्य पं० पृथ्वीचन्द्रना मिद्वान्तशास्त्री  
 महोदय जिनके निस्वार्थ सहयोगसे पुस्तक सङ्कलन सम्पादनमें सभी  
 प्रकारकी सहायता मिली तथा अन्य सभी प्रयत्न, पराह सहयोगियोंका  
 धामारी हूँ भार भविष्यमें इसी तरहकी कृपाका आकांक्षी एवं भूलोंके  
 लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

पूज्य वर्णाश्रमके सन्तका विमलवाणी—'वर्णाश्रम स जगज्जनक  
 कल्याण हा यही भावना है।

काशी  
 वर्णाश्रम  
 वि० सं० २०११

}

विद्यार्थी नरेन्द्र

## कहाँ क्या पढ़िये ?

१ कल्याणक्रीर	०	२३ पुर्यार्य	११३
२ आत्म चिन्तम	१३	२४ निमित्त और उत्पादान	११६
३ आमतस्य	१८	२५ स्वोपकार और परापकार	११९
४ मै	३७	२६ सारसमागम	१२०
५ आत्म-निगलता	३८	२७ पुण्यात्मा पापात्मा	१२१
० मानवताका कमीटी	५३	२८ समता	१२३
७ धर्म	४८	२९ निर्राहता	१२४
८ सहज मुखसाधन	५६	४ संसारके कारण	११
९ गति सदन	६१	३१ कषाय	१२६
१० त्याग	७५	३२ भागभङ्गारे अहङ्कार	१२८
११ दान	७७	३३ माया	१३०
१२ ध्यान	७८	३४ राजरोग राग	१३१
१३ धर्म	७८	३५ खेह	१३४
१४ महावारस-देग	७९	३६ मोह महाभट	१३७
३ मुक्तिमांद्ग	८१	३७ विगाच परिग्रह	१४६
१६ सम्यग्दर्शन	९०	३८ परसमागम	१६०
१७ ज्ञानगुणराशि	९२	३९ सङ्कल्प विकल्प	१६५
१८ स्वाध्याय	९७	४० इच्छा	१६७
१९ संयम	१०१	४१ आतुलता	१७०
२० भक्ति	१०१	४२ मूर्खता	१७०
२१ मानवधर्म	१०३	४३ चिन्ता	१७१
२२ महाभारत साधन	१०५	४४ मिथ्यात्व	१७२



४५	सङ्कोच	१७३	५९	भयंकर भूल	२०३
४६	हाकप्रशसा	१७३	६०	प्रामोकी ओर	२०४
४७	भाजन	१७६	६१	मूक्तिमुधा	२०५
४८	पराधानता	१८०	६२	वर्णा उपदेशाञ्जलि	
४९	हु ग	१८१	६३	वर्णा जयस्ती	२३०
५०	चृष्णा	१८३	६४	विनोवा जयती	२३६
५१	हिंसा	१८३	६५	ससार चक्र	२४४
५२	स्वतंत्रताके मुप्रभातमें	१८४	६६	गार्त कर्हो	२५४
५३	दशका दुर्भाग्य	१८८	६७	त्यागियों और विद्वानोंसे	२६०
५४	घमक नामपर	१९०	६८	द्रव्य और उनके परि णामका कारण	२६४
५५	उच्चता और नीचता	१९७	६९	उपदेश लहरी	२९८
५६	स्त्रियोंकी समस्याएँ	१९९	७०	वर्णा प्रयचन	३०६
५८	अभ्युत्थकी धार	२००	७१	दैनदिनीने पृष्ठ	३४५
५८	नशानियेध	२०२			

घर्षि-घर्षि

[ फल्याण-कुटीर ]





# वर्णी-वाणी

## तृतीय भाग

मङ्गलाचरण

निरुन्दो विद्याना, सरुलनिलयो धमेतपमाम्,  
निधि कल्याणाना गुणगणचय पृज्यचरण ।  
यतिस्थान वाचा कप्रिरगणाना श्रमहर',  
गुर्नर्णी पृज्यो भवतु भवता नित्यमुत्तद ॥

## कल्याण कुटीर

८ मग निमल भावनाकी चेष्टा करो। परापकारकी भावना भा आत्मापकारसे अनुम्युति रखता है। बातोंमें न सरोपकार होता है न परोपकार होता है। कायम उग्रम करनेमें सरोपकार होता है। आत्म गल्पवादीकी अपेक्षा एक मिनट भी उपयोग को निमल बनाने का प्रयत्न बहु कल्याणकारक होता है। निम दिन यह कायम परिणत हो जायगा अनायाम ही आत्म कल्याण हो जायगा।

( ११।१।४७ )

२ तत्र तत्र मनुष्य अपने कर्तव्यसे विमुक्त रहता है तत्र तत्र आत्मात्कप करनेमें असमर्थ रहता है। कल्याणका मार्ग अत्यन्त सरल और सज्जिदित है परन्तु हम उसे अति दूर और कठिन मानकर निरन्तर भयभीत रहते हैं। नाना प्रकारके मनुष्यों के पास जाते हैं, उनकी सुश्रूषा करते हैं, मिलता कुछ नहीं, परन्तु आशा लगी रहती है। इसे प्रकार जम गया देते हैं।

( २।२।४७ )

३ परकी निंदा प्रशामाम हृष-विषाद करना अधम पुरुषोंका कर्तव्य है। यदि कल्याण मार्ग चाहते हो तो इन विघ्नोंको ढालो।

( २५।३।४७ )

४ सबसे निमम भाव होकर सम्पूर्ण उपयोग शास्त्र म्या ध्यायम लगाओ, गल्पवाद को समय मत दो, यही तुम्हारा कल्याणम सहायक होगा।

( २०।४।४७ )

५ अपना कल्याण करनेम आपही शरण हैं। अन्यको शरण मानना मोही जावोंका प्रणाला है। मोहा जीव जा न करे सो अल्प है।

( २३।४।४७ )

६ जो नियम करो पूजापर परामर्श करके करा। यदि कोई धिरेकी बुद्धिमान उमे अनाधश्यक वनलाये तो त्याग ले। मया परि नियम तो यह है कि आत्माको पर पदार्थमि रक्षित रक्वो। कल्याणका उपादानता व अकल्याणकी उपादानता आमामे ही है अत परकी निमित्तताको निमित्तता हा जाना। इत्यसे पदावाका मनन करो, परको समझानेकी अपेशा अपनेका समझाओ। इसीम कल्याण है।

( २५।४।४७ )

७ अतरङ्गकी शुद्धिमे बहिरङ्ग शुद्धि कारण नहीं। बहिरङ्ग शुद्धिकी उत्पत्ति भी अतरङ्ग कारणोंसे हाता है अत जय अतरङ्ग मलिन है तत्र बहिरङ्गम भी आचार मलिन रहता है। बहिरङ्गम जो ब्रह्मचय पालन करना है उसको यह भय रहना है कि मेरी आत्मा निश्चय न कहलाय। तिनको निष्ठाका भय नहीं व अनाचारसे नहीं डरते। परमार्थसे तिनको आत्मकल्याण करना है वे लोककी अपेशान करके ही आत्महित म प्रवृत्ति करते हैं।

( २७।४।४७ )

८ समागममें महान दुःख है। यदि मुग्य चाहते हो तो इमे छोड़ो। कल्याणका मार्ग तो आत्माक है। आत्मा एकाकी है, इमका कोई दूमरा साथी नहीं।

( १०।५।४७ )

९ कल्याणका मार्ग अति सुलभ है। न तो किसीसे प्रीति करो और न किसीसे अप्रीति करो। जय यह निश्चय हा गया कि

न तो कोई मेरा शत्रु है, न मित्र है तब उन पदार्थासि विमलिये सम्प्रथ रचना ?

( २।१।४७ )

१० आत्माना कन्याण तो निरपन्न वृत्तिम हैं। वह तो दूर रही, वदुत मनुष्य तो श्रद्धामे भा शूय हैं।

( ७।१।४७ )

११ यदि कन्याणकी कामना है तो निरपन्न रहो। अपेक्षा करना हा ससारका कारण है।

( ९।१।४७ )

१२ सभी आत्म कन्याण चाहते हैं परंतु उह अनुकूल उपदेश नहीं मिलता। वक्त जा है व यह चाहते हैं कि विशिष्ट मनुष्य प्रसन्न हा जाय, जनना कहीं भी नार।

( २०।१।४७ )

१३ आनन्दल रावसी भोजन मिलता है, मात्विभ भोजन उदा मिलता। इसका मूल कारण हमारी दुर्बलता है, रमनेन्द्रियकी लम्पन्ता है। कल्याणका भागे तो निमत्ताता है।

( २२।१।४७ )

१४ मनुष्य प्राय कन्याणमागम जाना चाहते हैं, परिस्थि तिर्यो वापर है। यह भी हमारा दुर्बलता है। जन्मक कपायाकी जातिमे हम परिचित नहीं निरंतर दुःखनि पात्र जने रहेग। यदि कन्याणकी प्रयत्नेन्द्रा है तब इन कपायोंका कृश करनेकी कोशिश करा।

( २५।१।४७ )

१५ परिणाम ही कन्याण ( नित्य मुग् ) का पाधक है। विचार आत्माना न भाव है निममे आत्मा कभी रागी होता है, कभा द्वयी होता है, कभी विद्वत हाता है तो कभी ह्वित होता है,

निरन्तर आलित रहता है। अतः ऐसा भावनाको अपनाओ जो यह मिथुन भाव मिट जावे।

( २६।७।४७ )

१६ जो मनुष्य परसो प्रमत्त करनेकी चेष्टा करता है वह अपनेको कल्याण पथसे दूर करता है। कल्याणका पथ तो निवृत्ति में है। निवृत्ति भाग बड़ा है जो पर पन्थायम आत्मबुद्धि मिटाने। पर पन्थायकी परिणति पराधीन है, उसे अपनाने की चेष्टा करना अघाय है। अघायमे आत्मकल्याण होना कठिन है।

( २४।८।४७ )

१७ कल्याणका भाग त्यागही में है। हम लाग जो कहते हैं यदि शताश भी उसका पालन कर तत्र कल्याणका भाग सुतम हो जावे।

( १७।९।४७ )

१८ ममार दुःखका पिण्ड है, इसमें कल्याणका भाग प्राप्त करना सरल नहीं और यदि जगतसे पीठ पर ल तत्र मद्दज ही है। अभिप्राय ही ता बदलना है, वह स्वाधानताकी बात है। स्वाधीनता स्वतन्त्रताम है।

( ७।१०।४७ )

१९ बहुत मनुष्योंकी दृष्टिआत्मकल्याणकी ओर है परन्तु जा प्रयास है वह अनुकूल नहीं। परसे चाहते हैं यही बड़ा दुष्टि है। इने त्याग देत्र आनही कल्याण पास है।

( १०।१०।४७ )

२० आत्मकल्याणकी चर्चा तो सब करते हैं और बड़े-बड़े व्याख्यान देत हैं परन्तु कल्याणमागम गमन करनेवाले ही हैं।



“अनापना-व वाचालाः मुलभाम्युर्वृधोचिता ।  
दुर्लभाद्यन्तराद्रीस्ते जगदस्युनिर्हीर्षवः ॥”

अथात् घालनना मनुष्य और गवननना मेघ ढहुत हैं परन्तु  
अन्तरङ्गम आद्र मेघ और मनुष्य जो ससारना उडार करनेवाल हैं  
घ ढहुत दुलभ हैं ।

( २१११४० )

०१ समयना मनुष्ययोग कल्याणपथना माधय है ।

( १०११४८ )

०२ यदि अपना कल्याण करनकी वाञ्छा है ना अपना  
परमे रक्षित रग्ना । परना तुम्हारी रक्षा करनवाता ना है और  
न तुम्हा निर्मा की रक्षा करनेवाल हो । मनुष्य स्वय आपनी अपना  
घातक है, और आपही अपना रक्षक है, केघत कल्याण आरारा  
दुममोकी तरह हैं ।

( १११४८ )

०३ कल्याणना माग उमका प्राप्त हा सफना है जो प्रत्यक्  
अवस्थाम मुग्गी रहता है ।

( १११४८ )

०४ मनुष्यनाम कल्याणना कारण है यह नियम नहीं ।  
कल्याणका कारण तो आत्माकी रागादि रहित परिणति है । आत्मा  
या अहित न रागादि परिणति है और न नारक पयाय है और न  
नियत पयाय है । और न मनुष्यपयाय हितकारी है और न  
देवगति दितकारी है । हितकारी तो य है कि आत्मान रागादि  
परिणति न हा । घतमान म जा जो रागादि हा न्तम आमक्त मत  
हा तिसटे मकी मनात परम्परा न हो ।

( १०१४८ )

२५. कल्याणका मार्ग अयत्र नहीं, न तो तीर्थमें है और न मन्दिरों में है, न पुराणोंमें है, न सततन्मागममें है अपितु केवल मून्त्रों छोडनेमें है।

लहाँतक धने, अपनेसे जो उने, उसे करो परकी अपेक्षा छोडो। परसे न तो किसी का कल्याण हुआ न होगा।

( ३० । ७ । ४८ )

२६. श्रोताआको मनमानी मुना देना, अपनी प्रभुता जमाना पाण्डित्य प्रदर्शन करना तथा 'हम ही सत्र हुड्य हैं' इत्यादि मनो विचारोंके होते आत्मकल्याणकी लिप्सा अथे मनुष्यके हाथमें दर्पण सदृश है। दूसरा मनुष्य उस दर्पणसे चाहे मुख देख भी सभना है परन्तु अथेको कोई लाभ नहीं।

( २५ । ८ । ४८ )

२७. कल्याणका मार्ग तो हुड्य कठिन नहीं परन्तु उमकी ओर कोई लक्ष्य नहीं। हम कल्याण मानते हैं कि अपने अभिप्रायके अनुकूल परिणमन हो परन्तु ऐसा हाता नहीं क्याकि जितने भी पदाथ हैं व सत्र अपने अपने द्रव्यादि चतुष्टयके अनुकूल परिण मते हैं। उड्ड अपने अनुकूल परिणमना सबवा सम्भव है।

( २६ । ८ । ४८ )

२८. कल्याणका माग कहाँ नहीं, उमकी प्राप्तिने अर्थ किसी व्यक्ति विशेषकी आनन्दयन्ता भाँ नहा। कल्याणका माधक केवल अकल्याण है अत अकल्याणका जो कारण है -मे न होने देना यही कल्याणका अचाधित मार्ग है।

( १९ । १० । ४८ )

२९. कल्याण और अकल्याण दोनों ही स्रतन्त्र आत्माकी परिणति हैं। स्रतन्त्रका अर्थ यह है कि आत्मा ही इनका कता है इनमें एक पयाय ता विकारी है और एक अविकारी है। यदी

दोनोंमें अंतर है। दानों का पर्याय आत्माकी है, उनमें एक पर्याय ग्यादेय और एक हेय है। इसका कारण एक पर्यायके स्वतंत्र्य में नीचम आनुनता हाता है और एकके सद्भावमें निरानुनता रहती है। आनुता दुःखकी जनना है अतः चिन्ते दुःखसे बचना है व इसे त्यागें।

( ११ । ११ । ४८ )

३० समारकी दशा जो है वही रहेगी चिह्न आत्मनल्याण करना हा वदुःख चिन्ना को त्याग ता अभाव्यास कल्याणके पात्र हो जायेंगे।

( ३० । ११ । ४८ )

३१ समारम चिन्को आत्महित करना है व परका समा लोचना करना छाड़। केवल आत्मास जा विचार भाव उत्पन्न हात है व त्याग। परने उपदेशसे फाइ लाभ नहीं और न परका उपदेश देनेसे आत्मलाभ होता है।

( १२ । १२ । ४८ )

३२. यदि कल्याणमागनी इच्छा है ता सत्र उपद्रवार्का त्यागकर शांत होनेका उपाय करा। केवल लोकपणाके जातस मत पडा। कल्याणता अर्थ है जो कामरगे 'उसे फिर न करना पडे' यही भावना भाओ चाह अच्छा काम भी क्या न हो।

( ३१ । १२ । ४८ )

३३ जो काय होता है उसकी उत्पत्तिका उपादान कारण स्वयं वही द्रव्य हाता है। प्रत्यक्ष द्रव्य स्वतन्त्र है। हम अनादि कालसे कम बचनम पडे हुए हैं, नाना प्रकारके भावोंसे लिप्त हा रहे हैं। ये भाव रागादिक हैं इनका उपादान कारण आत्मा है और निमित्त कारण मोह कमका विषास है। चिस कालम रागा दिक हाते हैं उस समय यह पर पदाथम प्रीतिरूप परिणमन करत

हैं और जब द्वेषना उदय आता है उस समय अर्पितरूप परिणाम का वर्तन होता है। इन परिणामोंका मूल उत्पादक मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वने उदयमे यह जीव पर वस्तुम आत्मीयताका मानना है। यद्यपि पर द्रव्य न अपना हुआ और न था और न होगा किन्तु हमारी परिणति मोहप्रशमन असत्य मान्यताका त्यागनम समर्थ नहीं। अतः निहो कल्याण करना हो तब सप्रथम मिथ्या दर्शनका त्याग करना चाहिये। इसने त्याग हात ही पर पदाथा मे रागद्वेष मुक्ता प्रथम् हो जाता है। ( २।२।५१ )

३४ यदि आत्मन्याण करना चाहते हो तो इन बाह्याङ्ग प्रयोगोंका प्रमुक्त दूर इनमे पृथक् होनकी चेष्टा करो। यद्यपि प्रशंसाम पङ्कत आत्माका वञ्चित करनेका टग मत बना। जितने भी प्रशंसा करनवान हैं सभी आत्मतत्त्वसे दूर हैं। प्रशंसा कराना और प्रशंसाकी लालसा करना दोनों ही महादूरी हैं। भगवानकी आज्ञा तो यह है कि यदि कल्याण चाहते हो तो न तो भृष्टी प्रशंसा करो, न कराओ।

( २६।४।५१ )

२५ मौन रखनेकी आवश्यकता ही नहीं, यदि परना अपना मानना छोड़ दा तो अनायास मनोव्यापार उस आर नहीं जायगा। काय, वचन, मनने व्यापार स्वार्थीन नहीं। अंतरङ्ग कर्मायने अधीन इनने द्वारा आत्मप्रदेश चञ्चल होते हैं। कर्तृत्व म मुरय इच्छा कारण है। इच्छा, प्रयत्न तथा उपादान कारणका अपराज्ज्ञान हाना चाहिये। जहाँ माहता अभार हो जाता है वहाँपर काय, वचन और मनका जा व्यापार होता है उमम पुर का सस्कार ही कारण है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि कल्याण करनेकी अभिलाषा है तो मन, वचन और कायने व्यापारोंको संसारका कारण न मानो। ( १४।५।५१ )

३६ चित्तना अधिक जाइ ससग होगा उतना ही कल्याण मागना निराध होगा । कल्याण केवल आत्म पयाय है, नहाँ परके निमित्तसे भाव होत हैं न सत्र म्यतत्त्व परिणतिक निमलत्वम वाधन है ।

( १५ । ६ । ५१ )

३७ किसीकी कथाना गुनवर सहसा विश्वास मत करा । अथ कथारी जात ता दूर रहा धार्मिक मित्रातोंको श्रवणर उद्घापाह द्वारा निणय करो । कथन श्रवणसे कोइ लाभ नहीं । श्रवण तो गज्ज द्वारा प्रत्यक्ष ही हागा उन शक्तोका जोध ही तो हागा । घट शक्ते घटना जाय यदि तुमना यह ज्ञान है कि इसका वाच्या न कम्बुमोरादिमान घट है तभाहीगा अथवा नही । अथवा घट पनापना वाध हा गया उससे क्या लाभ हुआ ? इतना ही लाभ हुआ कि घट निपयन ज्ञान हानसे घट निपयक अज्ञान दूर हा गया । इसा प्रकार यह ज्ञान हा गया कि रागवदाय परपदायम प्रीति रूप परिणाम हानेका नाम है । यह ज्ञान हमना रागसे लपन होनवाली आलुनताका दूर नहीं कर सकता । इससे मित्र हुआ कि ज्ञानहाना मात्रकल्याणका साधन नहीं । अथकीकथाछाडा सारासिद्धि देव, तीरानिषदेव या मौधम स्वगना इद्र या अथमभा सन्यगृष्टिजीय पदाथरे स्वरूपका यथाथ जानत हैं परन्तु सम्यन्चारित्र विना पञ्चमगुण स्थानवाते नियक जापने समान शानिना आस्था नहा पात । अथका क्या छोडा चित्तने पूण ज्ञान है स्वाचिरचारित्र है, न मनुष्य भी अभा संसारम है । जय तन मूढमत्रियाप्रतिपाति ध्यान नहीं अथन हाता ही रहता है । अत चित्तको कल्याण करना है व कपाय और योगका त्यागे । याग तो जना वाधक नहीं चित्तना कपाय वाधन है । कपाय भी जना वाधन नहीं चित्तना वाधन मित्र्यात्व है । ( १५ । ६ । ५१ )

३८ यह विचार श्रेष्ठतम होता जाता है कि कल्याणका कारण अन्य नहीं, आप ही हैं क्योंकि जब हम ही पापके कर्ता होते हैं और उसका फल पत्थरी भोगते हैं तब स्वयं कल्याणके फल भी हम ही हैं ।

( २२ । ६ । ५१ )

३९ कल्याण अकल्याणका सम्बन्ध तो आत्माने शुद्ध और अशुद्ध उपयोगसे है । उपयोग नाम चैतन्य परिणामका है । जब चैतना किसी वायके जाननेका प्रयत्न करता है उसके पहिले जो उसका ज्ञान है उसही का नाम शानोपयोग है । अथान् दशानुपयोगका नाम ही आत्माको जाननेका है । ज्ञानोपयोग ही का नाम पर पदाग्रका ज्ञानम आना है । जो परको जाने, आपको न जाने, उसमें हमका क्या लाभ ?

( २ । ७ । ५१ )

४० कल्याणका माग आपमें है और अकल्याणका माग भी अपने ही पाम है । हम अपने द्वारा ही कल्याण और अकल्याणका माग अनात्मीसे अग्रतक मानते आये हैं । बहुतसे अथान् बहुसंख्यक जीवतो ईश्वरको ही अकल्याण और कल्याणका कर्ता मानते हैं । यहाँ तक कहते हुए सुना गया है कि परमात्माकी इच्छाके बिना पत्थ भी नहीं मिलता । हम जो उच्छ करते हैं उसी की इच्छापर निर्भर है परन्तु जब पाप करते हैं तब हम उसे स्वतंत्र करते हैं । ईश्वर पाप करनेकी प्रेरणा नहीं करता । बहुतसे मनुष्य कहते हैं कि जो कुछ हम करते हैं कर्म ही कराता है । कर्म ही आत्माको जहानी बनाता है । जब ज्ञानाकरण कर्मका लय आता है तब आत्मा अज्ञानी हो जाता है । कर्म ही ज्ञानी बनाता है । जब ज्ञानाकरण कर्मका लयोपशम होता है आत्मा ज्ञाना बन जाता है । कर्म मुलाता और जगता है जब निद्राकरण कर्मका लय

और न उनका विषय ही मित्र हो सकता है परन्तु न जाने कितने कर्मपरा सङ्घर्ष अन्तरक्षमे है निमित्ते उद्धार होना कठिन है।

( २१ । १ । ४० )

३ 'हिमी मे विशेष परिचय मत करो' यही शास्त्र का आज्ञा है परन्तु आत्मन् ! तुम इमरा अनान्तर करते हो अतः अनन्त मसारेके पात्र होगे। तुमन जानकर जा दुःख पाये उनका स्मरण शास्त्राके मन्त्रा दुःखदायी है परन्तु तुम इतने सहिष्णु हो गये हा कि अनन्त दुःखोंके पात्र होकर भी अपने आपका मुखी मानत हो।

( २२ । १ । ४० )

४ समयका अवहेतना करना आत्माके उत्पत्ता घातकरना है। उत्पत्तसे तात्पर्य निवृत्तिपरिणतिसे है। उत्पत्त और अपत्त व्यय द्वार भाहनिमित्तक है, आत्मामें तो ज्ञातृत्वं नष्टत्वं है। इसका धोड़ कर ना वैभाषिक भाव आत्माम हात है व ही भाव त्यागने योग्य हैं। जो भाव हा गया उसका त्याग होना अशक्य है, वह भाव न हो यही भावना श्रयस्वरी है।

( २३ । १ । ४० )

५ संसारम जहाँ स्वाय है वहाँ उससे परापकार होना असम्भव है। जा मिला सो स्वार्थी मिला। इसका अर्थ यह है कि हम स्वय स्वार्थी हैं इसीसे हमारी दृष्टि म परार्थ नहीं दीयता। हम स्वय अज्ञानी हैं अतः संसार हमारी दृष्टिम विपरीत भासता है। कितने आत्महित नहीं किया वे मनुष्य नहीं पशु हैं।

( २४ । १ । ४० )

६ संसारम बधनका कारण परिग्रहभाव है। धन्य हैं उन महाबुभावोको जिन्होंने परिग्रहसे ममता त्याग दी। परिणामस्वी

गति विचित्र है, यही भाव हुए कि सब त्याग कर निर्द्वन्द्व हो जाव ।

( १४ । ३ । ४७ )

७ प्रातःकालका समय स्वाध्यायम हा लगाना चाहिय और जहाँ तक जने परर सम्पर्कसे उचना चाहिये । बहुत काल बीत गया आत्मा प्रवृत्त नही क्या ता बहुतही परतु वह क्या है इसही गंध भी नहीं आइ । कहने और करनेम मजान अंतर है अथवा आत्मज्ञान हानसे भी क्या लाभ यदि राग-द्वेष-मोहकी कालिमा न गयी । जानना सुगम हा तु नहीं रागहानि सुगम हा हेतु है ।

( १३ । ४ । ४७ )

८ ह आत्मन ! अर नो निच हितम लगा । केवल इन प्रपञ्चोम पडवर क्यों अपने मागसे न्युत हो रहे हा ? जत हम अपनी परिणति पर विचार करत है तत सबसे बडा दाप यह पात है कि अपनी निन्दा मुनकर विपाद और प्रशस्ता मुनकर दर्पना अनुभव करत है ।

( १ । ६ । ४७ )

९ ह प्रभो ! जिमम जगन हा कन्याण हा वह भाव मेरा हो । मैं एसा निमल हो जाऊँ कि एग दिन आपसे भी निरपेक्ष रहना पडे । मैं तो यह चाहता हू कि वह भाव मेर हो जो आपके सदृश हो जाऊँ अथात् मसार बंधनसे छूट जाऊँ ।

( १० । ६ । ४७ )

१० मोहम मनुष्य जमत हो जाना है । तुम्हें तो थवान ही आती है पर वास्तवमें अभी तुम मोहने चक्रसे छूटना नहीं चाहत ।

( २६ । ६ । ४७ )



११ परिणाम ही कल्याण (नियम) का वाहन है। निरंतर आत्मा का यह भाव है जिससे आत्मा कभी रागा होता है, द्वेषी होता है, कभी विरत होता है, कभी हर्षित होता है, तो कभी निरंतर आरित रहता है अतः एसा भावनाका अवन्या कि यह विरत भाव भिट पावे। बहुत आयु हो गइ परंतु आम तत्परता निमल न किया।

(२६।७४०)

१२ यह तो समार है, इसमें विरत हो सत्युत्पद्दात है जा आत्मा की आर तद्वय देवे। लक्ष्य देवर भी तद्रूप रहना अति कठिन है। का रहे, न रह, प्रथम तुम ना अपना नक्ष्य स्थिर करा।

(१९।८।४०)

१३ शक्तिसे अनुकूल व्रत करा, वात बहुत मामिन है। हमना भा यही उचिन है परंतु हमका आज्ञाकर पना नई बला कि हममें शक्ति कितना है? शास्त्रम प्रतिष्ठा पद्वत है कि आत्मा अचित्त शक्ति है परंतु हम इतन कायर है कि क्षणमात्र भी राग छोड़ने में अममय है।

(१।९।४०)

१४ जिहोंन अपनेको समझा न्हान मय समझा और जिहोंन अपनेका नहीं जाना न्हान रुद्र नहीं जाना।

“एकोभात्र सर्वथा येन दृष्ट, सर्वेभागा सर्वथा तेन दृष्टा।”

अतः अरुका दग्गनरी परमानन्दयता है।

(२६।९।४०)

१५ आप नहीन अपना आरम्भ होता है, या ही समय बीतता जाता है परंतु हमारी प्रकृति कल्याणमागरी आर नही

जानी, केवल रुद्धिके दास बन रहे हैं और यही सस्कार हैं जो अनादिसे आत्मामे लग रहे हैं ।

( १ । १ । ४८ )

१६ हम मोहीजीव निरन्तर परपदार्थोंका गुण दोष विवेचना करते हैं, अपनेको नहीं जानते, केवल वाग् व्यग्रहार मात्रसे सन्तुष्ट हा जाते हैं ।

( २३ । १ । ४८ )

१७ अनन्तानन्त तीर्थङ्कर हो गये वे भी मसारका उद्धार नहीं कर गये तब हम शक्तिहीन अल्पज्ञ क्या कर सकते हैं ?

( १९ । २ । ४८ )

१८ मनुष्योंमें वह शक्ति है कि द्रव्यादि सामग्रीके द्वारा सत्र परिग्रहके त्यागी हो सकते हैं परन्तु मोहके द्वारा में इतना अशक्त हो रहा हूँ कि गृहवास छोड़कर भी स्वात्मकल्याणके मार्गसे दूर हूँ । यद्यपि मुझे ऋद्ध श्रद्धा है कि मैं चेतन द्रव्य हूँ और साथमें यह भी दृढ श्रद्धा है कि अथ कोई कल्याण न करेगा ।

( १ । ३ । ४८ )

१९ वस्तुतः 'कोई किसीका नहीं' इस ग्रन्थको गल्पपादमें न लाओ, कतव्य पथमें लाओ । 'परायेघरका भोजन इत्थम वाधक है' इम कल्पनाको त्यागो । न तो कोई वाधक है और न साधक है । आत्मीय परिणति ही वाधक और साधक है ।

( ९ । ३ । ४८ )

२० हम लोगोंने सबसे महान दोष यह आ गया है कि किसीका धैर्यावृत नहीं करना चाहते, ग्लानि करते हैं, सम्यक्त्वे अङ्गमें जो निजुगुप्ता गुण है उसका आदर नहीं करते ।

( ११ । ३ । ४८ )

२१ हं प्रमो आत्मन् । आन छुटक दीक्षा लेता हूँ, तूँ म्मयं ही सय बुद्ध हूँ, शांतिसे कार्य करना ।

( १० । ३ । ४८ )

२२ हमने आनतम अपनी दया नहीं पायी । अपनी रक्षा न करना इसका अर्थ यह है कि हम यहाँ कहते हैं 'वीरोंकी रक्षा करो' परन्तु वीरोंसे अपनेका प्रयत्न समझने है । अथवा जोधा विक्रम पायोंसे अपना रक्षा करते । आत्माकी परिणति जब क्रोधसे सतप्त होती है तब इसे बँध नहीं पड़ना ।

( २६ । ३ । ५१ )

२३ परमाथसे हमने स्वरूपको नहीं समझा, यदि समझा होता तो कदापि परका नहीं अपनात । अनादिमालमे विभ्रम ज्ञानसे वर्शाभूत हारर जैसे कोई रज्जुम सपकी भ्रांतिसे भयभीत हो जाता है इमी प्रकार हमारी भी दशा हा रही है । शरीरको निजमान, उसरी परिणतिमा निजमान कता धनत है, जहाँ कतापन आया यहाँ भाक्तापन अनायास ही आनाता है । अतः सर्वप्रथम परपदायम कतापन माननेकी जा बुद्धि है उसे त्यागा । जहाँ कतापन नहीं वहाँ ससार नहीं ।

( ५ । ५ । ५१ )

२४ हम इनका पुण्यार्थ कर सकते हैं कि आत्मीय अभिप्राय विशुद्ध करनेम आनामानी न करे । हमारे अन्तरद्वम एक दाप नहीं, इतने दाप हैं कि उनकी गणना हमारे ज्ञानकी विषय नहीं । एक आर हम कहते हैं कि हमने कुछ नहीं किया परन्तु इनकी ओर प्रशंसा की अन्तरद्व घासना स्थान बनाय अपना काम कर रहा है । यदि तुम्हारे पर्वतत्र भाय न वा तो फलकी इच्छा कैसे ? म्मयं वग्ग- 'हम क्या जानते हैं ?' परन्तु मनेन ज्ञानका दाया करते हैं । ससारको तुच्छ मानते हैं, जो बुद्ध हैं हमारे पास ही है ।

( १५ । ५ । ५१ )

२५ परमात्माके ज्ञानमें सब पदार्थ आते हैं, इससे बहुतसे मनुष्य मतोपकर लते हैं—'क्या करें, ऐसा ही होना था' यह मिथ्यान्त जहुन ही सुन्दर है परन्तु इसका यथार्थ उपयोग नहीं होता। यदि ऐसी श्रद्धा है तो कार्य होनेपर पश्चात्ताप क्यों करते हो ? 'क्या कर, घटी भूल हुई ?' हम भूलको अपनी मानकर भी उसे त्यागनेकी चेष्टा नहीं करते।

( २६ । ५ । ५१ )

२६ शान्तिना रस अभी तक नहीं आया, यदि आया होता तो उसकी प्राप्तिना उपाय न करते। हम केवल जगतकी निन्दा और प्रशंसामें दृष्टिदान रगत हैं। जहाँ प्रशंसा हुई वहाँ प्रसन्नता और जहाँ निन्दा हुई वहाँ अप्रसन्नताका अनुभव करते हैं अतः जहाँपर यह व्यवस्था है वहाँ शान्ति रसना आसनाद तो न रह उसका गंध भी नहीं आ सकती।

( ३० । ७ । ५१ )

२७ जब अपने स्वरूपका विचारते हैं तो सिन्धु जाननेके बुद्ध भा नहीं आना। चाहे हम दुःखना वेदन कर, चाहे सुखना वेदन करे, चाहे अन्धना वेदन करें, सिन्धु वेदनके और बुद्ध नहीं आता। इससे आत्मतत्त्वको यदि ज्ञानमात्र यह देयें तो कोई शक्ति नहीं। केवल ज्ञान ही पदार्थ नहीं, यदि ज्ञान ही जाना तो अन्यना वेदन कैसा ?

( ९ । १० । ५१ )

## आत्मतत्त्व

१ आत्मा यद्यपि अमूर्तारु चेतना द्रव्य है फिर भी पुद्गल के साथ इसकी ऐसा स्निग्धता है कि पर हाना कठिन है ।

( ३।५।४५ )

२ आत्मा अचित्त्य शक्ति है । उसके मनुष्याग अर्थात् दुष्पयोगसे ही यह ससार और माय दानोंके मार्ग चल रहे हैं । सत्पयोगमें अन्यके सहायकी अपेक्षा नहीं पड़ती, दुष्पयोगमें पदाथान्तरोक्ती अपेक्षा पड़ना है । दुष्पयोगमें तात्पर्य गुभागुपयोगमें है । सत्पयोगमें तात्पर्य निव परिणतिसे है । शुद्ध द्रव्य परिणामकी विशेष अवस्थाना नाम ही निव परिणति है ।

( ५।५।४५ )

३ आत्मापर अधिकार रचना प्रत्येकका काय नहीं ।

( ७।५।४५ )

४ लक्ष्म इस विषयकी बहुत अधिन चचा रहती है 'आत्मतत्त्व क्या है ?' इसमें अथ बड़े-बड़े पुराण और तन्त्र शास्त्रका अध्ययन करते हैं फिर भी आत्मतत्त्वमें सन्देह रहते हैं । मेरी तो यह समझ है कि आत्मतत्त्वकी पहिचान प्रायः सम्भव रहती है अथवा अनुकूल कथाम ह्य और प्रतिवृत्त कथामे विचार नहीं होना चाहिये ।

( २१।८।४५ )

५ आत्मा एक ज्ञानवान द्रव्य है । ज्ञानमें जाननेकी शक्ति है । उसके द्वारा हम पदार्थोंका परिचय करते हैं परन्तु भाइसे इच्छा निष्ठ कल्पना करत हैं ।

( २३।१०।४५ )

६ आत्ममें अनन्त शक्ति है परन्तु उसका विकास होना चाहिये। विकासने लिये परकी आवश्यकता नहीं प्रत्युत परके त्यागही आवश्यकता है।

( ३।११।४० )

७ कोई भी शक्ति आत्मस्वभावी घानक नहीं, तुम स्वयं घानक मत बनो।

( १५।२।४८ )

८ आत्मा ज्ञानगुणवाला है, वह गुणही आत्मके अस्तित्व को जनाता है। उसकी महिमासे ही आत्मा पर पदार्थोंसे भिन्न है। यदि उस गुणही पदिचान न हुई तब तुम बुद्ध नहीं बन सक्त।

( १९।६।४८ )

९ चतुर्थ पञ्चम कालसे बुद्ध तत्त्व नहीं। आत्मा तब चाहे तब इस जगत् कालम भी श्रेयोभागनी प्राप्त हो सक्त है। आत्माम को विभाव भाव हाते ईश्वर अनात्माय ममक एसी चेष्टा करे कि उत्तरकालम न नहायें। जिस कालम यह होय उहें रागादि भावकर अपनानेही चेष्टा न करे। वह भी मभव नहीं, रागादि परिणाम ही तो विभाव हैं।

( २२।६।४८ )

१० आत्मा एक चेतन द्रव्य है। इसमें अतिरिक्त तुम्हारे ज्ञानम जो भी विषय आता है अचेतन है। इन दानाका अनादिसे सम्बन्ध बला आ रहा है। यह दो पदार्थ हैं, दोनों मिलकर तादात्म्य सम्बन्धसे एक नहीं हात। गुण-गुणीका तादात्म्य होता है, दो द्रव्योंका तादात्म्य आनतन न हुआ और न होगा। मोही हीन दोनोंका सम्बन्ध नही है।

बना लिया जाय, उस अवस्थाम दग्नेवाला दोनारो एक पिण्ड पयायम देगेगा, न उसे शुद्ध मुवर्ण करेगा, न शुद्ध चाँदी ही करेगा किन्तु अशुद्ध माना ही व्यवहार करेगा। यद्यपि उस पिण्डम जो साना है वह भोना ही है, चाँदी नहीं हुआ और चाँदी माना भी नहीं हुआ। एक ताला साना और एक ताला चाँदा एक पिण्डम है। जानारम उस पिण्डमो केचा जाये नर रनेवागा जोहरी कमरा मूल्य यदि २००) तोला सोनाका भाव है तत्र १००) तोला देगा। तत्र वा तोलरु २००) ही तो मिलगे। अत मिद्ध होता है कि द्रव्य दृष्टिमे माना उनना ही वा चिनना पहिता था। दधारस्वाम चाँदीके मतमे उमने जा रपाणि गुण धेर रिचूत हा गय। इसी तरह आत्मारो भी पुद्गत द्रव्ये साथ प्रथ होनेमे ज्ञाता रपा जो उसका स्वभाव वा यह माहादि रूप परिणम गया।

( २५।४।५१ )

११ ससारम वाड भी शक्ति ऐसी नही जो आत्मारो सुधार और बिगाड़र सरे। यद् अपन परिणामास ही अपना शत्रु और मित्र हो जाता है। आप ही आप अपना श्रयोमाग और विपर्यय मार्ग बना लेता है, अथवा निमित्त मात्र है। अचेतन पदार्थम वही प्रकिया है किन्तु उमम अभिप्राय व चेतनता नहीं परंतु परिणमन शीत वह भी है। जैसे बुनातक निमित्तवा पाकर मिट्टी घटरूप हुद। दग्नेवालरो यह प्रतीत हाता है कि कुम्हार ने घट बनाया, परमाथसे अनन्त व्याप्य-व्यापक भावर मृत्तिका ही घट रूप परिणमी और मृत्तिका ही कनश पयायन साथ तादात्म्य सम्बन्धर अनुम्युत है। बाह्य व्याप्य-व्यापक भावर द्वारा कलशका उत्पत्तिरे अनुकूल व्यापारका कुम्हार बना है और कलशसे जो तोयका उपयोग होता है उसको पान करनेवाला जो कुम्हार है उसने तज्जय को वृत्ति हुई उसका कुचाल भाषा

परन्तु लागों द्वारा ऐमा।व्ययहार होता है कि कुलाल घटका बना है और उमरा भोक्ता भा है। ऐमी लौकिक जनोकी रुढ़ि है, यही व्यग्रस्था सर्वत्र है। वास्तवम अनादिकालसे जीर परपदाधने सम्प्रत्यसे दधरूप अवस्थाना धारण करता है और अनादिसे माहवा सम्प्रत्य है। उससे निजम परके माननेका व्यामाह है और यही मोह संसारका कारण है। इससे मैटनेके लिये इतने मत समारम हैं कि उमरा एव पुराण बन मरना है।

( २९।४।५१ )

१२. आमा अचित्य शक्ति जाना है चाद् यह किमी पयायमें हो। गुणोंके विक्रममें अन्तर हा सनना है परन्तु गुणारी सना चितनी मिद्ध भगवानम है उतनी हा एव निगोदक नाम है केवल विनाशकी विभिन्नता ही भेदका कारण है।

जिस माता पितासे बालक उपन्न होता है उसीको अपना मानना है। उममे माताना तो पुत्रात्पत्तिम मानात्मग्रथ है क्योंकि यह मातृवर्गमें ही गभधारण करता है और इसरी वृद्धिका मूल कारण पिता है। यद्यपि पितासे वाय बिना गर्भ धारण नई हाता परन्तु गभधारण चाद् पिताकी आवश्यकता नहीं रहती, माता ही के द्वारा इसरी वृद्धि होता है। जत्र तत्र यह गभम रहना है तत्र तत्र ता अनुद्धि पूरक इमना पोषण हाता है परन्तु जत्र गभमे निरुत्पन्न चाद् आता है तत्र मातासे स्तनदय दुग्धका पीकर वृद्धिगत हो जाता है। पत्रान अत्रादि द्वारा इसरी वृद्धि होता है। ऐसी मत्र बालकोंकी व्यग्रस्था है। जिन बालकोंको समागम अच्छा हुआ वे अच्छे हा जाते हैं, जिह समागम अच्छा न मिला व जघय प्रवृत्तिसे हो जाते हैं।

( ९।५।५१ )



आत्मा अनन्त गुणोंका पिण्ड है। ज्ञान गुणको त्याग शेष गुण ज्ञान परिणमनसे शून्य हैं। ज्ञान गुण ही एक ऐसा है जो स्वपर प्रकाशक है अतः ज्ञानमें ज्ञानातिरिक्त नितने गुण हैं व प्रति भासमान होते हैं। तथा ज्ञान भी प्रतिभासमान ही रहा है। यही सिद्धांत सारे प्रत्यक्ष है। इसीसे आत्माको ज्ञानमात्र कहा है। यह सिद्धान्त निश्चित है कि आत्मा ज्ञानादि गुणोंका पिण्ड है और व गुण परस्परम भिन्न भिन्न स्वरूपको लिये हैं, एक गुणका परिणमन दूसरमें नहीं मिलता। जैसे एक आमम रूपादि गुण हैं, कोई विज्ञान ऐसा नहीं जा रूप को रस, गन्ध, स्पर्शसे प्रयत्न कर दे किन्तु इन्द्रियत्रय ज्ञानम वह शक्ति है जो रूपादिका प्रयत्न प्रयत्न विस्तारण करके दिखा देता है। इसी प्रकार ज्ञानादिगुणोंको भिन्न दशा देनेका शक्ति ज्ञान हीमें है। जब एक गुणका स्वरूप एक आधारम रहकर अन्य गुणरूप नहीं होता तब वा परद्रव्य है व आत्मारूप कैसे हो जायेगी? अब वे आत्मारूप नहीं है मन्ती तब शरीरका आत्मा मानना मर्यादा अनुचित है, क्योंकि शरीर वा चेतना गुणमें शून्य है, पुद्गल परमाणुओंका पिण्ड है व पर है।

( १२।५।११ )

१४ आत्मा यस्तु ज्ञान दर्शनमय है। यह उमका स्वरूप कातत्रय व्यापी है। इसने अतिरिक्त जो परिणमन है वह अद्वैतिक परिणमन कर्मक उदयम हाता है। प्रकाशक है। जैसे कपायक उदयम मोघादि भाव होते हैं व भाव होते वा आत्मामें हैं परन्तु विकारी हैं। विकारका कारण उदय है। उदय आत्मामें एक घातिरमाका होता है एक अघातिरमाका होता है। घातिरमाका सम्बन्ध पाकर ही अघातिरमा अपने त्रयम समय हात हैं। घातिया कर्ममि तब तक मोहका उदय है तब तक ही यह तीर ब्राह्मण

आदि वणना स्वामी बनता है तभी तक अनात्मीय भावोंना स्वामी बनता है, अपनेको महान् और जगन्को तुच्छ मानता है। पर पदाथाके द्वारा मोक्ष और ससारकी उत्पत्ति मानता है। अनेक धर्माना स्तनन करता है, असरय देवी और देवताओंकी कल्पना करता है। परके अतिशयमे निरन्तर मुग्ध रहता है, परको प्रमत्त कर मोक्षमागं मानता है। परको प्रसन्न करनेम ही शुभ उध मानता है। कहीं तक कत्र इसा विदम्बनाम जम गमा दता है।

( २३ । ५ । ५१ )

१५ श्री बुद् बुद् मुनी बरने समयसारसे मेरी तो यह दृढतम श्रद्धा हो गई है कि आत्मा भिन्न है और पुद्गल भिन्न है। आत्मा, पुद्गल दोनोंम यद्यपि द्रव्य सामान्यता लक्षण जानेसे उनम नाइ अंतर ना। जैसे गुणका लक्षण सहभागीपना है। यह लक्षण चेतन और अचेतन सभी गुणोंम सामान्यरूपसे विद्यमान है फिर भी चेतन गुण और अचेतनगुण भिन्न भिन्न हैं। इसा तरह जात्र और पुद्गल इनने लक्षण भिन्न भिन्न हानेमे ये पृथक् पृथक् हैं। जब यह निश्चय हा गया कि जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्यसे भिन्न हैं तत्र यह जा शरीर है उसमे रूप-रस-गंध स्पर्श होनेसे पुद्गल द्रव्यकी वह पयाय है। जब यह निर्णय हा गया कि आत्मा द्रव्य पुद्गलसे भिन्न है तो फिर उसे अपना मानना सर्वथा उत्तम ना। हों, इन गानाने सम्वन्धसे ही यह मनुष्यपर्याय उत्पन्न हुई हैं। जैसे स्वण और रजत मिलकर एक पिण्ड हो गया। उम एमना म ह्म उसे न तो रजत ही कहते हैं और न स्वण ही कहत हैं किन्तु विनातीय दा द्रव्योंम सम्वन्धसे निष्पन्न पयायको रोटा स्वर्ण कहते है। तत्र दृष्टिसे विचारो तो जो स्वण है वह ग्राटा ( दूषित ) नहीं और जो दूषितपना है वह स्वण नहीं। केवल रजत के सम्वन्धसे जो मतिनता आयी है वही तो उसम यह व्यग्रहार करा रही है।

मलिनता केवल रत्नकी भी नहीं, यदि रत्नता होती तब तो शुद्ध रत्नम भा शैना चाहिये सा नहीं देखी जाती, अत कथञ्चिा वह वह मलिनता संयोगन है। इमीतरह चीन और पुद्गलके सम्प्रथम जा मनुष्यपथाय निष्पन्न हु वह केवल आत्माकी नहीं यदि आत्माकी हाती तब केवल आत्मा उमका अस्तित्त्व हाता चाहिये सा नहीं। यदि पुद्गलमात्रकी है तब केवल पुद्गलम हाता चाहिये परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता अत सिद्ध हुआ कि यह मनुष्यपथाय उभय द्रव्यके संयोगमे पैदा हु।

एना हातेपर भी यदि निरूपण किया जाय तो दानों द्रव्य सत्ता प्रथक प्रथक है। इसम पर चेतन और पर अचेतन है। चेतन द्रव्यम अनादिमालमे माह तागा हुआ है। इस पुद्गल परिणमनता वा जायस सम्प्रथमे हुआ अपना है। जैसे हुम्गराके निमित्तमा पानर पट पथाय हु कार जमे निन मान तब जमे लीस अज्ञानी ही कहे आत्मा और पुद्गलके सम्प्रथसे स्वप्न वा म आत्मा सप्रथा अपनी माने यह मद्ता ज अवश्य है कि आत्मा विभाय परिणामके हाता है। वतमान आत्माके जा यह पया है जमका तादान्य निम पथायम था उन परिणामाका अभाय हा जाता नहीं। कपरा ज्ञान तब उपन्न है वरणता सप्रथा अभाय हा अत जमे कथञ्चित् नियम

१६ 'आत्मास हा।  
नहीं। ज्ञान होनेपर तब जसे भावन न।

हैं ? तड़पता है, दुग्ना होता है । अत्र आप ही निणय करो कि उमरा महत्त्व कहाँ गया ? कदाचिन् जाननेवाला ज्ञान है इससे उमरी पूज्यता है परन्तु यह भी तो विचार करो कि यदि अत्र पदार्थ ही न हाता तत्र ज्ञान किमरो जानता ? अत तत्त्वदृष्टिसे विचार करो, न कोइ वग है, और न काइ लघु है । सत्र पदार्थ अपने अपने स्वरूपम प्रवर्त रहे हैं, फेना मानी जाय किमीरो महान् और किसीको जघय व्यवहार करते ह । देगिण, विचारिये, अनुभयम ताइये, जो जीव मोक्षमा अभिलाषा है वह तो—

“मोक्षमार्गस्य नेत्तार मेत्तार कर्मभृताम् ।

ज्ञातार विश्वतत्त्वाना वन्दे तद्गुणलब्धये ॥”

जिसम मुक्तिके कारण विद्यमान हैं उसे नमस्कार करता है । इमालिय कि उसे मुक्तिकी इच्छा है परन्तु तिमै मोक्ष जानेकी इच्छा नहीं यह उम रीतरागदेवका नमस्कार नहीं करता । इमसे जो मुक्ति अभिवापी है यह उस देवरो पूज्य मानता है, जो तद् भिवापी नहीं यह उमे पूज्य नहीं भागता । इमसे सिद्ध हुआ कि रीतरागदेव न पूज्य है और न अपूज्य है । लोग अपनी वन्दनाओंके घरा हारर उनम अनेक कल्पनाएँ करत हैं । वस्तुस्थितिपर विचार करो तत्र मत्र व्यवस्था जनादिमे अपने परिणमनरे अनु मार हा रही है, और पहिल वी, इमाप्रकार भविष्यम भी हागी । अत वस्तुस्वरूपपर दृष्टि डालो तथा सत्रे साथ निर्मल व्यवहार करा जैसा अपनेरो सममते हो वैसा ही अन्यरो भी मानो ।

( २६ । ६ । ५१ )

१७ आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय है । यह इन्द्रियों द्वारा उपर ज्ञान से नहीं जाना जाता । इन्द्रियमे जो ज्ञान हाता है वह रूपापदार्थोंके जाननेम ही समर्थ है । यह भा उपचार है । परमात्मसे ज्ञान अपने

परिणमनता जानता है परन्तु जो ज्ञान रूपीपदार्थोंके गम्यत्वसे होता है उन्मीम रूपापत्त्य प्रतिभासत है । आत्मान जाननेम पर ज्ञान समथ नहीं । आत्माना मानस प्रत्यक्ष होता है ।

( २ । ७ । ५१ )

१८ तिस भावना आत्मा करता है उम आत्माना वह भावकर्म होता है और वह आत्मा रसना करता जाता है, चाहे भाव शुभ हा, चाहे अशुभ हा । तिस समय आत्मा तिस भावना परिणमन करता है उस रूप हो जाता है । जैसे ताहका गोता तिसनाम अग्निसे तप्राथमान हा जाता है उस वातामें तमय ही है । उन्मीप्रकार जत्र आत्मा शुभभावन रूप परिणमता है उस वातम तमय हा जाना है । अत जा यह कथन है कि—

“ण नि होदि प्रमत्तो ण अपमत्तो जाणजोदु जो भासो ।

एव भणति सुदू णाथो जो गो उसो चेव ॥”

सा यह केवल द्रव्यकी अपत्तासे कहा है । वेयत जीव द्रव्य तो प्रमत्त है, और न अप्रमत्त है । प्रमत्त व्यवहार प्रथमगुण स्थानसे लकर झठन गुणस्थान पय त होता है । अनतापुयगी कपायसे लकर जर्हातक मन्तलन कपायना धिशिष्ट न्दय रहता है वफोतत्र आत्मान प्रमादना व्यवहार जाता है । सप्रम गुणस्थानमें कपायना उदय है परन्तु उसे प्रमाद शब्द वाच्यतासे व्यवहार नहीं करते । सप्रम गुणस्थानसे लकर आत्मान अप्रमत्तना व्यवहार होता है । यह दोना व्यवहार मापेन हैं । केवल द्रव्यना विचार किया जान तत्र न प्रमत्त है और न अप्रमत्त है । इमना अब यह नहीं कि जो प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्थाओं हैं व आत्मद्रव्यकी नहीं और जा आत्मद्रव्य है वह इन अवस्थाआसे सयथा शय्य हैं ।

( ५ । ८ । ५१ )

१६ परमाथमे सत्र द्रव्य भिन्न भिन्न हैं । काई द्रव्य किमीने साथ तमय नहीं होता । फिर का द्रव्योंम परस्पर इतना निमिरा नेमित्तिक मन्थर है कि आन जो यह अग्निलयिभ्र दृष्टिपथ हा रहा है यह न केवल पौद्गतिक है और न केवल चैतन्यमा हा विनाश है अपिमु यह दोनोंका ही परिणाम है । आन जा यह तुम्हारा मातृतीय शरीर है, तिमरी उपमा दुमरे शरारके साथ नहीं की जा सकनी । देव शरीर भी इसरे सामने अपनी प्रभुता नहीं दिग्ना मरता, तिथञ्च और नरक शरीरोंकी क्या तो दूर रहे । इम शरारके माथ आमामें यह योग्यता आ जानी है कि आमा अनन्त संसारके बंधनोंका उन्धेदकर मिद्वगतिमा पात्र हो जाना है । यन्पि प्र परिणाम आत्माहीमा है परन्तु यह परिणाम मानव शरीर विशिष्ट आत्माके ही होता है । अत इमे नचिन है रि अपना परिणतियों इतनी निमल बनानेकी चेष्टा करे कि घर घरके भिगारा न यने । कायरता ही दुग्गरी जनता है, विमारी आशा मत करो, आशासे मिलता भी बुद्ध नहीं । भौतिकपदापारा ता कभी भी माह मत करो, तुम्हारा जो गुण क्षाना ज्ञापा है उसका प्राप्त करा, उमरी प्राप्तिने लिये स्वयं मंथमी बना ।

( १५ । १ । ५१ )

२० उदात्ती अद्वैतवाद्वा मात्ते हैं—

“एकमेवाद्वितीयब्रह्म नेह नानास्ति विश्वेन ।

आराम तस्य पश्यन्ति न तत् पश्यति कश्चन ॥”

इम समारभ अद्वितीय ब्रह्म एव ही है । यह जा नातापन आप लागोंकी दृष्टिमें आ रहा है, बुद्ध नहीं है, उमका विषय मात्र है । उमको आप लोग देखते हैं पर उस ब्रह्मका काइ नहीं देखता, यही संसार है ।

यह देह या जो ये दृश्यमान पदार्थ हैं वे हमारे नहीं हैं, यह ध्यान तो कर रहा, जिस द्रव्यद्रव्यके द्वारा आत्मादम्य रहा है वह भी इसकी नहीं। यह भी जाने दा, जिस भावेन्द्रियके द्वारा जानता है वह भी आत्माना नहीं, क्योंकि वह भी एक क्षयोपशम जनित पयाय है। इसका भी डाढ़ा, अवधि और मन पयय ज्ञानभाआत्माके नग उनका भी कत्रलज्ञानके समयम अभाव हा जाता है तय आत्माना निच लक्षण कवल जा ज्ञान है वही तो शेष रह जाता है अत गेमी चेष्टा कर कि वही रह जाये, वह ता सर्वदा शक्ति रूपसे है, उसम जा विचार आ गया है वही पृथक् करा, यथे उपद्रवोंम मत पडो।

( ३०।८।५१ )

२१ जा आत्माकी यवापनामे अनभिज्ञ ह वे आत्म स्वरूपसे षञ्चिन हें। परम निजत्वका व्यामोहकर निरंतर दु सके पात्र रहते हें।

( २१९।५१ )

‘न त्व रिप्रादिको वर्णो नाशयी नाक्षगोचर ।

जसङ्गोऽमि निगमरो विश्वमाश्री सुखीभय ॥’

२२. वास्तवम विचारकर दखा जाये, तत्र आत्मा न ता त्राद्यण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है और न शूद्र है। यह जो मनुष्य पयाय है अममान जातीय जात्र और पुद्गल द्रव्यके परस्पर सम्बन्धमे हें। फिर भी इन दाना द्रव्योंका परस्परम तादात्म्य नहीं है। जीव चेतन लक्षणना तिये हुए भिन्न है, पुद्गल अपने लक्षण को लिये हुए भिन्न है। किन्तु दानाका उध होनसे दानों अपने स्वरूपमे न्युत हा गय हें। द्रव्य दृष्टिसे तो द्रव्यम कोइ विचार नहीं किन्तु पयाय दृष्टिसे विचार हो गया है। जैसे चाँदी और

सोना दोनों मिलकर एक पिण्डावस्थाको प्राप्त हो गय। फिर भी सोना जितना पहिले था उतना ही है और चाँदी भी उतनी ही है किन्तु वक्रावस्थामानना अपने स्वरूपसे न्युत हो रहे हैं। यही अवस्था आत्मा और पुद्गलकी है किन्तु यहाँ त्रिनातीय तो द्रव्य हैं अतः आत्माका जो विभाज्य परिणमन होता है वह आत्माका होता है। जिम्न कालमें आत्माका पुद्गल कमसे विपाकसे रागादि रहते हैं वे पुद्गल कमके विपाकसे भिन्न ही हैं और रागादि अज्ञान परिणत आत्माका निमित्त पारस्परिक पुद्गलका ज्ञानावरण ही पर्याय होती है वह रागादि अज्ञान परिणाम हेतुसे भिन्न ही पुद्गलद्रव्यका परिणमन है अतः वस्तु मर्यादा जानकर ज्ञानन किसीके कला मत बना।

( ८ । ९ । ५१ )

‘अग्निनाशिनमात्मानमेकं जिज्ञाय तत्त्वतः ।

तत्रात्मज्ञस्य धीरस्य कथमर्थार्जने रतिः ॥’

२३ आत्मा अग्निनाशी है, एक है, उसे परमात्मसे जिनने जान लिया है उस आत्मज्ञानी के जो जड है, विनाशी है, पुद्गलकी पर्याय है, हमसे अज्ञान करनेमें रति क्या होती है ? इसका मूल कारण अज्ञान है। यदि वह तत्त्वतः आत्माको जानता तब आत्माका स्वरूप उसे ज्ञाता नष्ट ही दिखाई देता, जिससे आभ्यन्तरिक अर्थपरिपदाका अर्थ भी नहीं जाता, बेचन ज्ञान ज्ञायक सम्बन्ध परक माय होता है फिर भा मोहने द्वारा हमको होकर परमात्मीय मानकर उन परिपदाके समझ करनेमें निरन्तर पुनःपुनः करता है। फल उसका अनन्त ससार होता है। ससारके सारत अनर्थाका मूल यही परिपदाका आत्मीयता है। जिसको आत्मीय मान लिया उसका रक्षा करना अपना कर्तव्य मान लेता है। यही कारण है कि



आनश्यन् वायाम भी अपना व्यय करनम भंसाच करता है। मंमारम अनेक प्राणा प्राणमेकम् पड हैं यदि उनको धनादि द्रव्यकी महाप्रता मिल जाय तत्र यद् अपने प्राणाकी रक्षाकर सकते हैं परन्तु विगन धनादा अपना मरस्य मान लिया है यद् अन्यरी कथा त्यागा अपन प्राण भी संकटम आ जाय तत्र भी उमे व्यय नहीं करता। अत वि आत्मरत्याण करना इष्ट है पद् इस धनसे समता त्याग।

‘आत्मानानाद् जगद्भाति आत्मत्वानात्प्रभामते ।

रज्वज्ञानाद्दिमीति तज्जानात् भामतेनहि ॥’

आत्मा अतानसे यह समार प्रतिभामता है और आत्माके ज्ञान दानपर नही प्रतिभामता है। अगात् तत्रत्र विषयय ज्ञान है तत्रात् समार है। समारम माहन द्वारा यह आत्मा स्वस्वरूपसं अर्परचित है, शरीरया ही आत्मा मानता है। अत निरन्तर उमीके अथ व्यापार करता है। इमीके अनुभूता जा पदाय होने है उनसे समह करने और इमक प्रतिभूत जा पदाय हात है उनके निमद् करनम आत्मशक्तिरा उपयोग करना है। पदाय न तो अनुभूल है, न प्रतिभूल है। यह कल्पना माही प्राणारी है जा पदाय आत्मीय रुचिसे अनुभूल हुए उमे अपानेना प्रयत्न करना है। और जा रुचिसे प्रतिभूत हुए उद् प्रथक करनसे निय प्राणपनसे प्रयत्न करना है। यद्यपि काइ भी परवस्तु चतमानम इसर अभि प्रायसे अनुभूल नहीं दर्सी जाती परन्तु फिर भा माहा जीय निरन्तर अपानेना प्रयत्न करता है। यदि अपनेना रिमी कारणसे व्यप्रता है ना उस कानम इष्टतम पदाय भा उसरो प्रयत्न करनेम समथ नहीं, अथरा हमारा ना इष्ट पदाय है यह राग प्रस्त है, हमार अनेक यत्न करनेपर भी उसरा राग नहीं जाना।

( १०१९१५१ )

२४ आत्मा ज्ञाता दृष्टा है। जो पत्थ उसके समक्ष आना है वह उसे जानता है इसके पहिलेम स्पर्शीय स्वरूपका दृष्टा है, जो दृष्टा है वही ज्ञाता है। आत्मा एव है जैसे आत्मा दृष्टा है वैसे ही ज्ञाता भी है।

( २१।९।५१ )

२५ यद्यपि आत्माका शुद्धरूप विमात्र है, यही आत्माका असाधारण धर्म है, यही शुद्ध आत्माका स्वरूप है। इस स्वच्छतामें जगत प्रतिभाममान हाता है। जैसे दर्पणरूपी पदार्थ है, उसमें स्वच्छता है, उसके समक्ष जो भी पत्थ आरगा प्रतिभासित हो जावगा अर्थात् पदार्थ तो पदार्थके क्षेत्रम है किन्तु उम पदार्थके निमित्तको पत्थ दर्पणम उसी पदार्थके सत्ता परिणमन हो जाता है किन्तु उम पदार्थके गुण, धर्म उमम नहीं आते। जैसे दर्पणके समक्ष यदि अग्नि हो तत्र दर्पणम अग्नि मत्सा आकार प्रतिभामता है किन्तु अग्निम जो उष्णता और ज्वाला है वह अग्निमें है दर्पणम नहीं।

( २।१०।५१ )

२६ हे आत्मन ! शरीरके साथ तुम्हारा अनादि सम्बन्ध है, तत्र तुम इमे अपना मानते हो। उमकी रक्षा करना ही अपना कर्तव्य है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी रक्षाने लिये अनुचित प्रयत्न करो। शरीर पुद्गल पिण्डसे निष्पन्न है, उमका आहार पुद्गल है, जाय उमका आधार नहीं। अत जो चेतन पदार्थ हैं उन सहित जो पुद्गल है उमका त्याग करो। जिमसे चेतन निम्न गया गेमा जो पुद्गल है उसे उपयोगम लाओ। यही कारण है कि मुनिगण प्रासुक् पदार्थाका ही उपयोग करते हैं तथा श्रापकोंम भी पञ्चमी प्रतिमासे सच्चित्त वस्तुका त्याग भी हो

जाता है। नीचे ४ प्रतिमावाले इस जीवका तो सपथा त्याग कर देते हैं। अने द्वयम प्रयोजना भूत अतिरिक्त शेष जीवोंकी हिसाना त्यागपर दत्त है। परमाथसे तो सभी पदार्थ अपने अपने वस्तुष्टयने अनुमार परिणमन कर रहे हैं। हम अनादिसे मोहके जशीभूत होकर उन्हें अपने अनुकूल परिणमन कराया चाहते हैं, यद्यपि ऐसा होता नहीं। हम कल्पनामें बुद्ध मानें, रज्जुम सप शक्ति हो सकती है, परन्तु रज्जु सप नहीं हो सकता। हमारी कल्पना जो चाह हो परन्तु पदार्थ उस रूप नहीं होता। हम शरीरको आत्मा मान लें यह असम्भव नहीं परन्तु शरीर आत्मा नहीं होता।

जहाँतक पुरुषार्थ कर सक्त हो आत्म दोष निवारण करनेमें ही लगाओ। अपनी परिणति यदि यथाथ भागपर आ गई तो संसार तत्त निरुद्ध आ गया। परकी समालोचना प्राय अधिकाशम मोही जीवों द्वारा की जाती है, परने गुण और दोष प्राय मोही जीवोंने ही ज्ञानम आते हैं, निर्मोही जीवने ज्ञानम प्राय वस्तु त्रिपय पडती है। यह उत्कृष्ट है, यह निरुद्ध है, यह कल्पना मोहके द्वारा होती है। ज्ञानका कार्य स्वरूप प्रकाशकत्व है। जैसे दर्पणरूपी पदार्थ है, उसने समस्त जो पदार्थ आता है वह उस दर्पणकी स्वच्छताम फलकता है। जैसे मयूरम नील, हरित, पीतवर्ण हैं, जब यह मयूर दर्पणने समस्त नाचता है तत्र दर्पणम उसका प्रतिबिम्ब पडता है, तत्र दर्पणम उसी तरहका आकार दीखता है। यद्यपि दर्पण स्थिर है किन्तु दर्शकोंको यह प्रत्यय होता है कि दर्पणम मयूर नृत्य कर रहा है परन्तु दर्पणम न तो नृत्य है, और न मयूरके नील पीत हरितवर्ण ही हैं। दर्पणम जो नील पीत हरितवर्ण दिखाई देता है यह दर्पणकी स्वच्छताका विकार है। इसीप्रकार ज्ञानमें जो आया यह ज्ञानका ही परिणमन है। ज्ञानके परिणमनका ज्ञानने साथ ही सम्बन्ध है। ऐसा नियम है—

“परिणमदि जेणदब्ब, तक्काल तन्मयत्ति पण्णत्त ।  
तम्हाधम्म परणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥”

( ४ । १० । ५१ )

२७ आत्मा एक चेतन गुणवाला पदार्थ है, उसका गुण चेतना है। सभी आत्माकी, सभी अवस्थाग्राम वह लक्षण रहता है। उसकी अपेक्षा देखा जाय तब सभी आत्माएँ समबन्ध हैं किन्तु जब अवस्थाओंको लेकर विचार किया जाता है तब भिन्नता भी पायी जाती है और अभिन्नता भी पायी जाती है। इसी अवस्थाने भेदसे आत्माके दो भेद आगमम कहे हैं—

‘ससारिणो मुक्ताश्च’

जितने भी जीव हैं उनकी दो अवस्थाएँ हैं। संसारी और मुक्त। मुक्त जानोंकी अवस्था सर्वदा एक सदृश रहती है अतः जितने भी मुक्तजाय हैं उनमें कोई भिन्नता नहीं। संसारी जीव एक, दो, तीन, चार, और पाँच इन्द्रियमाल होते हैं। कोई पञ्चन्द्रिय और मन वाले होते हैं। व्यवहारसे इन्हें जीव कहते हैं। परमात्मसे ‘जो चेतना प्राणका धारी है’ यही जीव है। वह लक्षण कालत्रय, व्यापी है किन्तु यह लक्षण ता आत्माको इतर पदार्थोंसे भिन्न दिग्गता है किन्तु लक्षण नष्ट यस्तु है कि जिसका लक्षण किया जाय उसकी सभी अवस्थाओंमें घटित हो। इसमें पदार्थकी प्रत्येक समयवर्ती अवस्थाओंका स्पष्टन नहीं। लक्ष्यतासे लक्ष्यका भेदज्ञान हो जाता है। इससे कल्याण और अकल्याणका अभाव नहीं होता। ऐसा जो चेतन गुण वाला आत्मा है उसमें इतर अनन्त गुण हैं। उनका भी परिणमन सर्वदा रहता है। संसार अवस्थाम आत्माके रागादि परिणमन होते हैं उनके सद्भावमें यह याह्य पदार्थोंमें इष्ट और अनिष्ट कल्पना करता है। यही कल्पना इसे सुप्त द्रव्यमें

कारण पड़ती हैं। जो इमको रुच गया वही इष्ट और जो न रुचा वहा अनिष्ट मानने लगता है। यद्यपि पदार्थ न इष्ट है, और न अनिष्ट है, यह कल्पना मोही जीवोंकी है। यदि पदार्थ स्वयं इष्ट और अनिष्ट है तब प्राणीमात्रको एक सदृश प्रत्ययम आता, सो नहीं, प्रत्युत एव ही पदार्थ किसीको इष्ट किसीको अनिष्ट दखा जाता है। जैसे एव नीमका ध्रुव है उमने पत उँटका मधुर और हाथीको कटुक लगते हैं। इसका मूल कारण हाथीकी रुचि विचित्रता है। अत ज्ञाना तनोंको नाइ पदार्थ इष्ट और अनिष्ट नहीं। अपना आत्मीय परिणाम ही उन्हें इष्टानिष्टका भेदक जान पड़ता है।

२८ आत्मा स्वतन्त्र वस्तु है उसम देखने जाननेकी सामर्थ्य है। यह मिद्वान है कि सभी पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, मात्रके अनुरूप ही परिवर्तन करते हैं। जैसे पानी जिस पेठमें जायेगा तदनु रूप ही परिणमन करेगा। परिणमो, परन्तु वह रूप रस-गन्ध-स्पर्श रूप है अत इमी रूप परिणमेगा। चूना तथा हरिद्राको मिला दीनिये, दोना मिलकर रक्तवर्ण परिणमनको प्राप्त हो जायेंगे। श्वेत, पीत जो पहिले मुधा, हरिद्राका वर्ण था वही रक्त हो गया। वर्ण बदलकर रस तो नहीं हो गया ? इमी तरह ज्ञानम जा ज्ञय आता है वह ज्ञान रूप नहीं होता क्याकि यहाँ पर दो विनातीय द्रव्योंका सम्मिश्रण है। यहाँ पर ज्ञेयको ज्ञान जानता है, वह जानना ज्ञानका परिणाम है। इसका अर्थ यह नहीं कि ज्ञान ज्ञेय हो गया। पुद्गल द्रव्यामें भी यही बात है। जैसे अनेक तन्तु जो पहिले गुल्थीके आकारके थे, आतान वितान ( तानवाना ) अथरथा द्वारा एक पट रूपको प्राप्त हो गये। इसका यह अर्थ नहीं कि वे एक हो गये। सभा पृथक् पृथक् हैं किन्तु उक्त अथ पट अवस्थामे हम देखते हैं। तन्तु समुदायका नाम ही पट है

और यह अवस्था शरीरका रक्षाम अममर्थ थी। यह पट शरीरकी शीतादिसे रक्षा कर मरता है।

( १२१०१५१ )

३

‘नाह देहो न मे देहो, जीनो नाहमह हि चित् ।  
अयमेव हि मे बन्धः आमीद्या जीविते स्पृहा ॥’

१ यह जो प्रत्यक्ष देह है सो मैं नरा हूँ और न मेरे देह है कर्मानि म ज्ञान दर्शनका पिण्ड हूँ। देह स्पर्शादि गुण वाला है। जो इस शरीरके सम्बन्धसे मेरी विवृतावस्था हो रही है, जिसे जीव कहते हैं, निम्न दश प्राण हैं,—पंच इन्द्रिय, तान बल (मनाग्रल, वचनग्रल और कायग्रल) आयु और श्वासोच्छ्वास इन दश प्राणा विशिष्ट देह सहित आत्माको जीव कहते हैं। इसमें जो हमारी स्पृहा है यही बन्ध है। ऐसा जो जीव है वह मैं नहीं, मैं तो केवल चित् हूँ। अथान् शुद्ध चेतना वाला जो पदाथ है वही मैं हूँ। अनादि कालसे ऐसा सम्बन्ध पुद्गलके साथ उत्पन्न हो रहा है कि यह परको निव मान रहा है। इसीसे उस जावित शरीरमें इसका स्पृहा रहती है। इसके जो पोषक पदाथ होते हैं उनमें इसका अनायाम समता परिणाम हो जाता है। प्रत्यक्ष अन्नादि पदाथ पर हैं, स्त्री आदि चेतन पदाथ भी इससे भिन्न हैं, यह भी इसको जानता है परन्तु इसका इन्द्रियानुष्ठान नहीं प्रवृत्ति होती है इससे अनायाम ही उन पदाथोंमें इसका निवृत्ति हो जाती है।

अनादिकसे शरारकी रचा हाती है, शरीरको यद् निज मानता ही है अत अनायास ही हमरे पापक तत्सोम इसका स्नेह हा जाता है ।

( १११०१५१ )

## आत्म निर्मलता

१ पुण्यादिककी योग्यता परिणामोंकी निर्मलतामे होती है । परिणामाकी निमलता ही संसार स्थितिना छेद करती है ।

( २६११११४७ )

२ ह आत्मन् ! तू इतना व्यम क्यों हा रहा है, अन्य मनुष्यामे काय मिद्धि चान्ता है ? यदि आत्म वन्याण करना है तो स्वय निमल धानेकी चेष्टा कर ।

( १११२१४७ )

३ आत्माकी परिणति निमल होना ही मोक्षना माग है ।

( २१४१४८ )

४ परिणाम निमल कैसे हो ? यद् समभम आवर मां उपायमे यच्चित रहत हें । परमाथसे उपाय रागादि नियुक्ति है और बह करना स्वाधीन है ।

( २६१५१४८ )

५ अंतरङ्गकी निमलता होना स्वाधीन है, सो कठिन नहीं । इसके ताय काइ आगम या समागमकी आनश्यता नहीं । समागमकी महिमा सत्र गायी है परन्तु अंतरङ्ग उपादान शक्तिके विना निमलता हाना कठिन है ।

( २११८१४८ )

६ अन्तरङ्गकी निर्मलता प्रत्येक कार्यम साधक है । साधक-  
तम ही सामग्री काय जनक है ।

( १२।१।४८ )

७ आत्मनिर्मलताका सम्बन्ध मोहके उपशमादिमे है ।

( २१।१०।४८ )

८ आत्माकी निर्मल परिणति भद्रताकी सूचक है ।

( १६।१।४८ )

९ संसारम वही मनुष्य जगतकी उपकार कर सक्ता है जो  
अन्तरङ्गसे निर्मल हो । मघ पटलसे आच्छादित सूर्य जगतकी  
प्रकाश प्रदान करनेका उपकार नहीं कर सक्ता ।

( ७।१२।४८ )

१० परिणामाभि निर्मलताका कारण पर पदार्थोंसे सम्बन्ध  
त्याग हा है । सम्बन्धका मूल कारण अनात्मीय बुद्धि ही है ।

( २०।१२।४८ )

११ अभिप्रायका निर्मलताके अभावमें अनेक जन्म द्रव्य-  
लिङ्गधारणकर भी मोक्षमार्गका पथिक नहीं बना । और अभिप्रायके  
शुद्ध होनेपर व्रत धारण विना भी मोक्षमार्गका पथिक बन गया ।

( २४।५।५१ )

१२ मन वचन-वायके व्यापार तो कपायके साथ ही वचके  
जनक हाते हैं । यदि कपाय न हो तो यह बुद्ध भी वचके कारण  
नहीं । केवल इनके द्वारा जो पुद्गल आता है आत्मप्रदेशासे  
स्पर्शमात्र करके चला जाता है । अत इनका संसारका जनक न  
समझो । संसारका मूलकारण कपाय है, उसे ही न होने दो इसीम  
आत्म कल्याण है । कपाय भी यदि मोहके साथ नहै नजलत



संसारका हतु है, अन्यथा उसका दाना भी आत्माका अनंत संसारका कारण नहीं होता। यही कारण है चा द्वितीय सामाया गुणस्थानमें यही अनंतानुबन्धी पपाय मिथ्यात्वादि षोडश प्रकृतिरे प्रथमा जनव गहा। अत निन जीर्णोका यत्याणमागम जाना है उठ बुद्धिपूषक अभिप्रायका ही निमित्त याना चाहिये। परपदाथ ज्ञानम न आय यह तो फाइ नियारण नहीं कर सकना। किन्तु जा पदार्थ ज्ञानम आय, उमम जा तिनय यन्पना है उमे हलादा यही उपाय हा सकना है।

( २४ । ५ । ५१ )

१३ निमित्तता यह वस्तु है जहां परती अपत्ता नहीं रहती। यद्यपि ज्ञायक सामायरी अपत्ता सयदा आसा स्वभासम अथ स्थिति है परन्तु अनादिकासे मिथ्यात्वरका संगत यत्ता आरहा है इससे कमतरय जा मिथ्यात्वादि भाष है उनका निन मानता है, उहीका अनुभव करता है, अतएव उही भाषाका कता बनता है। अथा, ज्ञानम जो ज्ञय आत है यन् रूप परिणमनकर उनका कता बनता है। जिस फालम मिथ्यात्व प्रकृतिका यभाय हो जाता है उस कावम आपरी आप मानता है। उस यानम ज्ञानम ज्ञय आथ इसका जानता है परन्तु ज्ञानका ना ज्ञयक निमि त्तसे परिणमन हुआ यन् परिणमनका शेषका नहीं मानता, ज्ञानका ही परिणमन मानता है। यही विज्ञापना अज्ञानीकी अपेक्षा ज्ञानाक हो जाता है।

( १५ । ६ । ५१ )

१४ चिन्नेने निमित्त भाषोका आश्रय तिया न ही इस संसार पद्धतिको निमूकर इस द्वन्द्वसे निद्वन्द्व हुए।

( २७ । ६ । ५१ )

१५. जो काम करो हृदयकी निर्मलतासे करा। संसारको सुखी करनेकी अभिलाषा त्यागो। संसारका मुग्धी बनानेकी जो भावना है उसमें भी आत्म सुखहीना भावना है। भावनाका तात्पर्य देखना चाहिय जैसे मैत्रा भावना है, 'जगतम क्तिता भी प्राणीको दुःख न ले, इसका यही तात्पर्य तो है कि कोई भा प्राणी दुःखी न हो, इसमें आप भी तो आगया। अतः जा निमल भावनाएँ हैं उनका फल स्वयं भोगता है, न कि क्तिता लिय भावना भाता है वह उसका फल भोगेगा, कदापि नहीं। जैसे हम श्री जिनेन्द्रदेवकी उपासना करते हैं उसके फल भागी हम हा तो होत हैं, भगवान् तो नहीं होते ? इसीप्रकार जत्र हम क्रोध, मान, माया और लोभ रूप परिणमन करते ह, उसका जो फलहागा हमही का भोगना पडेगा क्योंकि यह अटल सिद्धांत है जो करता है यही भोगता भी है, जैसे आपने किमीना दान दिया तत्र उममें जो पुण्याचन किया उमका फल आप ही ने तो भागा, अथ तो जो वस्तु उमका नी उसका हा स्वामी वनेगा, तज्जय फल भोगेगा।

( २९।७।५१ )

१६ आत्माकी परिणतिपर गम्भीर च्छिसे परामर्ग क्ते क्तिनी निर्मलता है ? निमलतासे तात्पर्य रागादि परिणामोंके कृशतासे है। रागादिक जत्रतत्र यथाख्यातचारित्र न होगा निमलतासे होंगे, उनमें राग मत करो। उनमें राग न करनेका आशय ही है कि उन्हें उपादेय मत माना। रागादिभाव लो क्ते घालोंके भी होत हैं परंतु व आश्रयरूप ही है अतः क्ते व्रती, महाव्रती हैं वे उह उपादेय नहा मानत। क्ते र्त्त भाव होना चाहिय जो शब्दोंसे नहत हा।

१७ भावना निर्मल धतानी चाहिये। भाग्य ही भवनाशिनी है। अनन्त संसारका कारण असद्भावना और अनन्त संसारको विध्वंस करनेवाली सद्भावना है।

( २ । ९ । ११ )

१८ अपनी दृष्टि निगम होती आवश्यक है। काश् बुद्ध भी बद्ध वसपर अन्तरात्मासे परामर्श करके ही निगम दा।

( १९ । १० । ५१ )



मानवताकी कसौटी

गान्ध

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल

बाल



८ जिसने निर्दिष्टकृति का अवगमन लिया उसीने मनुष्य जन्म का मार्ग किया ।

( २४।०।४७ )

५ मनुष्य का सतोप करना उचित है, कार्य करने का प्रयत्न करना उचित है । काय जाना, न होना भाग्य के अधीन है ।

( २८।१०।४७ )

६ मनुष्य लाभम आकर नाना अन्याय कर बैठते हैं उसका फल अन्त्या नष्ट होता । कारण निम्नता बुरा होता है उसका कार्य उत्तम नहीं हो सकता । प्रबल के धीचले कमा आम नदी ही मरता ।

( २९।१०।४७ )

७ मनुष्य का मन अत्यन्त क्लृप्त होता है, कयावि सदा पाप रूप परिणाम और व्यर्थ ही कल्पना करता रहता है ।

( ५।१२।४७ )

८ निरपन्नता ही आत्मविश्रान्त का मुख्य कारण है । मानव जीवनम जिसने यह गुण सम्पादन न किया उसने कुछ नहीं किया ।

( ११।१२।४७ )

९ मनुष्य चमरी साथफता मनुष्यता के विनाशमें है, व्यर्थके जालम पन्नेम नहीं ।

( १५।२।४८ )

१० समारम मनुष्यतावन कठिन है, इसमें लिय दान तरमत है। इसका पान जिसने किया यह व्यर्थ ही मनुष्य हुआ ।

( ५।११।४८ )

११ मनुष्यपथाय पानका फल यह है कि यह अपनेकी सत्वमम लगाय । मन्मसे तात्पर्य यह है कि विषयच्छा त्यागे । विषय लिप्ताने जगतको अधा बना दिया । जगतको अपनेना ही अपने पतनका कारण है ।

( १२।१२।४८ )

१२. मनुष्यनाम पाना उसीका मारुतक है जो शांतिसे व्यतीत कर। अथवा पशुजन्तु जीवन बध, वधना ही कारण है। अपने सुखके लिये परका घात करना मनुष्यताके सर्वत्रा विरुद्ध है।

( १३।१२।४८ )

१३. मनुष्यनाम एक महती निधि है। यदि इसका यथार्थ उपयोग किया जाय तो इस जन्म मरणके रोगसे छुटकारा हो सकता है क्योंकि संसार घातका कारण जो सयम है वह इसी निधिसे मिलता है परन्तु हमलाग इतनी पामरता करते हैं कि रागकेलिये चन्दनको भस्म कर देते हैं।

( १३।१२।४८ )

१४. आनन्द विज्ञानका युग है। इसमें जो पुरुषार्थ करेगा वही उत्थिति करेगा। इस समय प्रायः जो मनुष्य पुरुषार्थी है वह आमाय उत्थिति पात्र हो जात है। जो आलसा मनुष्य है वह दुःखके पात्र होते हैं। मनुष्यनाम पानेका यही फल है कि स्वपरहित करना। अन्यथा जैसे तो श्वान भी अपना पेट भर लत है। मनुष्य की उत्कृष्टता इसमें है कि अपनेको मनुष्य जनाव। मनुष्यका ज्ञान और विवेक इतर योनियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंका अपेक्षा उत्कृष्ट है। तिर्यञ्चमें तो पयाय सम्प्रद्वी ज्ञान होता है, देव नारकी जीव विशेष ज्ञानी होते हैं परन्तु उनका ज्ञान भी मयादित रहता है तथा व देव नारकी सयम भी धारण नहीं कर सकते। तिर्यञ्च भी देशसयमका पात्र हो सकता है परन्तु इतना ज्ञान उमना नहीं कि अथ चात्रोंका कल्याण कर सके। मनुष्यका ज्ञान भी परोपकारी है तथा सयम गुण भी ऐसा निमल हो सकता है कि इतर मनुष्य उसका अनुकरणकर अपनेको सयमी जाननेके पात्र हो जाते हैं।

( २०।५।५१ )



१५) जा मनम हा मो वचन कहिए, और जो वचनसे कहिए उसे वाय द्वारा कीजिये, केवल गल्पवाद और मनम हा विमल्यर कृतकृत्य मत हो जाइये। अन्यकी वजा छोड़िये, मनम लुब्ध है, वचनसे लुब्ध और अताप रहे हैं तथा वायसे लुब्ध और ही बर रहें हैं—एसे जीव मायाचारी कहलाते हैं। अयना ही अनल्याण नहीं करते अपितु अपना भी अनल्याण कर स्वयं दुःखी हात हैं।

मेरे मनम यह विचार आया कि मनुष्य पर्याय बड़ी कठिनतासे मिली, इस पर्यायसे यह जीव समय धारणकर माश्रका पात्र बन सकता है। अन्य पर्यायम सफलपरिमह त्यागने भात्र नहीं होते। नारकी और देवम तो दशसयमके भी भात्र नहीं हात। तिर्यन् पर्यायम देशसयमके ही भात्र होते हैं। मनुष्यपर्यायम ही एसा निर्मलाभाय होता है कि यह जीव बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिमहका त्यागकर परिव्रानर देगम्बर पदका धारक हो सकता है। नितना राहपरिमह मनुष्यपर्यायम जीवने होता है उतना अन्यत्र नहीं होता। देवोंमें जो परिमह है वह परिमित है। मनुष्योंमें कोई गणना नहीं। छह खण्डका अधिपति होकर भी शांत नहीं होता। इसका वृष्णा गत इतना गंभीर हैं कि तीन लोककी सम्पत्ति इससे एक कोणको भी नहीं भर सकती और यदि यह इस परिमहको त्यागना चाहे तत्र एण सूतका धागा भी नहीं रखता। त्याग गुण भी इसमें अलौकिक है। जो परिमहको ग्रहण करते हैं तथा उसमें आसक्त रहकर उसकी रक्षा करनेमें अपना ध्यान रखते हैं व ही दुःखी हैं। और जो परिमहसे ममता त्याग उसका त्याग कर देते हैं वही परमाथपथके पथिक बनते हैं।

( २।६।५१ )

१६) इस संसारम जा माननजाति है वह सत्रसे श्रेष्ठ है। इस वारीरसे आत्मा मोक्षका अधिकारी है। चारगतियों हैं, उनम

मनुष्यगति सबसे उत्तम है । 'माना कि नारक, तिर्यग्गतिसे मनुष्यगति श्रेष्ठ है किन्तु देवगतिमें अच्छी नहीं । देवलाग मनुष्यामें श्रुष्ठ है क्योंकि वे तार्थद्वार भगवानके गर्भादि कल्याणकरा उसबन्ध प्रभावना करते हैं, ममवशरणकी रचनाकर जगतमें प्राणियोंका उपकार करते हैं, नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अष्टमि चैत्यालयकी वदना करते हैं परन्तु यह वदना ठीक नहीं, क्योंकि सर्वोत्तम सयम तिससे मोक्ष हाता है यह मनुष्यकी वदना है अतः सभी पर्यायोंसे मनुष्य पर्यायकी उत्तमता सिद्ध है । इसको पाकर यदि उपयोग नहीं किया तब अपने मनुष्यकी लाटने ही के मन्त्र इस पर्यायको जानो ।

( २८ । ७ । ५१ )

१७ मनुष्यनन्मकी माधनतात्यागसे है । नारक, तिर्यग्गतिमें तो प्रायः संज्ञाशताकी ही प्रचुरता है । तिर्यग्गतिकी अपथा नारकगतिम प्रचुर संज्ञाशता है और वे परस्परम एव दूमरेको विक्रिया द्वारा अनेक प्रकारके कष्ट देते हैं ।

( १९ । ८ । ५१ )

१८ मनुष्यको सदाचारसे रहना अति आवश्यक है । जो सदाचारमें पतित है व अपने पवित्र जाति और कुलाको क्राद्धित करते हैं । जाति और कुल तो पराश्रित हैं किन्तु व अपने पवित्र आत्माको मन्नारका पात्र बनाते हैं ।

( १८ । ८ । ५१ )

१९ उत्तम मनुष्य यह है जो निर्दोष आचरण करें, निर्भीक हों, परकृत निंदा प्रशंसाने द्वारा दुखी और सुखी न हों ।

( २१ । ९ । ५१ )

२० मनुष्य वही है जो सहसा किसी घातको मुनकर यद्वा सद्वा निणय न देने लगे ।

( १९ । १० । ५१ )

०१. मनुष्य जन्म पत्र उत्तम है। इसमें ज्ञानकी उत्पत्ति विशेष रूपसे हो सकती है। यदि यह निरंतर उपचागरा स्तिर रखे तब बहुत कुछ उपद्रवमि सुरक्षित रह सकता है किन्तु यदि इस घातक है कि यह निरंतर माहने अर्थात् हापर मर्यादा पश्यदाथकि सम्बन्धम ही उद्घापाह करना रहता है। आत्मगत दोषाका दूषण करना प्रयत्न नहीं करता। समये मदात्त दाप इसम यह है कि या आत्माका नहीं जानता परमें आत्मायनारी कल्पना करता है यही इसको संसारम अशाठितरा भाग है। जितदिता हमको यथाध हा गया कि परमे हम भिन्न हैं उमीत्ति इस सुख शान्ति भाजन हा जायगे।

( २१ | १० | ५१ )

## धर्म

१ धर्मर हेतु मनुष्य घड़े घड़े प्रयत्न करता है मन, वचन, काय व्यापारोंका सरल करनेकी चेष्टा करता है परन्तु यह नीना स्तन नहीं है। इनका कोई अर्थ नियन्ता है। उमने अर्थात् इत्ये प्रवृत्ति है। यह कौन है ? इसका ज्ञान जाना अगम्य है। कोई कौन क्या प्राय अग्निल संसार इसका नियन्ता इश्वरका मान लेता है।

( १० | १ | ४० )

२ स्थिरमति होनकी परमावश्यकता है। प्रतिदिनकी जो प्रतिक्रिया है उसे पूर्ण करा परन्तु नवीनकी ओर आग भी बना। ये वला अगम्य आश्रय धम नहीं होता, यह तो आत्माका परिणति है। यह न तो आगमाभ्याससे हाती है और न सत्त्वमागमसे होती है और मन-वचन-कायन व्यापारसे ही होती है। जितने विकल्प

कपायोंके अधीन हैं। कपायर्त्ता निवृत्ति ही धर्म है अत जहाँतक बने उसे हटानेका प्रयत्न करो।

( १।५।४७ )

३ अतरङ्ग धमका कारण नौ कपायकी उपशमता है, वह अपने स्वाधीन नहीं। क्या करें ?

( १५।५।४७ )

४ धमके कार्योंके करनेमें आलस्य मत करो। आलस्य ही पापका जड़ है।

( २०।८।४७ )

५ रूढिके अनुसार चलना शीर बात है धर्मका स्वरूप समझ लेना और बात है।

( २३।८।४७ )

६ संसारम मनुष्य जितना धममें ठगाया जाता है इतर बातोंमें नहीं ठगाया जाता। व्यवहारधमकी प्रियासे ही आदमी धमात्मा माना जाता है।

( ९।१०।४७ )

७ लोग केवल ऊपरी दृष्टिसे द्रव्य व्यय करत हैं, पारमार्थिक धर्मका दृष्टिसे परे हैं। परमार्थ तो उन्हाका प्राप्त हो सनता है जो धर्मको समझें।

( १३।१।४८ )

८ ससारमें प्रतिष्ठा पानेके लिय धमका आचरण अधागनिका कारण है।

( ८।२।४८ )

९ धमके मर्मको जानना ही कल्याणपथका पथिन होना है परन्तु हम धमके जाननेका तो प्रयत्न नहीं करते केवल लौकिक मनुष्योंको

मममानना प्रयत्न करत हैं जो सर्वत्र अनुचित है। जत्र अप  
ही वसका विनाश नहा तत्र अन्यम क्या करण ?

( २५ । २ । ४ )

१० धर्म आत्माकी रस परिणतिका कहते हैं जा निमी कार  
अपेक्षा न करता हा—जैसे पारिणामिक भाव। इसी प्रकार  
द्रव्योकी अवस्था है। जितने गुण हैं सभी धर्म हैं क्योंकि  
निमीका अपथा नहीं करते। इम व्याख्यान पर्यायको धर्म  
कह सक्त, चाहे यह म्याभाषित हो चाहे वैभाषिक हो।

( ३ । ३ । )

११ धर्मका सम्यक् आत्मासे है और जत्रतक आत्माके य  
न होगी तत्रतक इसी चक्रम रहेगा। जा उसको नहीं जानत  
बाह्य कारण ममुदायम ही लम्बा रहता है। अतसे मान  
नाना प्रकारके दवाकी कल्पना कर उसे सिद्ध करना चा  
परतु भीतरसे विचार करा क्या इन कल्पनिक मूर्त्तियोंम  
सत्ता है ? नहीं।

( १० । ३ । )

१० हमलोग तने मूढ़ हो गये हैं कि मागकी सर  
भूल गय, केवल बाह्य क्रियाम धर्म मानकर मुग्ध हो गये हैं

( २९ । ३ । )

१३ अतरङ्गमें धर्मकी रुचि होनी चाहिय, केवल ग  
तो अरण ही का विषय रहता है अधिक हुआ ता उस  
बोध हो गया।

( ७ । ४ । )

१४ परकी अपेक्षा धर्म साधन नहीं होता, धर्म सा  
निरीद धृत्तिमे होता है।

( ११ । ४ । )

१५. शिथिलाचार करना धमना घातर है। समोच करना शिथिलाचारना साधक है। गृहमन्योके साथ रहना ही इमना पोषक है।

(५।५।४८)

१६. धर्मकी श्रद्धा एक एसी अपूर्व श्रौषधि है कि उममे महानमे महान् उपसग टटा जाते हैं, शांतिमार्गमे प्राप्त होनेका उपाय अनायाम मिल जाता है। अतः जिहें आत्म-व्यन्याग करना है व धर्मको न भूलें।

(१३।९।४८)

१७. धर्मका मम है कि आत्माको केवल रहने दा। सन जीनोंके समदृष्टिसे देखो। इसका यह अर्थ है कि कर्मविपासमे मनुष्योंके नाना परिणति हो रही है। उनमे तुम्हारे अनुकूल जो नष्ट परिणति गलेसे भट्ट ट्रेप कर लेते हो, जो तुम्हारे अनुकूल परिणति गला हुआ उससे तुम प्रेम कर लेते हो। यह उचित नहीं। अतो निच परिणतियों विभाज जान उसके पृथक् करनेका प्रयत्न करो

(९।१०।४८)

१८. समयका सदुपयोग करो अर्थात् धार्मिक भावोंको प्रोत्साहित रहो जिससे आमा उन भावोंसे बचे जो अनुकूल परिणतियों

(१३।१०।४८)

१९. धमम दृष्टि ग रखनेके लिये धीरता रखनी चाहिए

(१०।१०।४८)

२०. धर्म पदार्थ इतना व्यापक है कि प्रत्येक जीवित प्राण मानता है। समारम आन वितने मत प्रचलित हैं कि मनुष्य प्राण है। इसके सिवा बाइ भी मत जीवित प्राण हैं। मनुष्यमें इन्द्रियादि प्राण हैं किन्तु उसकी शक्ति बहुत जगत अनेक सङ्कोका पात्र बन रहा है। स्वस्वरूपको न जानकर मनोनीत कल्पना

पृथिवीके विशेष स्थलोंको ही धर्म मानते हैं अथवा विशेष स्थलके स्पर्शसे ही आत्मा पवित्र हो जाती है, कोई पानीको ही धर्मका साधन मानते हैं अथवा पानीके स्पर्शसे ही आत्मा पवित्र हो जाती है, कोई अग्निको ही धर्मका साधन मानकर समर्पण पूजा करनेमें ही धर्म मानते हैं। धर्मका वास्तविक परिचय निम्नमें मिलता है वह करनेको क्या ध्याताम—आत्मा मनोधन, धनधन तथा कायबलसे ही कार्य करता है, कषायसे मद्धायसे ही उनमें तीव्रता और मन्दता आती है। जहाँ नीच कषाय हाती है वहाँ पापके कार्योंमें प्रवृत्ति करता है और जहाँ मत्त कषाय हा वहाँ धर्मके कार्य करता है, परापहार करता है, दण्डपूजा, गुरुकी उपासना तथा स्वाध्यायमें प्रवृत्ति करता है।

( ३, ४ । १ । ५१ )

२१. आजकल मनुष्य धार्मिक विद्याका अभ्यास नहीं करत अतः उनके भाग परमाथनी ओर नहीं जात। सभी मनुष्य केवल यही चाहते हैं कि जैसे भी हो धन आर। इस समय धर्ममें प्रवृत्ति नहीं, जो प्रवृत्ति करत भी हैं वह भी इमी अभिप्राय से करत हैं, कि कुछ धर्मका कार्य करत हैं उसमें भी यही भावना रहती है कि ससारका वैभव हम प्राप्त हो। इसके लिये बड़े-बड़े यागादिक कार्य करते हैं, कोई मन्दिर, कोई तीर्थयात्राम सुकल द्रव्य व्यय करत हैं, यहाँ तक कि धनके लिय प्राणों तन्ना विसर्जन करनेमें भी आना जानी नहीं करत।

( ३१ । १ । ५१ )

२२. आत्माके परिणाम विशेषणनाम धर्म है परंतु 'हमारा धर्म' कहकर उसे अपना बनानेकी प्रक्रिया चल पड़ी है। तबिन साचनेकी बात है कि यदि इस तरह धर्म अपना सम्भर हा जाय तो अर्थका क्या रहेगा ? समझमें नहीं आता।

( ३ । २ । ५१ )

२३ धर्म पदार्थप्रथम तो प्रत्यक्ष नहीं तथा ऐसा भी नहीं जो द्रव्यसे लिया जा सके । यदि द्रव्यसे मिल जाता तब प्रायः बहुतसे मनुष्यों का उम्मा लाभ हा जाता । वडे उडे धनी पुरुष लाखों रुपया धर्मके कायाम व्यय करते हैं परंतु उनको शांतिका तारा भी नहा ।

( ४ । २ । ५१ )

२४ यह बाल इतना रिपम है कि इसमें मनुष्योंकी चेष्टा सर्व धर्मके विकारम होना असम्भव है । धर्म यह पदार्थ है जो अपने अस्तित्वमें किसी सद्भावकी अपेक्षा नहीं रखता । जैसे अमिका धर्म उष्ण है, यह किसीकी अपेक्षासे नहीं स्वयमेव है । उसी तरह जिस पदार्थका जो धर्म है वह निरपेक्ष हा रहता है । आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र धर्म है, व सापेक्ष नहीं । हाँ आत्मा जन् संसार अस्थाम रहता है तब इसके अनादिकालसे कर्मका सम्बन्ध है उससे इसने विद्वत भावका धारण किये हुए हैं—सम्यग्दर्शनका परिणाम मिथ्याज्ञान, ज्ञानका परिणाम मिथ्याज्ञान तथा चारित्रका परिणाम मिथ्याचारित्र रूप हो रहा है । यही कारण है कि हम आत्मश्रद्धा तथा आत्मज्ञान और आत्मचारित्रसे गिरे हुए हैं । परम आत्म श्रद्धा, परमें ही आत्मज्ञान तथा परमें ही आत्म प्रवृत्ति कर रहे हैं ।

( १४ । ३ । ५१ )

२५ धर्म कोई ऐसा वस्तु नहीं कि जिसका अस्तित्व आत्मासे बाहर पाया जाय । वह तो कपायके अभावम व्यक्त होता है ।

( २० । ३ । ५१ )

२६ धर्म तो आत्माकी निर्मलपरिणतिसे सम्बन्ध रखता है । मोह और क्षोभके अभावम ही उसका उदय होता है ।

( ८ । ५ । ५१ )

२७ आजकल धर्मका अर्थ जनता इतना ही समझती है कि



पापी छानकर पीना, रात्रिम भोजन न करना, देव दर्शन करना। इनका छाना अति आवश्यक है किन्तु जिसको धर्म कहते हैं उसकी गंध भा नहीं। धर्मका वास्तविक अर्थ यह है कि आत्मा पर पदाथसे भिन्नता भासने लगे और फिर हिंसाणि पञ्च पापोंसे आत्मासे सुरक्षित रखे। सबसे महान् धर्म यह है कि किसीका कष्ट न पहुँचाये। वही आत्मा परको कष्ट नहीं दे सक्ता जो अपनका पहिचान। जिसत अपनेका नहीं पहिचाना वह मनुष्यत्वका पात्र नहीं। लोग वष दशानम धम समझत हैं, होता भी है किन्तु आनकल न तो वेप हैं, और न भात्र हैं, केवल आडम्बर मात्र हैं।

( १५।७।५१ )

२८ यह पञ्चमकाल है, पुष्प तथा स्त्री गणम यह शक्ति नहीं कि निरपेक्ष धम साधन कर सक।

( ११।८।५१ )

२९ आनकल मनुष्य स्वच्छाचारी है। धमको एव अनापश्यक व्यर्थ कर्तव्य मानते हैं, केवता अर्थ और कामको ही आवश्यक मानते हैं। अर्थका प्रयाजन भी कामकी सिद्धि है। पयससानमें चानकल सिद्धान्त ही आ जाता है कि—“आनदसे जीवन प्रिताथा, त्याग आदि प्रपञ्चाम मन पडो, यह केवल धमके नाम पर अन्तानी लोगाने प्रपञ्च फैलाया है, धमके नामपर द्रव्य तोकर आप ता आनन्द लव, और हमका त्यागका उपदेश देवें। इत्यादि।

( १०।८।५१ )

३० प्रत्येकके मनम यह आ गया कि धमका करनेका हमारा भी अधिकार है। हमारे अज्ञानके द्वारा ही हम धमसे वञ्चित हैं। धर्म काइ एमी वस्तु नहीं जो किसीसे भिन्नम मिल जाव। हम स्वयं इनन फायर हो गय हैं कि उसके होते हुए भी परमे याचना करत

हुए भी लज्जित नहीं होते। धर्मका घातक अधर्म है, अधर्मके सद्भावमें धर्मका विकास नहीं हो सकता। जैसे अधकारके प्रभावमें प्रकाश नहीं क्योंकि अधकार और प्रकाश यह दोनों परस्पर विरोधी हैं किन्तु जब रात्रिमा अन्त आता है तथा सूर्योदय होता है उस समय अधकार पर्याय स्वयमेव विलय जाती है। इसी प्रकार हमारी प्रवृत्ति अनादि कालसे परम नित्य वन्द्यता पर मिथ्याज्ञानका पात्र बन रही है और इसी द्वारा अन्य पदार्थोंको निजमान आत्मचारित्र्यको क्रोध, मान, माया, लोभ रूप बना रही है, निरन्तर इन्हींमें तमय हो रहा है। इनमें तमय होनेसे आत्मीय क्षमा, मानव, आज्ञा, शौचका घात कर रही है। जब क्षमाविन् प्रयायाना उदय नहीं तब आप ही वताओ शांति रसना आस्वाद कैसे मिले ?

( ३११०११ )

३१ धर्मवस्तुका उदय आत्मामें ही होता है। जिस कालमें आत्मामें धर्मका पूण प्रकाश हो जाता है उस समय यह उत्कृष्ट है, यह मध्य है, यह ज्वल्य है, यह भाव मिट जाते हैं।

( १०१०११ )

३२ आत्मज्ञान व्यवहार धर्मकी विशेष प्रभुता है। अन्तरङ्गकी और अणुमात्र भा दृष्टि नहीं अथवा उस और लक्ष्य जाता।

( ०२१०११ )

३३ धर्मका प्रचार सूयवत् करो, दापकत् नहीं क्योंकि दापकका प्रकाश घरके ही पदार्थको प्रकाशित करना है, सूयका प्रकाश संसारके पदार्थोंको प्रकाशित करना है।

( २११०११ )

३४ राजनैतिक काय करने वाले प्राय धर्मकी श्रद्धासे च्युत हो जाते हैं, धर्मका ढोंग वताते हैं। यद्यपि धर्म आत्माकी निज परिणति

इसमें जो विकार हैं उसे वास्तवमें धर्म मानना मित्या है। जैसे आत्माका स्वभाव ज्ञान दर्शन है उसका जो कार्य है पदार्थका देगना जानना है। देगने जाननेमें जो पदार्थ आत हैं उनमें निरत्य कल्पना करना तथा उनमें राग द्वेष करना यह विकार है। इस विकारको न त्यागना धर्मका बाधक है। इसे हित मानना यह अधर्म है। विकारका औपाधिक ज्ञान उनमें दूर करनेका प्रयासरना यह माग प्राप्तिका उपाय है। इसमें लगना ही संसार बाधनसे दूरनेका उपाय है

( २५।१२।५१ )

३५ धर्म एक ऐसा पन्थ है जो प्रत्येक प्राणीका स्वता है।

( २५।१२।५१ )

## सहज सुख साधन

१. जा कोई सुख चाहे उसे उचित है कि सुखके कारणका अन्तन करे और उसके बाधक कारणोंका परिहार करे। 'सुख क्या है?' यह प्रायः सभी जानते हैं कि आकुलताका अभाव ही सुख है। आकुलताका अभावमें चित्त शान्तिका अनुभव करता है अतः जहाँ शान्ति नहीं वहीं आकुलता है और जहाँ आकुलता है वहीं दुःख है।

( २०।३।४७ )

२. असातोप्यमें झगड़ मत करो, सातोदयमें हर्ष मत करो, शांतभावसे धर्मके उदयको देखो जानो। संयमका स्थान मनुष्य भर हा है क्योंकि यहीपर उसके उत्पन्न होनेके कारण मिलते हैं

अतः मनुष्य बने रहनेका प्रयत्न करो। सपने कठिन कार्य परम आत्मबुद्धि न होना है। जगतको अपना मानकर आत्मा दुर्बला पन्न हो रहा है। भिन्न मानकर विग्रह जगतम अपनेको समझे, अपनेम जगतको न समझे तो मुख हस्तगत है।

(२१।४।५७)

३ ऐसी चेष्टा करो जो कोई कल्पना न हो। कल्पना ही ससारकी जननी है। कल्पना चाह सत् हो, चाह असत् हो आशुनिता हीरी जननी है। अतः जहाँतक बने कल्पनाआसो त्यागा। उतनी ही कल्पना करो नितनी तुम्हारे पुरुषार्थसे सम्पन्न हो सक्त है। पासम एन पैसा न हो और वम्बड यात्राकी इच्छा करे यह क्या अमगत नहीं है? कालके अनुसार काम करा, देखा देखी मत चलो। शक्त्यनुसार किया गया अनुकरण सुखका साधक हाता है।

(२६।४।५७)

४ श्रीगीतरागदेव ही आत्ममुखके पात्र हैं। ससारी मनुष्याको मुख कहाँसे हो? इतनी इच्छाएँ हैं जिनके पदार्थ नहीं। सभी पदार्थ भी यदि एकको मिल जायें तब भी इसकी इच्छाकी पूर्ति नहीं हो सकती। केवल भ्रम ही मुख हानेका है। यदि मन भरकी भूखपालेको एक कण मिल जाये तब भना उसकी पूर्ति हो सकती है? नहीं, फिर भी यह मोही जीव प्रयास करनेसे नहीं चूकते।

(४।५।७७)

५. नाना विकल्प हाते हैं जिनमे कोई भी सार नहीं। जो कार्य कर सके उसे यदि कोई विकल्प हो कोइ हानि नहीं परन्तु यहाँ तो वह धारा विकल्पोंकी होती है जिनके प्रारम्भ करनेकी सम्भावना नहीं। ससारम जो मिलता है वही विकल्प जालमें वैसा

हुआ अपनेको लुखी कहता है इससे यह समझना चाहिये कि  
बाई भी मुखी नहीं ।

( ३।१।४७ )

६ मसारम नितने प्राणी हैं मभी मुग्गके अभिलाषी हैं,  
एतदथ ही उनका प्रयास रहता है । 'शांति मिल' इसके लिये  
अनेक प्रकारके उपायोंका अवलम्बन करते हैं, निरंतर उपायोंके  
समूहकी आत्नतामें आकुलित रहते हैं ।

( २९।७।४७ )

७ मसारमें सभी मनुष्य जो क्रिया करते हैं उनका तात्पर्य  
यह रहता है कि इससे द्वारा हमको सुख हा । मुग्गकी सिद्धि  
कपायमें अभावसे होता है । क्रिया करनेमें इन्द्रा मुग्ग होती है  
क्रिया सिद्धि होनेपर कपायकी निवृत्ति हो जाती है ।

( २२।११।४७ )

८ मनुष्योंके पापोदयकी मुख्यता है वसीस मुग्गकी सामग्री  
मिलना दुर्लभ है ।

( ५।१।४८ )

९ अनुकूल, प्रतिकूल अवस्थाम का रूप, विपाद करता है  
यह कभी भी मुग्ग नहीं हो सकता । अनुकूल प्रतिकूल भाव ही  
विभाव हैं, अनात्माय हैं, इनमें मुग्गका लक्ष नहीं ।

( १४।५।४८ )

१० आत्माकी परिणति सुख चाहती है परन्तु कपाय करनमें  
भय करता है, कैसे मुग्ग मिले ?

( १।८।४८ )

११ इस ससारमें यदि मुग्गका चाहते हो तो विश्वास करो  
कि अथ मनुष्योंकी तथा दूर रह यह शरार भा तुम्हारा नहीं ।  
शरार पर द्रव्य है हममें हममें आत्मीय कल्पना कर ली है ।

( १।८।४८ )

१२ ससारमे वही मनुष्य सुख कर्म करने वाला  
निस्पृह हो ।

१३ ससारका मूल कारण मोह  
फरो । वही दुःखने मूल है सो नहीं फरो  
तो है । सुख भी तो और कुछ नहीं  
का मूल है ।

१४ सुखने लिये प्रयास करना  
तुल्य प्रयास है । सुखना विषय  
कारण रागादि परिणाम है अतः  
प्रयास करा ।

१५. इस ससारमे सन्तान  
और वह सुखकी प्राप्ति सब  
कर्मक्षय सम्यक् चारित्रसे हासिल  
होता है और वह अन्वय  
श्रुतिसे होता है, वह अन्वय  
भगवान् आप्त वह हैं  
जिसने छुधादिन दोष है  
चारित्र नहीं हो सवता ।  
करने वाले हैं । जहाँ श्रुति  
नहीं वहाँ मोहनीय कर्म  
मोहनीय कर्मका स्वप्न  
घातिया कर्म विनाश

है। इसमें भगवान् आन यही हो सक्ता है निम्ने मोहतीया  
कमाया अभाव हो गया है। नर्न छुधा तय बदना है यहाँ निय  
मे मोहनायका मझाय है। नर्न माहनीय है यहाँ रागादिक  
जर्न रागादिक दाय है यहाँ आसता नर्न रह सकना, अत वि  
भर सम्प्रदायम जा रीनराम विशेषण आया है यद् उपयुक्त है।

( १११५ )

(६) संसारमें यहाँ प्राणी सुखका भाषन हो सक्ता है  
निरन्तर अपनी सुखिया पर दृष्टि रखना है। परने अयगुण देव्य  
अपन उपयागरी विशुद्धता पलायमान हा जाती है। अत  
अनेक प्रकारके भाव उत्पन्न होत हैं परन्तु अधिमाशम मो गेमे  
निरथक होत हैं चित्तम धाइ मार नदी। आगमम तो राग  
वि प्राणियात्रमे मैत्री करा, मय प्राणियोंम दु गरी उत्पत्ति  
हो, अथात् कोई प्राणा दु गरी न हो। इतना निमल परिणाम  
भाषनाम भानेमे हाता है यह प्राणी अल्पकालम भेमारके य  
सुख हा सक्ता है। धामनामालके अगुण ही इस जायका सी  
होता है, और वही भम्वार कालान्तरम फल देता है। नि  
सस्कार निरन्तर परके अनिष्ट वरन यात्र होते हैं यह सयश  
परिणामामे व्यक्त रहता है, यतमानम दु गरी रहता है तथा  
तरमे भी दु खका पात्र होता है।

( १११६ )

१७ शारीरिक वेदनाओंका मूल कारण तुम्हारी गृन्त  
यदि केवल छुधारो शांत करना है तब जा समय पर  
शांतिसे उसे उपयोगम लाओ। केवल कल्पना जालमें मत उ

( १५१ )

## शान्ति सदन

१ ससारम बहुतसे मनुष्य शान्ति चाहते हैं और उसकी प्राप्तिके लिये उपाय भा करत हैं परन्तु व उपाय नित्य नहीं। जैसे बहुतसे मनुष्य जो अत्यन्त व्यग्र होते हैं तत्र मन्त्रिपान कर लते हैं और यह युक्ति देते हैं कि मन्त्रिपानसे व्यग्रता दूर हो जाती है परन्तु सत्य यह है कि व्यग्रता दूर नहीं होती केवल मदान्मत्ता होनेसे उसका भान नहीं होता। ठीक इसी तरह वैदिक जीवनकी कठिनाइयासे परेशान मनुष्य शान्तिके लिये ठाठपाटसे रहनेका प्रयत्न करता है परन्तु सत्य यह है कि उसकी कठिनाइयों दूर नहीं जाती केवल रागरगमे भस्त होनेसे उनका भान नष्ट होता। जैसे नशा उतरनेके बाद व्यग्रता पुन अपना प्रभाव दिग्गती है उसी तरह रंगरलियों समाप्त होनेके बाद कठिनाइया भी पुन अपना प्रभाव दिग्गतीके एक एक कर सामने आने लगती हैं।

( २११४७ )

२. ससारम कपायकी प्रयत्नता हा दुःखका बीच है। जो दुःखसे छूटना चाह उन्हें कपायका निग्रह करना उचित है। कपाय के निग्रहसे ही आत्मामें शान्ति आती है। कपाय मैल है, मैलसे मलीनता आती है।

( ५१२७७ )

३. शान्तिका उपाय न तो तीव्रक्षेत्रम है और न सत्स भागममें है क्योंकि शान्ति तो आत्मार्थी मोह परिणतिके अभावम है। यह कैसे हो ? इसपर बहुत विचार किया, हृद्द समनम नहीं आया। अनादिकालसे अनात्मिय पन्थामें अभेद बुद्धि हो रही



है वह कैसे मिट ? आगमाभ्यास ही इससे भेटनेम ममथ है परन्तु यन् नियम नहं क्यारि ग्यारहअद्गपाठी भी होर आम हानमे गञ्चिन रहते हैं ।

( ५१३।४७ )

४ वास्तवम शांति ता स्वर्गीय आत्माम पर पदार्थानि साथ जो ममता बुद्धि है उसके अभारमे हाती है । ममता बुद्धिका अभाव नहीं होता । निरंतर हम वातमा भय रहता है कि यदि इनसे ममता छोड दवरो तो क्या हारा ? क्योकि इन्हीमे अपनी रक्षा होती है ऐसा श्रद्धा है तथा लोकेपणावेलिये नाना प्रसारकी चेष्टा करता है ।

( ४।३।४७ )

५ केवल गरुपनादम स्वात्म रसना स्वाद् मिलना अस म्भव एव मन, मन, कायमे व्यापारसे परे है । शांतिका आस्वाद् रागा द्वेषा जीवने नहं मिलता ।

( १२।४।४७ )

६ चित्तावृत्तियो शांत रदनैका यही उपाय है कि शास्त्र अध्ययन करा, उससे अपनी शांतिका ध्यान रक्खो ।

( २८।७।४७ )

७ शांतिका मूल कारण तो भातरसे व्यमता न होनी चाहिये । व्यमतासे कोइ भी काम नहीं होता, अन्यका क्या छोडो लौकिर काय भी नहीं होता, परमाथ तो बहुत दूर है । परमाथम ता सर तरफसे चित्तावृत्तिका समाच कर स्वरूपम रागा देना चाहिये ।

( १८।७।४७ )

८ लालसाना त्याग शांतिका मूल कारण है । इमका यह तात्पर्य है कि किसी द्रव्यकी सत्ता किसी पदार्थसे नहीं मिलती ।

अथान् सत्र पदार्थ स्वीय द्रव्यादि चतुष्टयस पृथक् पृथक् ह्ये ।  
 उनम जो हमारी निवृत्तकी कल्पना है उसे त्यागना ही परका त्याग  
 है। यन्नी होना कठिन है क्योंकि अनादिनालसे हमारी प्रवृत्तिमें  
 परम निवृत्तकी कल्पना हो रही है, उसका दूर करना अत्यन्त  
 कठिन है ।

( २४।१।४७ )

६ माना कि क्षेत्र शान्तिका कारण है परन्तु शान्तिका उपा  
 दान कारण आत्मा हो तब तो कार्य हो ।

( २७।१।४७ )

१० शान्तिका मूलकारण आत्माम मोहाभाव होना चाहिये ।  
 उमकी युटि होनेसे शान्तिकी स्थिरता नहीं ।

( २९।१।४७ )

११ पुण्य-पापकी कथाओंके श्रवण करनेसे चित्तसे शान्ति  
 मिलती है । शान्तिका कारण यथार्थ वस्तुविज्ञान है ।

( ११।१।४८ )

१२ शान्तिका कारण तो निवृत्तकी मूर्च्छा त्याग है ।

( १२।१।४८ )

१३ शान्तिका कारण आत्माम परपदार्थकी मूर्च्छा न्यून  
 होना चाहिये । मूर्च्छा ही पापका कारण है ।

( ३।३।४८ )

१४ जितनी ही वृष्णा कृश होगी उतनी ही शान्ति आवेगी ।  
 केवल जो बात गल्पम थी वह प्रवृत्तिम आ जावेगी ।

( १८।३।४८ )

१५. यह कौन चाहता है कि मैं शान्तिका पात्र न होऊँ  
 परन्तु नहीं हो सकता । इसका कारण मेरी बुद्धिम मनोदुर्बलता  
 ही है ।

( १३।५।४८ )

१६ शांतिका कारण अतनिहित है केवल वाग्पदार्थासे दृष्टि जो दोष है उसे पृथक् करनेकी आवश्यकता है। अनन्त-काल इसी दोषसे द्वारा अनन्त यातनाओंका पात्र जाय रहा और रहेगा अतः इसे त्यागो।

( १११४८ )

१७ शांतिरेलिये उपाय शान्ति ही है। अशांतिपूर्वक जा काय होगा उससे शान्तिरा मिलना कठिन है। चक्रवर्ती पद्मण्डरी विनय चक्रसे करता है, पत्र ममता राय ही है। राज्य परिग्रह है उससे अशांतिही ही ता उत्पत्ति होगी।

( २६११४८ )

१८ निसरे मूलम मोट है चहाँ सुग्य शान्ति नहीं। शान्ति का मूल मानका अभाव है उससे सद्भावम शान्ति नहीं।

( ८११०१४८ )

१९ काम तो उसे बहते हैं जो आत्मारो शांतिका कारण है। यदि काय करनेसे शांतिका उदय नहीं हुआ तब त्रय ही जन्म गमाया।

( २४११०१४८ )

२० शांतिका मार्ग चहाँ है जहाँ निवृत्ति मार्ग है।

( २७११२१४८ )

२१ आगमम शान्ति अशांति बुद्ध भी नहीं। आगम तो केवल उनका प्रतिपादन करता है। तीर, मत्समागम आदिम भी शान्ति और अशांति नहीं। शान्ति आत्माय है चहाँ हम खाजते नहीं, उससे प्रतिबन्ध कारणोंसे दृष्टात नहीं, निमित्त कारणोंसे पृथक् करनेकी चेष्टा करते हैं। उससे प्रतिबन्ध कारण क्रोधादि बपाय हैं हम उनसे ता दृष्टाते नहा किन्तु जिन निमित्तोंसे क्रोध होता है उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करत हैं।

( ४१४१५१ )

२२ शान्तिके जो पिपासु हैं उन्हें संसारके आढम्बरोंसे अपनी प्रवृत्ति हटानी चाहिये और यह जानना चाहिये कि जिन पदार्थमि हम रागद्वेष कर दृष्टानिष्ट कल्पना करते हैं वे पदार्थ इष्ट और अनिष्ट नहा अपि तु जो हमारी रचिने अनूकूल होते हैं उन्हें हम इष्ट और जो प्रतिकूल होते हैं उन्हें अनिष्ट समझ लेते हैं। सगसे पहिले एक तो यही महती अज्ञानता है कि हम परको निज मानते हैं। कोई भी पदार्थ किसाना नहीं, सभी पदार्थ अपने अपने परिणामके द्वारा संसारम परिणम रहे हैं। सत्ता सभीकी पृथक् पृथक् है। जैसे ६४ पैसे मिलकर १) व्यवहार होता है। विचार कर देगो सगसे लघन्य भाग एउ पैसा है, इसाने सटश ६३ भाग उत्तम और हैं। इन ६४ भागाना एउत्र होना ही तो एक रुपया है। रुपया और क्या वस्तु है ? जउ हम उसके जवय अश एक पैसा पर विचार करते हैं तव एउ पैसा या एउ अंश दूसरे पाय आना अशसे भिन्न है। इन दोनोंको एकरूपसे यदि व्यवहार करे तउ आध आना एसा व्यवहार होता है। यहाँ पर एउ अश दूसरेसे मितकर क्या सर्गया एक हो गया ? नहीं, परन्तु बधावस्थामे आध आना यह व्यवहार हाता है।

( १११५१ )

२३ जनताने प्रशंमक शान्तियोंसे शान्ति नहीं आ मन्ती। जनतानी निदासे न तो अशान्तिना उदय होता है और न स्तुतिसे शान्तिना उदय होता है। हमारी कल्पना ही हम निन्दामे दुःख और प्रशंसामे सुखना अनुभव करानी है। देगो जाव तो निन्दाके वास्योंना शरण कर हम यह कल्पना कर लेते हैं कि हमारा निन्दा वा किन्तु निन्दा हम इष्ट नहीं, इस तरहसे हम स्वयं तुल भावन हो जाते हैं। जिस समय यह कल्पना विलीन हो जाती है तुल मिट जाता है। प्रशंसामे यह कल्पना कर लेते हैं कि हमारी प्रशंसा

करता है और उमम श्रुद्धि का जोस हम मुन्नी का जाने हैं ।  
 निम कावर्म यह कल्पता निनीन हा जाती है स्वयमय उम जाति  
 वा मुन गई हाता ।

( ११४१११ )

२२ आमाता शान्ति ननी भिनती इसका कारण क्या है  
 शुद्ध सममम ननी आता । ना भी पाय करा है उसाम आशुना  
 हा ती है । परता श्रुष्टि हा इत्यादि अनर म्मे पाय है निनमें  
 आता हा च ना ठीन हा है परतु परका भना हा म्मा चित  
 घन भी शातिरा उपात्त रती । जगाम हा तरार ही ता पाये  
 है । एव काल जिम दुमगाता मुगादि देनेन भाय हाता है,  
 दूसर घ निनम दुमगाता निरतर बदा देनेन भाय हात है,  
 इनसे अनिरित पाय ही नही । क्या कर—शुद्धि शुद्ध काम नही  
 करती । निरतर व्यपना रहती है । पुण्य पाय हाता त्याग दव तय  
 क्या कर शुद्ध सममम ननी आता । आगमम यह लिखा है नि  
 मोह, राग, द्वेष त्यागा । भावना अथ ताया है पर पदावीम ना  
 निवत्यनी कल्पता है उसे त्यागा । यह एक ऐसा विरम समत्या  
 है जा कहनम ता पाठ बठिन गरी परन्तु उपयागम आता बठिन  
 है । करना और कहता यह दानों भिन है । कहनयान प्राय सभी  
 मितते है परतु उमर अमल करनयात बिल ह । जो हैं व  
 देगनम नही प्रल क्याकि बाध प्रवृत्तिसे ही ता अनुमा करग ।  
 व प्रवृत्ति दलनम गरी आती ।

( ११४१११ )

२३ परिणामम शान्ति उत्पादन जा काय हो यह श्लाघ्य  
 है । जिस कायर करनेम शान्ति न हो यह श्लाघ्य कोटिम नही  
 आता । जिस कायने अनतर शान्ति आ जाय, अभिमान कृत्य  
 वा लश न हो यही महताय काय है । पञ्चन्द्रिय विषय सेवनमे

उत्तर वानम वृष्णा रोगकी शान्ति नहीं है। न विपरीत  
 मेहनत काई भी श्रेष्ठ मानने प्रस्तुत हो जाता। प्राय  
 विषय मेहनत प्रत्येक व्यक्ति दुःख का कारण है। वरुण  
 विषय दुःखके जनक नहीं, क्योंकि व मो पुद्गल दुःख गुण हैं  
 अतः न दुःख उत्पादक हैं और सुखके जनक हैं। प्रायः परिणाम  
 ही दुःख जनक हैं, क्योंकि जिस समय रागादि परिणाम होते  
 उस समय आत्मा व्यासथ्य नहीं रहता। जब वह शान्तिकी  
 निवृत्ति न हो आत्मा अधीन रहता है। जिस समय रसादि  
 परिणाम ध्वस्त हो जाता है उमा समय आत्मा का विनय  
 शान्तिका आविर्भाव होता है जिसमें आत्मा का स्थिति होती  
 है। व्यसतारे अध्यात्म आत्मा स्वयमेव सुख प्राप्ति अनुभव  
 करने लगता है।

२६ शान्तिका अर्थ जन्तुमे मनुष्यमें (शोभा ११)  
 बुद्ध भी न करना, पत्यरके तुल्य उपायों से प्राप्त है कि  
 सपत्नी अमम्भय है। आत्माना जानना स्वभाव है, स्वभाव है  
 यह स्वभावयान्मे कभी भी प्रथम नहीं हो पाता, बने अधिका  
 उष्ण स्वभाव है यदि उष्ण न हो तब स्वभाव ही नहीं।  
 इसी तरह आत्मा का स्वभाव जानना ही नहीं, बल्कि स्वभाव ही नहीं।  
 आत्मा ही नहीं ज्ञान है। ज्ञानसे अध्यात्म ज्ञान ही नहीं।  
 ज्ञान का वायु पदार्थों को जानना है तब स्वभाव ही नहीं।  
 मुक्त जीव हो, पदार्थों का विनय उमम स्वभाव ही नहीं।  
 है ज्ञानम अध्यात्म अध्यात्मन होना ही नहीं।  
 उससे सम्बन्ध रहता है यह स्वभाव भाव ही नहीं।  
 अर्थ यह नहीं कि चितना लम्बा चौड़ा ही नहीं। इसका  
 ज्ञान। परन्तु दर्पण का परिणामन तदा ही ही दपण ही  
 है। यह मात्र

पडेगा कि धम समय दपणना परिणमन पदापरं निमित्तमे हुआ है। अब हम दपणम मुग्ग देगते हैं नत्र हर्गे यह ज्ञान हाता है कि दपणमें हमारा मुग्ग दिग्ग रहा है और यह भी ज्ञान हाता है कि दपणम जो मुग्ग है वह हमारे याम्तपरि मुग्गस भिन्न है। यदि एसा न हाता तो दपणस्य मुग्गम कालिमा दत्र जा अपन मुग्गस कालिमा मटत हैं यह न मिटाकर दपणम दिग्गने याते मुग्गकी ही कालिमा मिटाते। इसमे भिन्न हुआ कि यह मुग्ग परस्पर भिन्न हैं। इसी तरह ज्ञानम जा ज्ञय आना है यह ज्ञानना परिणमन है। ज्ञय भिन्न पदाय है, एक जंरा भी उसका ज्ञानम नहीं आता। इसी तरह ज्ञानम जा राग आता है यह भिन्न है आर चरित्रगुणना परिणमन जो रागरूप हुआ यह भिन्न है। तथा जिन रागरूप प्रकृतिके उदयमे हुआ उमसे भी भिन्न है। जो पुद्गल कम माहतीयरी राग प्रकृतिका उदर हुआ यह ता पुद्गलना ही परिणमन है, उम परिणामना कता पुद्गल ही है। यह ज्ञानमें नहीं आया उमसे निमित्तना पाकर आत्माके चरित्र गुणम जो रिफार हुआ यही ज्ञानमें आया। तय जैसे ज्ञेयरा सम्बन्ध माभ्यान् ज्ञानम हाता विसा रागप्रकृतिके उदयरा साभ्यात्मस्य ज्ञानमें नहीं होता। तात्पर्य यह कि ज्ञानम काइ भी पदाय आर उमके प्रयत्न करनेका प्रयत्न मत करो। ज्ञान तो प्रकाशय पदाय है उससे सम्मुख जो भी आवेगा उमे ही वह जानेगा। उम जाना परतु उसमें विपाद मत करो, ज्ञानमें इष्टानिष्ठ कल्पना मत करा, यही तुम्हारा पुरुषार्थ है, यही शांतिकी मूल उपाय है।

(१७ २८।१।५१)

२७ प्रतिदिन शांतिके गीत गानेवाला शांतिकी पात्र नहीं होता अपि तु यही महात्मा शांतिकी पात्र हा सकता है जो रागादि शत्रुओंसे पराजित न हा।

(२९।१।५१)

२८, शांतिका उपाय अन्यत्र नहीं, अन्यत्र न देगना यही है। अशांतिका वीच भी अन्यत्र नहीं। यदि दोनामसे एकका भी निश्चय हो गया तब दूसरेका निश्चय अनायास हो जाता है। जिसे एकत्व भावना होगी उसे अयत्व भावनासे अथ प्रयास करने का आवश्यकता नहै। वस्तुना स्वरूप स्वपरोपादानापोहन ही सा है। स्वरूपका उपादान और पर रूपका अपोहन यही वस्तुका वस्तुत्व है। समारम जितने पत्थ हैं उनकी यही व्यवस्था है। एकत्र भावनाम विधिमुग्ध वणन है और अयत्र भावनामें निषेधमुग्धेन वणन है। भावना चितनसे यही लाभ है कि परसे भिन्न आमचितन होनेकी प्रकृति दृढ हो जाती है। और उमरा फल यह हाता है कि एक दिन ऐसा आता है कि ज्ञान केवल ह्यार वपण मन्श पदार्थाका प्रकाशक हो जाना है। मात्तमें आत्मा केवल अपने चतुष्टयसे ही परिणमन करता है। मसारमे भी जो परिणमन होता है वह भी स्वमीय द्रव्यमे ही होता है परतु न्तना अतर है कि यहाँ जा पदार्थ ज्ञानमे आते हैं उनम विसीमें भाह, किर्मीमे द्वेषरूप परिणमन करता है। यह परिणमन शुद्ध द्रव्यमे नहीं होता है केवल पर पदार्थ भासमान होते हैं। वे पदार्थ जा ज्ञानमे आते हैं उन्हें शोय नहीं रहने देना यही दृषित प्रणाली ससारकी जननी है। समार कोई प्रथम् पदार्थ नहीं। आत्मा ही विभाव पथाय सहित ससार और विभाव परिणति रहित अससार कहलाता है।

( ३१ । ५ । ५१ )

२९ शांतिका मार्ग कहा नहीं आपहीम है। आपसे तात्पर्य आत्मासे है। इसका तात्पर्य यह है कि हम परके द्वारा शांति चाहते हैं, यही महती अज्ञानता है, क्योंकि यह सिद्धान्त है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्यम नवान गुण उत्पन्न नहीं करता है। पदार्था



की उत्पत्ति उत्पादन कारण और सहकारा कारणमे होता है।  
 उत्पादन एक और सहकारा अनेक दात हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिम  
 उत्पादन कारण मृत्तिका और सहकारा कारण षण्ड रक्तस्वीकर  
 कुत्तालादि है। यद्यपि घटकी उत्पत्ति मृत्तिका ही म दाती है,  
 मृत्तिका हा उसका उत्पादन कारण है परन्तु फिर भी कुत्तालादि  
 कारण कृत्क अभावमे घटरूप पचाय मृत्तिकामे तदा दृग्गी जाती।  
 अतः य कुत्तालादि घटात्पत्तिमे सहकारा कारण माने जाते हैं।  
 इसलिय प्राचान आचार्योंमे जहाँ कारणना स्वरूप निरूपन किया  
 है वहाँपर यही तो लिखा है—‘सामग्री जनिका कार्यस्य, नैकं  
 कारणम्’ अतः इस विषयमे विद्वानाका अनुभव करता उपरि तर्क।  
 यहाँपर मुख्य गौण न्यायकी आवश्यकता नहीं, यन्तु स्वल्प  
 जाननेकी आवश्यकता है। ‘अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारण-  
 भावः’ इनमे दाता ही मुख्य है। जब हम उत्पादन कारणकी  
 अपेक्षा बतन करते हैं तब घटका उत्पादन कारण मित्री है।  
 निमित्तना अपेक्षा यदि निरूपण किया जाय तब कुत्तालादि  
 कारण है।

( १० । १ । ५१ )

३० शांतिना आना मोड कठिन दात नहीं आत शांति  
 आसकती है परन्तु शांतिके वाधन जा रागादि दात ह उनको तो  
 हम त्यागत नहीं। रागादिमे जा उत्पादन निमित्त है उसको  
 त्यागते हैं। उतमे त्यागमे रागादि नहीं जात अपि तु रागादि  
 परिणामोंमे अपेक्षा करनेसे रागादि दापना अभाव हो सकता है।

( ११० । ५१ )

३१ शांति तो तब आत जब वषायोंका उपद्रव न हा।  
 निरंतर पर निन्दा सुननेमे प्राणी आनन्द मानता है। जहाँपर

परकी निन्दामें निम्ने प्रमत्तता होती है उसे आत्मनिन्दामें स्वयमेव विषाद होता है। जिससे निरन्तर हृष-विषाद रहत हों वह काहेका सम्यग्गतायी ? आत्मा ज्ञान-दर्शनका पिण्ड है, न जाने क्यों ये राग द्वेष होते हैं ? इसका मूल कारण केवल हमारा ममत्व है अर्थात् परम निन्दमायता है। यही मानना रागद्वेषका कारण है। जब परको निन्दमात्तोगे तत्र मम अनुभूतम राग और प्रतिशूलनमें द्वेष करना स्वाभाविक है। यद्यपि रागद्वेष कथात्मय भाव हैं, आत्मामें आकुलताके उत्पादन हैं। जहाँ आकुलता है वहीं दुःख है। अतः दुःखसे निवारणसे त्रिय सत्रप्रयम परपदाथाकी मूर्च्छा त्यागना ही श्रेयस्वर है। मूर्च्छाका लक्षण ही ममत्वस्वप परिणाम है। यद्यपि ममता परिणामका विषय अपना नहीं किन्तु मोदी जीव उम त्रिययका अपना मानता है। जिससे अपना भाव त्रिया उमनी रक्षा करना उसका कर्तव्य हो जाता है, अतः सत्रथा परको त्यागा यही उपाय शांतिका उत्पादक है। शान्तिसे ही सुखका उदय होता है। शांतिका कारण परपदाथको त्यागना नहीं है, केवल आमामें उत्पन्न जो रागादिक परिणाम होते हैं उठ त्यागा।

( २१।७।५१ )

२२. जिह अपनी आमामें शान्ति प्राप्त करना है व सत्राच करना छोड़ दें।

( २२।७।५१ )

२३. निन्द जीवामें शान्ति रमका आस्वाप्न करना है न्हें सत्रसे पहला अपना निणयवर मनुष्य जमका उदश्य निवृत्त करना चाहिय। निन्दका काई उदश्य नहीं यह कदापि मुखी नहीं टा सत्रते।

( २०।७।५१ )

२४. शांति यही जीव प्राप्त कर मरना है जो इन रागादि भावाम अपनापन छोड़ दें। अनन्त जमकी कथा तो प्रत्यक्ष नहीं

अतः उनसे द्वारा बुद्ध विशेष विचार करना सुद्धिमें नहीं आता। परन्तु इस पर्यायम जा मुग्ध दुग्ध दुग्ध धरता आम प्रत्यक्ष है। उनसे द्वारा बुद्ध बनाइ हा सकती है।

( ११।७।५१ )

३५ चाम्नयम शांतिका माग ता श्न मय मताये विरहोसे परे है। शांतिका माग कहा नहीं। सम्पूर्ण पर्यायोंम जानेपर भा भोक्तमागरा लाभ नहीं हुआ।

( ११।८।५१ )

३६ दुग्धमा लक्षण आजाता है। आजाता जहापर दाना है च ई हम आत्माना अशांति रहता है। आमा अनरुद्धसे शांति चाहता है परन्तु शांतिका अनुभव तत्र हा जत्र निर्मा प्रकारकी व्यग्रता न हा। सत्रसे महती व्यग्रता ता शरारतो स्वस्थ रहनेकी है। यद् शरार पुद्गल समुदायमे निष्पन्न हुआ है परन्तु हम इसे अपना मानते हैं, प्रथम तो यद् मायता मिथ्या है। जत्र इसे आमाय माना तत्र इससे रक्षणका धिता रहती है। हमसे लिये तिन पदार्थोंमे प्रत्यक्ष भिन्नता है उनका सम्यक् करना पड़ता है। उस सम्यक् अनेक प्रकारके अनर्थांग आश्रय लेना पड़ता है, हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह पद्म पापासे अपनेका नहीं बचा सकता। बड़े प्राणियोंका घात करने दग्ना जाता है तथा अनेक प्राणियोंके मांसका खा जाता है, तिमर द्वारा अल्प भी भय हुआ उसे नहीं रहने देता, मन्त्रादिसे निवारणाव औपधिना प्रयोगकर निमू ता करनेका प्रयत्न करता है।

( २।१।५१ )

३७ जत्र पर पदार्थाम निवृत्तता मरुत्प हो जाता है तत्र उसकी रक्षा करनेका भाव हाता है। जा जो पदार्थ उसके रक्षण होते हैं उन सत्र पदार्थोंमे राग और जा जा पदार्थ उसके विरोधी

हात हैं उनमें स्वयमेव द्वय हो जाता है। जो अन्तर्गत शान्ति  
आत्मा आया वहाँ शान्तिका लेश नहीं। शान्तिके अन्तर्गत  
आत्मा निरन्तर यमभारता पात्र हो जाता है।

(३११।५)

‘राज्य’ सुता कलत्राणि गरीरानि सुदृष्टे च ।

ससक्तस्यापि नष्टानि तव वन्दन्ति इन्द्रे ॥

३८ राज्य, पुत्री, स्त्री, शरीर, सुदृष्ट इत्यादि इन्द्र इनमें  
पाये और निरन्तर इनमें आसक्त रहे शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके  
पूर्णतर नष्ट हो गये। इनसे न तो सुदृष्टिके अन्तर्गत शान्तिके  
लाभ हुआ। निरन्तर इनमें सुदृष्टिके अन्तर्गत शान्तिके पात्र  
रहे। शान्तिके लेश न पाया। शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके है। अन्य  
पर्याय कालत्रय में शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके है।

(३११।५)

३९ ससारम शान्तिका अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत है परन्तु  
उनका माग पृथक् पृथक् है। इस अन्तर्गत है ना पञ्चोद्विषाके  
विषय प्राप्त कर उसीमें शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके आदम यह नानय  
जम उसीमें पिता देव हैं परन्तु अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत अन्तर्गत  
इस जमने पूर्ण कर पर अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत हैं। विषय संवत  
शान्तिका उपाय नहीं, क्योंकि शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत करके  
हैं उममें शान्तिके नहीं मिलता। शान्तिके अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत  
निवृत्त वन्द्यता है। पर अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत हैं हम उन्हें अन्तर्गत  
चनाना चाहते हैं पर व अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत।

४० यदि शान्तिका अन्तर्गत शान्तिके अन्तर्गत है तो अन्य शान्तिके  
को तिलाञ्जलि दो।

(३११।५)

४१ शांतिरा यापर यत्रपि बाध्यं दुष्ट नहीं फिर भ  
 अतरङ्ग परिणति निरतर व्यावृत्त रहनी हैं। निरतर अयत्न  
 चिन्तामे व्यग्र रहत हैं—“यो ह्यार्या वरे, जगतः प्राणी सुमा  
 पर चले, सखा शांति मिल, परस्परसा वैमनस्य भिन्न जात, वा  
 दुःखान हा, व्यव फलभ्रम अपना समय नष्ट न करे।” पर  
 तत्त्व दृष्टिमे ससार ता इमी रूप रहगा। जर्ण यह जीव अप  
 स्वरूपको विचारे “दिग्गता जानना” ही इमका स्वरूप है, उस  
 उदा सिद्ध हा गया अनायास ही सर उपद्रवमे सुरक्षित ह  
 सयता है। परमाथसे इसका स्वभाव हा स्वच्छ है। दरनेवाल  
 जाननेवाला र्भ हैं यह एक कल्पना भी मोहहीन होती है। इम  
 स्वभाव हो दपणन है, दपणना इच्छा नहीं कि अमुक प  
 हमम भाममान हा, स्वयमेव पदार्थका सदृश आजार दपणम परि  
 णम जाता है, यह व्यग्रस्था निमाही जीवना है। ज  
 पदार्थ व्यग्रस्था इम प्रकार है तत्र हम हर्ष विषाद करने  
 आश्चर्यता नहीं। (१०१११११)

४२ आनन्दन जा शिक्षा पद्धति है उमम भीतिरपादन  
 मूत्र प्रातःसहिन भिनता है। विज्ञानना क्तना प्रचार है कि बालन  
 भी खाग निमालत हैं। यहाँ तक विज्ञानने आविष्कार किया।  
 कि जिना चालनके वायुयान चला जाता है तथा ऐसा जणुय  
 पनाया है कि जिसके द्वारा लोगों मनुष्याना त्रिभुश हो जात  
 है। एसी चीरफाड़ करत हैं कि पैना बालन निमाल कर बाह  
 ररकर मेटका निमार निरान दत हैं पडरा बालनका उमी स्थान  
 पर रख देते ह। यहमारगानी पमुली बाहर निमाल दते।  
 किन्तु ऐसा आश्चर्यकार किसान नहीं किया कि यह आत्मा शांति  
 का पात्र हो पावे। (१११११११)

## त्याग

१ परमाथसे त्याग करना अन्य बात है, लोग प्रतिग्रामे लिये बाह्य त्याग करना श्रय बात है। समारम कातिके लिये जो भी तप आदि कार्य क्रिय जाते हैं वे सब कायतरामे लिये होते हैं। उनसे आत्महितका गंध भी नहीं आता। कपाय निष्ठुचितने हेतु जा कार्य किया जाता है उससे आत्महित होना है और जो कार्य केवल कपाय पुष्टिने लिये किया जाता है उससे आत्महित नहीं होता।

( ५११४७ )

२ त्यागकी महत्ता अभ्यन्तरमे है ? परतु उम आर लक्ष्य नहीं।

( १११/१४७ )

३ राग भेटनके उपाय आचार्यानि बहुतसे बताए हैं परन्तु हम उन उपायोका अवलम्बन नहीं लेते। केवल बाह्य त्याग कर ही मन्तोप प्राप्त कर लेते हैं। बाह्य वस्तु निसका हम त्याग करते हैं वह शान्तिका कारण नहै, क्योंकि उस बाह्य वस्तुका आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं।

( २५१८१४७ । )

४ ससारम सबसे कठिन मूच्छ्राका त्याग है। लोग पत्न्या के त्यागकी चेष्टा करत हैं, अपनेमे अतिरिक्त जो वस्तु है वह स्वतः त्यक्त है उमके त्यागनेकी क्या आवश्यकता है ? जो भाव अपने आत्माने साथ तमय होकर दुःख हैं वना त्यागना चाहिये।

( १८१११४८ )

५ त्यागका महत्त्व उसा समय है जव कि उमरो करने भी छुट न चाहे अथवा एर प्रसारना व्यापार है ।

( २७।५।१८ )

६ कहाँ कहाँ वाला त्याग भी आभ्यन्तर त्यागम निमित्त हो जाता है । अतः सपना यह पक्षपात नहीं करना चाहिये कि चाहे त्याग कुद्द नहीं । चाहे त्यागमे तात्पर्य यह है कि मनुष्य पयायना पारर कमसे कम गान्धेयकी व्यवस्था उत्तम ररणी चाहिये ।

( २।६।४।८ )

७ त्यागी यही है जिसके आत्मश्रद्धा पृथक् बाध्य त्याग हुआ हो, जो अन्तरङ्गसे कृपायु हा और जावानी दशाना निसे पूण ध्यान हा । नीर्याक अन्तगत अपना आत्मा आ गया । सर्व प्रथम तो अपनी दया करता हो यह लक्षण हाता आवश्यक है । जो अपनी ही दयासे बहिर्मुख है यह परनी दया करनेम सर्वथा असंगत प्रलापकर लागाको टगता है । जो ऐसे त्यागी हाँ, केवल ऊपरी त्रिधाश्रण्डम भद्र हा उनका साथ छोड़ा ।

( ८।६।४८ )

८ जो त्याग करो किसीसे व्यक्त मत करो । त्यागप्रतिष्ठ अनुकूल ही अन्तरङ्गसे बाध्य करो । त्यागरी सफ़वता चाहते हा तो लौकिक कार्याके हनु आमीय परिणतिरो यत्पुषित मत करो ।

( १०।५।५१ )

९ पर द्रव्यना त्यागनरी जो परिपार्टी चली आई है यह निमित्त कारणरी मुग्यतासे है । पर द्रव्य न आन तक अपना हुआ, न है, और न आगे भी होगा । आत्मामें जो भाव होना है वह भी नहा रहता, अनाश्रम चला जाता है । अथवा कथा छोड़ो जो अणिक भाव है व भा परिणमनशील है । जव यह भी परि

गमन शील है तब क्षायोपशमिक भाव श्रौद्धयिक भाव क्या स्थायी रह सकते हैं ? किन्तु हम ऐसे मूढ़ हैं कि उनके होनेमें हृष मानते हैं । यही फिर नवीन वधना कारण हो जाता है । सम्यग्दृष्टि उद्द अपनाता नहीं अतः उसने कर्माका वधन अल्पस्थिति अनुभागको लिए हुए होता है । एक दिन विलकुल नहीं होता । यह श्रवम्या दशमगुण स्थानम और उसके आगे होती है ।

( १०।५।५१ )

१० बाह्यमे निमित्त कारणोंका त्याग हर षाड कर देना है किन्तु जिनके कारण इनको ग्रहण किया है उनका त्याग अनुद्व भी नहीं । फिर भी प्रयास कर रहे हैं, न जाने क्या दान के केवल गल्पनादसे कोई तत्त्व नहीं ।

( १५।३०१ )

## दान

१ भले ही मनुष्य दान करे परन्तु अन्तर्गत वनाउन छोड देने पर यह कठिन बात है । दानकी पद्धति के उन्मत्तशक्त के लिये कार्यकारिणी नहीं, यह तो लोभ दूर करने के लिये ही प्रशस्त है ।

( २१।२।२० )

२ दानम अनुराग रखनेसे उत्कृष्ट न कर मिलना है यह लौकिक विभूति ही तो है, परमार्थना नहीं ।

( २५।१।१३ )

३ अभ्यतर प्रवृत्तिम जा बहुरं एनञ्चा त्याग इच्छे देता है वहा सत्यपथानुगामी गनाह ।



२ दान वहिने पात्र बुद्धिमे नेता था, अत्र ह्य तुम्हारा उपकार करते हैं उस बुद्धिसे दान दत्त है। यन्तुत ताभके त्यागका ही दान दत्त है।

( १९।०।४८ )

## ध्यान

१ उपयागकी स्थिरता ही ध्यानका कारण है। ध्यान दो प्रकारका है। एक ता समासका कारण है जिससे आर्चा, रौद्र का भेद है। दूसरा ससारके नाशका कारण है। उससे भा दो भेद है एक धमध्यान, दूसरा शुद्धध्यान। उमम धमध्यान शुभ परिणामका सम्भव महानसे यद्यपि बंधका भा कारण होता है परन्तु परम्परा बंधामात्र भी कारण पडता है। चतुर्थ पञ्चम गुणस्थान तक रौद्रध्यान रहता है परन्तु यह ध्यान नरक तियगगतिका कारण नहीं होता क्योकि सम्यग्दृष्टिसे जो रौद्रध्यान होता है वह अप्रयायानके तात्र उद्गम होता है। यह चाहता नहीं, वह शुभ परिणामका भी नहीं चाहता फिर भी उनसे कार्यको करता है। इससे सिद्ध हुआ कि बिना अभिलाषाक भी कार्य हाते हैं, यह दान ध्यान, रौद्र ध्यानात्म भा सम्भव है।

( ५।०।५१ )

## व्रत

१ व्रत उत्तम यन्तु है परन्तु यकाव इस तरहका व्रत है कि व्रतका निरोहना कठिन है। काइ घर ऐसा नर्तनिसम अस्पताल की ओपधि प्रयागम न लाइ जानी हो।

( १२।०।४७ )

२ व्रतके माने तो यह है कि आगमके विरुद्ध प्रवृत्ति न होनी चाहिये। तथा एमा करना प्रायश्चित्तसे भी शुद्ध नहीं हो सकता। जानकर अपराध करना अत्यन्त अन्याय है।

( १४।७।४७ )

३ विरक्तान व्रत समारका कारण हैं। विरक्तमे नात्पथ चरणानुयागनी पद्धतिके ज्ञानसे है।

( १७।६।४८ )

४ अपने परिणाम निमल रह इमलिये व्रत पाला।

( १८।६।४८ )

५ व्रताना फा सत्र पूरक निररा है, क्याकि व्रतना भेद है तप बढ़ते हैं। बाह्यतपोम अनशन आता है। इमे तेला रहते हैं। इममे आठ भक्तना त्याग होता है।

( १९।९।४८ )

## महावीर सन्देश

१ श्रीगारप्रभुना स्तुति किमका कल्याणप्रद नहीं है। मसारकी अमारता जान उटाने इमसे स्नेह छोडा, आत्मकल्याण विना और उनके निमित्तमे मसारका कल्याण हुआ। यद्यपि भगवानको इन्द्रा नर्ष कि मेरे द्वारा जगनका उपकार हो परन्तु महन निमित्त-नेमित्तन मग्गध ऐसा बन रहा है। जैसे मूर्खोन्यम प्राणी अपने अपने कार्यम लग जाते हैं वसी तरह वीनराग मयज्ञ प्रदर्शित पदार्था को अग्रान कर जाव सुमार्गम प्रवृत्ति करने लग जाते हैं। श्रीगारप्रभु पदार्थाके ज्ञाता-दृष्टा हैं विसीमे न राग है न द्वेष है। राग द्वेषके बशीभूत होकर प्राणी मात्र संसार बंधनमु-पडा

हुआ नाना दुखोंका भार वहन करता है। जिन जीवोंने वस्तु स्वरूप जान लिया व इन बाह्य पदार्थोंको भिन्न जाना तो उन्हें अपनाके चेष्टा करते हैं और न त्यागनेकी चेष्टा करते हैं। जिनके भेदज्ञानसे विमल अभिप्राय हो गया है वे न ता किसी पदार्थको प्रण करनेकी चेष्टा करते हैं और न त्यागनेका प्रयत्न करते हैं, क्योंकि व उनमें आत्मीय गुणोंका अभाव दृश्यत है।

( १९।२०, १।४७ )

० श्रीश्रीरप्रभुने अहिंसातत्त्वका साक्षात् रूप दिखाया। आपकी प्रभावसे भारतवर्षमें हिंसाका अन्त हुआ। आप भी संसारमें अहिंसाका जो महत्त्व है वही भी वारप्रभुका ही महात्म्य है।

( २१।४।४८ )

३ महावीर स्वामीने इस संसारका दिखा दिया कि मोक्ष मार्ग ता यह है। इस संसारका गति विचित्र है। इसमें अनात्मीय पदार्थोंके ससगसे आमात्री जो, दशा हा रही है यह किसीसे छिपी नहीं है।

( २७।९।४८ )

४ वास्तवमें महाश्रीरप्रभुने यह दिखा दिया कि व जीवों। आत्म हिंसा मत परा, यहा अहिंसानी जानी है। अपनी हिंसासे ही आत्मा अन्त संसारका पात दाता है।

( २९।९।४८ )



मुक्ति-मन्दिर



प्रेम हटानेके लिये अनात्मिय पदार्थोम आत्माय बुद्धिको त्याग देना चाहिये ।

( २।४।४८ )

६ श्रावणकुन्द महाराजने शुभोपयोगी सदृशता अशुभाप यागके साथ दिग्दर्श है और युक्तिपूर्वक यह निर्विघ्न सिद्ध किया कि मोक्षार्थी जायेंगे पाना ही हैय है ।

( ८।४।४८ )

१० मोक्ष पथिकता न राग करना, न द्वेष करना, केवल मध्यस्थ ही रहना चाहिये ।

( २२।५।४८ )

११ श्रयामार्ग ना आतरि कठुपताके अभासमें है ।

( १३।७।४८ )

८ ससारकी प्रकिया हम लाग पर पदार्थामे मानते हैं । उसम मुरय आत्मा ही इमना बता है, शेष द्रव अनेतन हैं, उनके अन्तर चेतना नहीं । स्वयं क्या करे ? य भाव उन द्रव्याके अभ्यन्तर म नही, मर मन्त्र्य चेतनता है, ससारकी रचना इमाने परिणामाका फल है और ममारके यथनमे छूटना भी इमीने परिणामोंका फल है । तिन परिणामासे ससार होता है उनका त्याग ही मुक्तिका माग है अत परमाथके लिये पुरपाथ ही कारण है ।

( १३, १४ ८।४८ )

१३ कल्याणका मार्ग फल आत्मतत्त्वके यथाथ भेद जानमें है । भेद ज्ञानके जलसे ही आत्मा मरतत्र होता है । स्वतन्त्रता ही मोक्ष है । पारतन्त्र्य निवृत्ति, स्वातन्त्र्यापलान ही मोक्ष है । माक्ष मागका मूल कारण पर पदायी सहायता न चाहना है । वमरा सम्यध अनाति कालसे चला आया है उसका छूटना

आयकता है निमाहता रूप बुल्हाडी की जो इन संसारनता जालाका कात्कर मात्तमाग साफ कर सक ।

(२८।४।४७)

३ जगतना प्रमन करनेवा चेष्टा आत्माके पतनना कारण है । आमाता पतन अपनी मुग्गना मे होता है । अपनी निममता ही संसाररी ताशर है ।

(२८।४।४७)

४ समाग गदून वन है । इसम चीव अपन ही विप्रम भावसे उजमा है । रैमे विचारकर दया चान ता निस भावमे इस मसार अत्र्याम म भूता है यदि उम भावरो छाड़ देवे तो अना याम ही मसार रजामे मुक्त हा सकत है ।

(२०।७।४७)

५ चर मसाररी अमारता जान ली नर एसा उपाय ररा रि अथ मसारम न रतना पड़े ।

(२१।८।४७)

६ मात्तमागम जो प्रयान कारण है वे आत्मा क ही स्त्रन्द गुण है । उनका प्रिकाश मामप्रीर मद्राम हागा । आउ तानामे उद्ग न होगा ।

(१२।९।४७)

७ हे भगवान ! कत्र संसार समुद्रमे पार होकरा अयसर आयेगा ? अयसर आना दूर नहीं, यह तो हमारे परिणामोंनि निमलता पर निमर है । स्थल गल्पवादसे हृद्ग नहीं होगा । का करनेसे होता है चीड भी वाय मसारम दुताम नहीं ।

(२३।३।४७)

८ मात्तमागके इन्दुनोंमे सव पदायासि मेम हटाता चाक्षिय

१६ सभी इस ससार बंधनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करते हैं। इससे पहिले आश्रयना इस बोधकी है कि जा ससार बंधनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा करता है वह कैसा है? उसका ज्ञान हाना मरने पहिले होना चाहिये। अथान् जय हमका यह ज्ञान नहा ता जिम दु रको दूर करना चाहते हैं वह दु र किसके अम्निदम है तत्र उमरी निवृत्ति कैसे करेंगे? यह बठिन वान नहा। आत्माका ज्ञान किसको नहा, प्राय आबाल ब्रह्म मभीको निवृत्ता ज्ञान है। निम्नको अनुचिन शब्दाका प्रयोग करा ता यह व्यक्ति तत्वान उचार देता है कि महाशय! सम्भलकर जातिये, जो रचन आपको अनिष्ट है वह हमको भी तो अनिष्ट है, अन आमतानने निमित्त प्रयाम करनेकी आवश्यकता नहीं। आशय कता हम बातकी है कि आत्माका जा इष्टानिष्ट कल्पनाएँ हाती हैं उठ न होने दा।

निसाका स्त्री मर गई, यह रोने लगा। दूमरेने समझाया भैया। रोना व्यथ है, समारम एसी घटनाएँ तो होती ही हैं। अभा १५ निन ही हुए हैं तत्र मेरी स्त्री जो कि आपका स्त्रीमे अत्यंत मुदरी थी मरी, उस समय आप क्यों न रोय ?”

उसने उत्तर दिया— ‘उसम मेरी निवृत्त बुद्धि नहीं थी, अथान् उसम मेरा मोह नहीं था कि यह मेरी है। मेर रोनेका कारण यह है कि इस स्त्रीमे यह मेरी है’ ऐसी कल्पना थी। इसमे सिद्ध है कि न तो आपकी स्त्री मेरी थी और न मेरी स्त्री ही मेरी थी, परन्तु तानाम नेत्रन यहा अंतर है कि इसम जो ‘यह मेरी है’ ऐसी कल्पना है वही दु रका कारण है। और यह कल्पना क्यों हुई इसका कारण है कि हमारा यह जो विश्रमान पर्याय है उसम अत्युद्धि है। यहा अहकार ममकार मसारके उन्पात्य प्रचण्ड



परिश्रम साध्य है। परिश्रमका अर्थ मानसिक, वाचनिक, कायिक व्यापार नहीं किन्तु आत्मनश्चरम जो अथवा कल्पना है उसे त्यागना ही सच्चा परिश्रम है। त्याग विना कुछ सिद्धि नहीं अतः सबसे पहिले अपना विश्राम करना ही मानमार्गोपनी मीनी है। विश्रामक साथ ज्ञान और चारित्र्य भी उदय हो जाता है, क्योंकि यह दोनों ही गुण स्वतंत्र हैं अतः उसी कालमें उनका भी परिणमन होता है। इसलिये हम श्रद्धा गुणका आश्रयना है परन्तु यह श्रद्धा सामान्य—विशेषरूपमें तत्र तत्र पदार्थोंका परिचय न हो, नहीं जाती।

( २०।३।५१ )

१४ पुण्य और पाप ज्ञान समान हैं। पुण्यसे उदयमें गेठ और पापसे उदयमें दीनता जाती है। ज्ञानों ही आत्माके कल्याणक उदयमें बाधक हैं। अतः निराल आत्मनल्याण करना ही उन्हे दोनासे ममताभाज द्वाङ्गना चाहिये। माने और लोहनी बड़ीयत् दोना ही बधनसे कारण है, अतः मुमुक्षु जनोंका दोना ही ज्येष्ठ जाय है। मनुष्य जन्मका सार्वजनिकता इसमें है कि दोनों ही बधन तोड़ने योग्य हैं।

( ३१।३।५१ )

१५ वही मनुष्य ससारमें मुक्त होनेका पात्र है जो परपदागमि सम्पक त्याग दे। परपदागमि त ता हम कुछ उपकार ही कर सकते हैं और न अनुपकार ही कर सकते हैं। ससारमें नितने पदार्थ हैं अपने अपने गुण पर्यायोंसे पूरित हैं। उनमें जो परिणमन है स्वार्थीन है। नम परिणमनमें उपादान और सहकारी कारणका समूह ही उपकारी है परन्तु वाय परिणमन उपादान ही होता है।

( ७।४।५१ )

भी इस महती त्रिपत्तिसे मुक्त होनेमें विषम प्रयत्न रहते हैं। मुक्त होनेमें न तो समागम कारण है और न तत्र यात्राओंमें उपयोग लगाना, लाग्य स्पर्शोंका व्यवहरना भा कारण है। तीर्थ भी हमारी ही वन्दना है, निम्बे द्वारा समार समुद्रमें तिर चार इमीरो तो तीर्थ शब्दसे व्यवहार करत हैं। अत्र ज्ञानाया क्या गया, काशा आदि स्थानाको स्पर्श करनेसे आत्मा समारक पापोंमें मुक्त हा ससना है ? अथवा साक्षान् तीर्थ भगवान् अर्हंतदपरी वन्दनासे मुक्त हो ससने हैं ? भगवान् तीर्थतदवके वन्दन आदि कार्यासे पुण्यत्र हा तो हागा ? संसारवधनमें मुक्त हानेका मार्ग ता उन्हीं भगवानने निदिष्ट किया है। यदि समार वधनमें मुक्त होनरी अभिलाषा है तत्र जो परिणाम समारके जनर हं उऽऽ त्यागा। समारका कारण याग और वपाय है इहे त्यागो। निश्चल हो, निष्प्रपाय हो, यही मुक्तिमाग है, और शुद्ध नहीं।

( २५।५।५१ )

११ परमार्थ पथ केवल आत्माकी एव पचाय है जो परमाधना उत्पादक है। 'परमार्थना उत्पादक' यह भी व्यवहार है। व्यवहार यहीं होता है जहाँ अयकी अपक्षा की जाती है। सम्यग्दान, ज्ञान, चारित्र ये तीना धम व्यवहारसे मोक्षमार्ग हैं, निश्चयसे तो एव आत्मा हा मोक्षमाग है। जिम समय यह संसारका कारण होता है उम समय इसका परिणामन मोह रागद्वेषरूप रहता है। जत्र मो समागम जाना है तत्र व परिणामन सम्यग्दान, ज्ञान, चारित्ररूप हो जाते हैं। यहाँ पर गुण और गुणी यह दोनों व्यवहार अपेक्षा नाम हैं। इनम प्रदेश भेद नहीं। केवल साक्षा सरया प्रयोजनादि भेदसे भिन्नता आत्मा और गुणम है। इस अनादिसे पर पदाधने सम्यग्धमें इम संसारकी विद्वन्नाको अपना मान जिस तरह व्यग्र और दु सने पात्र बन रहे हैं जा किसीसे

रत्ननीचर हैं। जिन्हें संसार भ्रमणसे भय है उन्हें पहिले ही इन रत्नसाका विनाश करना चाहिये।

( ३० । ४ । ५१ )

१७ निद्रयका शयभूताथ और व्यवहारका अथ अभूताथ हैं। अथ निश्चयमे विचार किया जाय तत्र रागादिक भावना आत्मा कता है और व्यवहारमे दग्ना जाय तत्र कम कता है। इसी तरहसे ज्ञानाप्रणान्ति कर्माना कता निद्रयसे पुद्गल और व्यवहारसे द्वारा जाय कता है। यह सिद्धांत है कि एव द्रव्य अथ द्रव्यरूप नहीं होता। यह कहने मात्रही घात नहा प्रत्यक्ष भी दग्नेम जाता है। जैसे मिट्टाका घट बनना है, उसमें पानी, हवा, चार, टारा, दण्ड, कुम्भकार आदि अनेक निमित्त होते हैं, बिना उन निमित्तोंके घट नहीं बन सकता। मित्तु जत्र घट बन जाता है तत्र उमक साथ आग, पानी, हवा, कुम्भकारात्वा लेश भी नहीं रहता। इससे सिद्ध हुआ कि घटका उपादान कारण मिट्टी ही है। उसी प्रकार रागादिकी उत्पत्ति अनेक कारणोंसे होनपर अतम उसका जा उपादान था यही रह जाता है। शय निमित्त कारण कोई नहीं रहता। जत्र यह निद्रय हो गया कि रागादिकी उत्पत्ति आत्माम हाता है तभी आत्मा दु रगना पात्र होता है। अत रागादिकका भेदनेके लिय उनके होनेपर 'गल पडे चनाय सर' इस कहावतके अनुसार उन्हें अपनाता न चाहिये। उनमें आसक्त न हो यहा वेडा पार हानना उपाय है।

( १९ । ५ । ५१ )

८८ परने सम्प्रथसे ही आत्माम पर कल्पना होने लागती है। यहा कल्पना जागामी निचमे परधी कल्पना करता है। यहा कल्पना अनादिसे आनतर रही। इसमें यही प्रमाण है जो हम निरंतर व्यम रहते हैं। अनेक महानुभावोंका समागम करके

भी इस महती विपत्तिसे मुक्त होनेमें विफल प्रयत्न रहते हैं। मुक्त होनेमें न तो मन्नागम कारण है और न तीर्थ यात्राआमों उपयोग लगाना, लाखों रुपयोंका व्यय करना भा कारण है। तीर्थ भी हमारी ही मल्पना है, जिसके द्वारा ससार समुद्रसे तिर जाये इसीमें ता तीर्थ शब्दसे व्यग्रहार करते हैं। अत्र वताओ क्या गया, काशी आदि स्थानोंमें स्पर्श करनेसे आमा समारके पापोंसे मुक्त हो सक्ता है ? अथवा साक्षान तीर्थ भगवान अहत्तदवना वदनासे मुक्त हो सकते हैं ? भगवान् तीर्थवृत्तदेवके वदन आदि कथासे पुण्यपथ हा तो हागा ? संसारपथनसे मुक्त होनेका मार्ग तो उर्हीं भगवानने निदिष्ट किया है। यदि ससार वधनसे मुक्त होनेकी अभिनापा है तत्र जो परिणाम ससारके जनक हैं उठ त्यागो। ससारका कारण योग और कषाय हैं उठ त्यागो। निश्चल हो, निष्प्रयाय हो, यही मुक्तिमार्ग है, और वृद्ध नहीं।

( २५।५।५१ )

११ परमाथ पथ केवल आत्माकी एक पयाय है जो परमात्मा उत्पादक है। 'परमार्थका उत्पादन' यह भी व्यग्रहार है। व्यग्रहार वही हाता है जहाँ अयमी अपेक्षा की जाती है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीर्ना धम व्यग्रहारसे मोक्षमार्ग हैं, निश्चयसे तो एक आमा ही मोक्षमार्ग है। जिस समय यह ससारका कारण होता है उस समय इसका परिणमन मोक्ष रागद्वपरूप रहता है। जत्र मोक्षमार्गम जाता है तत्र व परिणमन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप हो जाते हैं। यहाँ पर गुण और गुणी यह दोनों व्यग्रहार अपेक्षा नाम हैं। इनम प्रदश भेद नहीं। केवल सारा सारया प्रयोजनादि भेदसे भिन्नता आत्मा और गुणम है। हम अनादिसे पर पन्थके सम्बन्धमें इस ससारका विदम्बनाका अपना मान किस तरह व्यग्र और दु सके पात्र वन रहे हैं जो किसीसे

गुप्त नहीं। हमारा प्रवृत्ति इतनी कायर हो गई है कि निरंतर पर पदार्थांक द्वारा मुग्धा बनना चाहत हैं। गुप्त का उत्पत्ति तो इम द्वन्द्व दशासे मुक्त ज्ञान पर ही होगी।

( २।६।५१ )

२० बहुत कम जाला, "यथ जिना मत करो, मोद ल्यागा, यदी ध्यान करनेका मूल उपाय है। ध्यान सासार और माश्रमा मार्ग नहीं। पर पदाथाम जो आत्मरह्यना है यदी संसारकी जननी है। वहाँ परमे सम्म व जिच्छे हा गया, आयायाम ही मुक्ति मार्गसे पथिक हानेका मुअप्रसर जागया।

( ३।६।५१ )

२१ सजदा प्रमत्त रहा, माक्षमाग इमने जिना नहीं मिलता। प्रसन्नतासे ही विशुद्धताका उदय हाता है। विशुद्धता जिना किमी उत्तम वाथम उपयाग नर्ण रागता।

( ५।७।५१ )

२२ आत्माकी महिमा अचित्य है। इमने इतना भयद्वर उत्पात किया कि यहूझानी भी प्राय इमका निर्नेचनसर अशांत रहत है। निर्नेचनमे ही शांति नहा मिलती और न आत्मज्ञानसे ही शांति मिलती है। नियचन शांतिका कारण नहीं, नियचन तो द्रव्यश्रुतने द्वारा प्राय जहतसे पण्डित कर देते हैं। आत्माका ज्ञान हानेसे शांति हा यह भा नहीं देगा जाता। आत्मज्ञान किसको नहीं ? किमीको बुद्ध कहो, तत्वा ही वह समझ जाता है कि अमुक ने हमको यह कहा। यही तो स्वपरविम्व है। परन्तु इसम बुद्ध तुटि है जिमसे गद् हाकर भी शांति नहीं पाता। यह क्या है ? आगामम इसे रागद्वेष कहा है, राग मान प्रीतिरूप परिणाम और द्वेष माने अप्रातिरूप परिणाम। यही परिणाम तो अशांतिने उत्पादन है। प्रत्येक प्राणी इनका अशांतिना हेतु जान

पृथक् करना चाहता है परन्तु दूर नहीं कर सकता। इसका जा कारण है, उसे दूर करनेवाला तो है यही मोक्षमार्गका पात्र है। अथवा जिनका ही विद्वान हो, त्यागी हो, तपस्वी हो, मोक्षमार्ग का पात्र नहीं हो सकता। और न तो विद्वान है, न त्यागी तपस्वी है किन्तु निम्ने रागद्वेषके मूल कारणपर नियंत्रण प्राप्त कर ली है यही मोक्षमार्गका अधिवारा है।

( ११।७।५१ )

०३. आपको जानो, परको अपना मानना छोड़ना यही ममकार उच्छेदका कारण है। आपको क्या जानें? आपका आपका मानो, परका अपना मानना छोड़ दो।

( ११।९।५१ )

०४. परमे सम्बन्ध रखना ही ममकारका मूल कारण है। यद्यपि बंधनस्थाने हम अनादिमे हैं और उसमे पृथक् होना प्राय कठिन है। परन्तु जब मम पदार्थ आत्मीय आत्मीय स्वरूपमे पृथक् है तब उनमे पृथक्ता करना ही भूल है। उनमें एकत्र माननही जा प्रणाला हम स्वीकार किये हैं उसे त्यागना ही मोक्षका उपाय है।

( १२।९।५१ )

“तदा बन्धो यदा चित्तसक्तकास्वपि दृष्टिषु।

तदा मोक्षो यदाचित्तमसक्त सर्वदृष्टिषु ॥”

०५. जब तब यद् चित्त किसी दृष्टि या मतम आसक्त है तब तब ही बंध है। जिस समय यह मन मम मतोंम अनामक्त हो जाता है उसी कालम आत्माका मोक्ष है।

( १२।१०।५१ )

“मुक्तिमिच्छामि चेत् तात ! विषयान् विपरित्यज ।

क्षमार्जुनदयाशौचसत्य पीयूषमद्भुज ॥”

२६ ह तान् । यदि आप मुक्तिवा अभितास रखते हो तो विषयास विषके मन्त्रा तान त्याग करा और कामा आनन्द, पर जावानुकरणा, परित्रता तथा मय धमरा अमृतम मन्त्रा मेधन करो । यद्यपि तिन लीषान पञ्चद्विषय विषयम अतुराग त्याग निया उत्तर गर धम अनायाम ही आ जात है । जैसे जत अग्निरे मन्त्रधरा पारर जग हा जाता है । तर्गे जगपना निरत जाता है जतरा स्याभावित्र शीतगुण स्वयमेव प्रगट हा जाता है । इसी तरह तत्र आत्मा विषय मेधनही अभितास मिट जाती है आत्मा जात्मश्रद्धा, ज्ञान और चारित्र स्वयमेव व्यक्त हा जात है । स्वरा स्म-नाथ जग-शब्द यह पुद्गलर गुण पयाय है । अज्ञानीआत्माइत विषयास अपन तान मंत्रा करता या । तिम कान्तम ज विषयों का त्यागा, जा इनम अभ्युद्धि थी स्वयमेव आत्मास विनीत हा गयी । तिनका पर जाता तभी ता उनम रागादिकरा अभाय है । राग ही ता आत्मा चारित्र गुणरा घातर था । रागादि तानमे अनायाम वीतरागतास विवारा हो गया । वीतरागतासे विवारा हात हा आत्मारूप विवारा भी आपमे आप जाता गया तत्र आत्मास हित ना सुख है स्वयमेव मिता गया ।

( १४ । १० । ५१ )

## सम्यग्दर्शन

१ सम्यग्दर्शन तिमरे हा जाना है उमरे समता श्रमना, आनन्द, सत्यधमरा उदय हो जाना है तथा माय ही शीत गुणरा उदय होता है तिमरे होनेपर लोभरा मात्रा कम हा जानी है । अत उमे हम जषय माधु बद् सजते है । शेष तप, त्याग आदिचन

ब्रह्मचर्य जहाँपर होते हैं वहाँ साधुकी पूर्णता हो जाता है। साधुपना वहींसे आता नह। जहाँपर आत्मा स्वयं स्वकीय परिणामोंके द्वारा मनो स्वयं अर्थ स्वयं मनो अज्ञानार करता है वहीं मिद्वपदभाक् हो जाता है। सिद्धका स्मरण वातावरण मिद्व पदका पात्र बना देता है। अहङ्कृति, प्रयत्नभक्ति, धमानुराग, त्याग, तप आदि तो आश्रयके कारण हैं। अहङ्कृति तीव्ररूप प्राप्तिम कारण पत्ता है किन्तु मिद्वभक्ति साक्षान् मोक्षजनक है। तीव्ररूप सिद्धभक्ति हा का अत्यलम्बन करते हैं। अहङ्कृति और मिद्वभक्तिम अंतर है, अहङ्कृतिम तीव्ररूपे ममवशरणादि भी आते हैं, सिद्धभक्तिम केवल आत्मपरिणति ही है।

परमायसे सम्यग्प्रिही र्म, अथ, काम पुरुषार्थाना पात्र है। यत् प्रियं जहाँपर एव माय हा वही शाभा है। जहाँ धर्म हो वहाँ काम और अर्थ, और जहाँ काम, अर्थ हा वहाँ धर्म हो तत्र ता इनकी गणना पुरुषार्थमि है अथवा इनका नाम पुरुषार्थ नहीं, सासारवधक ही हैं। धर्मके अर्थ जहाँपर अर्थ और काम हा व ता उपयोगी हैं और जहाँ केवल अर्थोपादनकी मुख्यता है, काम केवल केवल विषय लिखाने लिये हो तत्र व दोनों पुरुषार्थ सासार वर्णन हा हैं। जहाँपर केवल धनार्जनकी हा मुख्यता है उसने न तो धर्म हा होता है और न काम। तथा जहाँ केवल पुण्यकी मुख्यतामे धर्म कमाया जाता है वह धर्म केवल सासार हीका पापक है। पुण्य केवल आत्माकी स्वपरिणति नहीं, प्रियत परिणति है। उससे आत्मगुणके प्रकाशना धति रहता है। प्रथम तो पुण्य परिणामम परावलम्बन ही रहता है, शुद्ध साधुयोगसे केवल पुण्य बंध हा होता है। परोपकार करनेम जो भाव होत हैं वे भी परावलम्बा भाव हैं। जहाँ परना अपेक्षा न रहे और आत्माकी मिथ्या परिणति एतदम चली जाने वहीं पर आत्मा निरिन्त्य हो जाता है



स्वाश्रय परिणतिसे होनेसे शांत भावना अनुभव करता है। यही परिणति उपाद्य है।

( २३।८।५१ )

२ मयूर पूरक ना निवरा हाना है यही मातृमागम उप यागिना है। यह निवरा सम्यग्दृष्टि ही होती है। यह फलानु भवन ही निवरा है। यह फलचा सम्यग्दृष्टि हो चाहे मिथ्या दृष्टि हा भागना पड़ता है। किंतु मिथ्यादृष्टि रागादिक भावाके सद्भासे बंधका निमित्त हा जाता है और सम्यग्दृष्टि समम भोगाम रागादि भावाके न हानेसे निवराका निमित्त हो जाता है। यह सामान्य ज्ञान और अंतरागतानी है। ज्ञानरी सामध्य अति ल्य है। जैसे काइ त्रिप वैद्य विप ग्राहकने अमोघ विद्याने प्रसाद मे मरणका प्राप्त नहीं होता पर सम्यग्दृष्टि जीव पूरक द्वारा आगत त्रिपयाना भाग करन भी बंधको प्राप्त नहीं होता। यह उसने ज्ञानना वन है। सम्यग्दृष्टि हानक अनंतर पसी निमल आत्मा हो जाती है कि फिर ससार बन्धनमे त्रिमुक्त हा जाता है।

( ८।१२।५१ )

३ सम्यग्दर्शनमे परको त्रिच माननेका अभिप्राय मिट जाता है। पञ्चात् सप्तको त्याग स्वात्मान लीन हा जाता है। अत जिनके घट हा गया उनके सभी काय सम्पन्न हो गय क्योंकि आत्माका त्रिच माश्र है। माश्रका उपाय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है अत सप्त द्वन्द्वको छोड इमीम लगे।

( १२।१२।५१ )

## ज्ञान गुण राशि

१ ज्ञान गुण वास्तवमे प्रकाशक है। जा वस्तु इसके समन आती है वह उसके निमित्तका पाकर अपने स्वरूपमे उसका भाव

करने लगता है। परमाणुसे न ता कोई कहीं जाता है और न कोई निर्माणाकर्ता धता है व्यग्रहारिक प्रवृत्तिमें यह मय हाता है।

( १५।८।४८ )

२. ज्ञानादि गुणावा विनाश ज्ञानाकरण कमके श्रयोपशमसे हाता है परन्तु क्षयोपशमके होनेपर यदि मोहोन्मत्त मद न हुआ तब उस ज्ञानसे यथार्थ लाभ नहीं।

( २०।१०।४८ )

३. ज्ञानका विनाश श्रयोपशमाधान है। मग्यस्त्व मिथ्यात्व ज्ञानम जो यपदेश हाता है यह परकृत है। सामान्य ज्ञानम जाननेकी मुख्यता है।

( २९।१०।४८ )

४. शिवाका उद्देश्य शान्ति है। उमका कारण आध्यात्मिक शिरा है। आध्यात्मिक शिक्षाने ही मनुष्य गेहिर एव पारलौकिक शान्तिका भाजन हा सक्ता है।

( ३२।१२।४८ )

५. धार्मिक शिक्षा निर्मा सम्प्रदाय विशेष का नहीं। यह तो प्रत्येक प्राणीकी सम्पत्ति है। उसका आदरपूर्वक प्रचार करना राष्ट्रका मुख्य कर्तव्य है। जिस राष्ट्रम ज्मने विना केवल लौकिक शिक्षा दी जाता है यह राष्ट्र न तो स्वय शान्तिका पात्र है और न अयका उपकारी हो सक्ता है। धार्मिक नावासे लिय धार्मिक शिक्षाकी मुख्य आवश्यकता है।

( ३३, ३४।१२।४८ )

६. आजकल भौतिकवादने प्रचारसे समाका सहार हो रहा है। इसका मूल कारण एरात्री शिक्षा है। यदि हमका मिश्रण आध्या-

मित्र शिवाङ्गे माथ रिया जाय तो अनायास ही नगतना कल्याण  
न जायेगा ।

( २१ । १२ । ४८ )

७ ज्ञानानन करना मनुष्यना मुख्य कर्तव्य है । हम मनुष्य  
हैं, ज्ञानने विना हमना यह निश्चय नहीं हाता । जात्माने अन्दर  
ज्ञान ही एन एम्मा गुण है वो सत्र गुणारी व्ययस्था बनाय है ।  
ज्ञान ही हमना यह बनाता है कि अग्नि उष्ण और नन शीत होता  
है । अग्निने निमित्त मिटाननर नन उष्ण हो गया और नतमानर्म  
नत उष्ण है । यदि हमना स्पर्श किया जाये तत्र नल गम ही हागा ।  
फिर भी जलनी उष्णता अग्निनी उष्णतासे भिन्न है । उस उष्ण  
नतामचायन गलनेम चायन मिल जायेंग, और अग्निम चायल डाल  
नम चायल भस्म ज्ञानागम । हमसे मित्र हुआ कि नलनी उष्णता  
और अग्निनी उष्णताम भिन्नता है । इर्मा तर आत्मा म मोहनीय  
कमना राग प्रकृतिना नन उष्ण आता है तय आत्मा उमने उदय  
कानम रागरूप परिणति करता है किन्तु प्रकृतिने राग और  
आत्माने रागम अन्तर है । आत्माना राग चेतन द्रव्यना परि  
णाम है और पुद्गलम जो राग है यह जचेतनना परिणाम  
है । हमारम जा राग है वनी हम ममार चतुगतिम भ्रमण  
कराता है ।

( २० । ९ । ५१ )

८ आत्मा चैतन्य गुणवाता है । चेतना न गुण है जो  
सत्रना व्ययस्था करता है । व्ययस्था करनेवाता ज्ञान नहीं, ज्ञान  
तो जाननेवाली शक्ति है । उसम यस्तु प्रतिभागिन हाता है, 'यह  
अमुक है, यह अमुक है, यह व्ययस्था इन्द्रियनय ज्ञानम होती  
है । यहाँ भी मोह ही कारण है । अतीन्द्रिय ज्ञानम यह बुद्ध



‘मनमें हो मो वचन उचारिये ।  
वचन होय सो तन सा करिये ॥”

अतः हमारी श्रद्धा धर्ममार्ग पर आगे हम मस्तिष्क जाता उचित नहीं समझने । निम्न प्राचीन शिक्षा का शान्तिप्रारम्भ यह पात्र होता था उसका आदेश है—

‘अयं निच परो वेति गणना लघुचेतनाम् ।  
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥”

‘यह अपना है, यह पराया है’ ऐसा भेद तो अनुदार हृदय धारण ही करते हैं । जो उदार हृदय है तो यह तब ही सारा संसार ही कुटुम्ब है ।

( २०, ९।५।१०।५१ )

१० ज्ञान गुणहा आत्मामें ऐसा है वा मन गुणारी व्यवस्था करता है तथा अपन स्वरूपकी भाँति व्यवस्था करता है । यदि ज्ञान गुण न हो तो तब निर्मोही व्यवस्था नहीं बन सकती । ज्ञान ही हम परम शक्ति का लिये है जो परकी व्यवस्था करता है और अपनी भी व्यवस्था करता है । हम परम भिन्न हैं इसका नियामक ज्ञान ही है । घट-पत्त-स्वप्न इस सब व्यवस्था का नियामक ज्ञान ही है । ज्ञान ही दर्शनसे भिन्न हम हैं ज्ञानमें भिन्न धारित हैं, इत्यादि व्यवस्था बनाय हुए हैं । यह धीतरागी है, यह सरागी है, यह मूर्ख है, यह पण्डित है, यह विप है, यह असूत है, हम चेतन हैं, आदि सब व्यवस्था का नियामक ज्ञान ही है ।

( १२।११।५१ )

११ संसारमें ज्ञानसे बिना काइ काय नहीं हाता । यदि हमको ज्ञान न हो तो हम अपना हित नहीं जान सकते । हमारा क्या दर्नेव्य है, क्या अनन्य है, यह भय है, यह अभय है, यह

मा है, यह बहिन है, यह भ्राता है, यह सुत है, यह पिता है इत्यादि चित्तने व्यवहार है मर लोप हा जायेंगे। अन आयश्यम्ना ज्ञाना जननी है। ज्ञानरा अर्चन गुरु द्वारा हाता है इसीसे गुम्नी सुब्रूया करना हमारा कर्तव्य है। पिना गुम्नी कृपासे हमारा अज्ञान प्रसार नहीं मिट सकता। जैसे सूर्यादयसे पिना रात्रिना अन्धकार नहीं जाता इसा प्रसार गुम्न उपदेश पिना हमारा अज्ञान दूर नहा हा सकता। यही कारण है कि गुम्नो हम माता पितासे भी अधिक मानते हैं। माता पिता तो जन्म देनेर ही निमित्त ह किन्तु गुम्न हमसे हम याग्य बना दत हैं कि मंमारसे मर काय करनेम हम पदु बन जात हैं। अत समारम विद्यागुरु न होना तो हम पशु तुल्य हो जात।

( २२। १०। ५१ )

## स्वाध्याय

१ स्वाध्यायमे चित्त प्रमत्त हाता है। यन्मुखा यथाय न्द्वय हाता है। चित्तम विकल्पनी उत्पत्ति नहीं होता। अन्यनाम कर्त नहीं जाता। अत मर विकल्पारो त्याग स्वाध्यायमे मन लगाओ।

( २४। ४। २५ )

२ हम निरन्तर शास्त्र प्रपन्न करत है, मुन्वे है कन्तु इत होनी चाहिये उसमे यञ्चिन रहत है। निम मनर कन्तु इत है एतदम समारसे पन्नाम ज्येश्ठाश्चा वाता है। तेन्तु इत है धाम्तरम उपेक्षा हा जाय तव यदा कन्तु इत है वृत्ति आ जाती है पर यह वृत्ति भा कन्तु इत है

(

३ शास्त्र पढना जसीना हितकर होता है जो स्वयं उस पर धनता हा। आगमम लिया है तो वह व्यक्ति जो बुद्धिमान होता है आगमका रचकर लोगोको उसका अर्थ व्यक्त कर देता है परंतु जा माग शास्त्रम निहित है उसपर अमल करना हरणका काम नही।

( २८।६।४७ )

४ परिणामोको कल्पित मत करो यहा ता शास्त्रका पढनेका फल है। किमीकी प्रवृत्ति देखकर दुग्या मत हाओ। तुमका क्या अविचार है जा पराई प्रवृत्तिको सम्मन करा सफे ? संसारमे अनन्त पदाय है। स्वभाव स्वकीय परिणमन द्वारा अनादि कालसे स्वतन्त्र होकर चल आ रहे है। व्ययकी कल्पनाएँ कर मत्तशित होआ तो हाआ पर उससे तुम्हारी भूलका मिटानेवाटा काइ नही।

( २९।६।४७ )

५ प्रवचनका लाभ उसीको होता है जा उनके बाल तम उप योगको स्थिर रखता है। परिणामोका चञ्चलनाका अधिक कषायके कारणसे प्रिरकता है। कषायके कारण अनाभाय पदाधाम आत्म ज्ञान तथा पञ्चद्रियके विषयना ताडुपता है। इसपर विनय पाना बठिन है।

( ३५।७।४७ )

६ प्रवचनका लाभ ता यह है कि यथाशक्ति उपयोगको निमज बनाना। उपयोगका निमलता कषायके मन्भावम है।

( ३८।७।४७ )

७ शास्त्र प्रवचन और ज्ञान है अंतरङ्गकी श्रद्धा और वात है। श्रद्धाके अनुकूल प्रवृत्ति हरणका नहा होता, उपरके वगुलाभक हम नही हा सरने।

( २३।७।४७ )

८ आभ्यन्तर ज्ञान होनेकी मन्ती आग्रह्ययता है । आगमाभ्याम ही अभ्रात ज्ञान होनेका मुख्य उपाय है । अतः निरन्तर आगमाभ्याम करो । गल्पनाद् ज्ञानका बाधन है ।

( ६।८।२७ )

९ आत्महित ज्ञानार्जनमें होता है उसमें अथ अलगमें परिश्रम नहीं करना पडता । आत्मज्ञानका मूल आगमाभ्यास है ।

( १८।८।४७ )

१० स्वाध्यायसे स्वपरिवेक होता है, स्वपरिवेक ही पर पदार्थोंमें मन्त्रा त्यागका कारण है । अनादि कालमें यही नष्टा हुआ इमीमें हमारी बुद्धि अनात्माय पदार्थोंमें उलझ रही ।

( १३।४।४८ )

११ स्वाध्यायका यह तापर्य है कि अपनेको परमें भिन्न मानना तथा उसमें जो भाव मङ्गलशकारक हों उनका त्याग करना । पहिल तो विषयोंमें जो लिप्सा है उसे दूर करो, पश्चात् जिन भावोंमें यह लिप्सा होती है उन्हें त्यागा ।

( १६।५।४८ )

१२ स्वाध्याय परम तप है । जिसने स्वाध्याय किया वह समार बन्धनोंसे मुक्त हो गया । स्वाध्यायका अर्थ यह है कि आत्माको परमें भिन्न जानना, भिन्न जानकर परम रागादि न करना, रागादि ही आत्माको समारम रखते हैं ।

( १८।५।२८ )

१३ शास्त्र प्रवचनका प्रयोजन अपने रागादि परिणामोंका कृशाना और श्रोताओंको ज्ञाननाम है ।

( २८।७।४८ )

१४ ध्यान और पृच्छना यह स्वाध्यायके अङ्ग हैं । स्वाध्याय सज्ञा तपनी है, तपका लक्षण इन्द्रानिरोध है अतएव तप



निर्नराया कारण है। जैसे दूध का ता म्याध्यायमे तत्त्वरोध होता है तथा मुननराला भी म्मरे द्वारा बोध प्राप्त करता है। रोधना फल न्याय म्मामें हानोपापानापेशा तथा अज्ञाननिवृत्ति बतलाया है। तदुक्त—

“उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानदानधी ।

पूर्वागाननाशो वा सरस्यास्य स्वगोचरे ।”

केवलज्ञानका फल उपश्रमा है शेष चार ज्ञानका फल नान और आदान कहा है अथवा हेयका त्याग और जादयका प्रण। यहाँपर यह आशङ्का हाना है कि नान चाह पूण हा चाह अपूर्ण हो, नसका फल एक तरहका ही हाना चाहिये। तत्र ना फल केवल ज्ञानका है नहीं फल शेष चार ज्ञानोंका हाना चाहिये। इमाम श्री समन्तभद्राचार्यन शेष चार ज्ञानका फल बनी तिरमा—‘पूराया इत्यादि। यहाँ पर पुन शङ्का होती है कि उपेक्षा तो मात्रे प्रभायम बारहव गुणस्थानामें हो जाता है, केवलज्ञान तरहव गुणस्थानम होता है अत केवलज्ञानका फल उपश्रमा नपिन नहीं और शेष चार ज्ञानका फल आदान दान भा उचित नहीं क्यकि आदान और दान मोहन वाय है म्ममे ज्ञानका फल अज्ञान निवृत्ति ही है

( १६।३।५१ )

१५ स्वाध्यायका फल केवलज्ञानकी वृद्धि नहीं है विन्तु स्वात्मतत्त्वका स्वायत्तम्वन दकर शांतिमागम जाना मुख्य ध्यय है। आत्मत्व हमारी प्रकृति उस तरहमे नपिन हा गइ है कि ज्ञानाननसे हम संसारम अपनी प्रतिष्ठा चाहत हैं, ससारसे मुक्त होना नहीं चाहते। अथवा तुच्छ और अपनेका महान् जनानेके

लिये उस ज्ञानका उपयोग करते हैं। निम्न ज्ञानसे गेदज्ञानका लाभ या आन उससे हम गर्तम पडना चाहते हैं।

(९।७।५१)

१६ अथयत्न, मनन करनेका इतना ही तो प्रयाचन है कि परमे भिन्न आपसो माना, तथा आपस तो अनुचित परिणाम हैं निनसे आत्मानो वष्ट पहुँचता हो ऋह त्यागो।

(२६।७।१)

१७ यदि हम परमात्मे स्वाध्यायके प्रेमी हो जायें तत्र अनायाम ही मंसार बधनरं कशमे मुक्त हो मरते हैं।

(२२।१२।११)

## सयम

१ सयम ही आत्माना कल्याणपथम महायर है। सयमका यह अर्थ है कि पञ्चद्रियोके विषयोस निरक्त रहना, मनके विकल्प भेदना। निमीका प्रसन्न करनेमे सयमकी रथा नहीं हो सक्ती। सयमकी रथा निरपेक्षतामे हो मक्ती है।

(८।८।४८)

२ मनुष्य नमकी मफलता सयमसे है।

(५।११।४८)

## भक्ति

१ श्रीनिन्दूदवकी अचारर लौकिक पदाधारकी याञ्चा नहीं करनी चाहिये। यदि लौकिक पदाधारकी वाञ्छासे भगवत् भक्ति की जात्र तत्र यह जयरन अपनेको संसार बधनका पात्र बनाता है। विचारो तो महा सूत्रकारने जो मद्गलारण प्रारम्भम किया है समम तो तिग्या है—

“मोक्षमार्गस्य नेतार, भेचार कर्मभूभूताम् ।  
तातार विश्वतत्त्वाना वन्दे तद्गुणलब्धये ॥”

अर्थात् जो मार्गमार्गका नेता है, और कर्मरूप परतारों के भेचार तथा विश्वतत्त्वाना ज्ञाता = उच्च गुणोंकी प्राप्तिके लिये उसका मैं बन्ना करता हूँ। यह आत्मा नमस्कार किया है। तत्त्वदृष्टिमें देखा जाय तो उसका मूल गुण ज्ञाना-दृष्ट है। कर्मभूद्वैतत्व और मोक्षमार्गनृत्व यह दोनों तो सम्भवमें हैं। कर्म पदार्थका माहादि द्वारा सम्भव था, माहादि अर्थात् ज्ञानसे उच्च अर्थात् स्वयमेव हा जाता है। एष एगनत्रिशुद्धि भावनामें तीर्थतन नाम प्रकृतिका सम्भव हा गया था उसके उदयमें मात्स्यभाग नेतृत्व हो जाता है। धर्मतन्त्रम यत् आत्माका वाङ्गुण नहीं। यदि यह गुण हाता तत्र परमात्मा प्रियाग ज्ञानपर भी इसका अस्तित्व पाया जाना अर्थात् वास्तव गुण ता आत्माके ज्ञानत्व ही है।

( २७ । १ । ५१ )

० जय यत् सिद्धांत निविधान और अर्थात् है कि सभी पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें परिणमन कर रहे हैं, एष पदार्थके गुण दूसरे पदार्थमें नहीं जाते तत्र परमात्मासे वीतरागताका आशा करना व्यर्थ है। परमात्मा हमसे भिन्न है तत्र उच्च गुण हममें आरगे यह बुद्धिमें नहीं आता। जैसे मिट्टीसे घट उत्पन्न होता है तत्र मिट्टी द्रव्य और मिट्टीके गुण घटमें जाते हैं, बनानेवाला जो कुम्भकार है उसका आत्मा तथा उसके गुण घटमें नहीं आते। इसी तरह परमात्मा अन्य पदार्थ है, हम अन्य पदार्थ हैं ऐसी वस्तुमयादा प्रियत है तत्र उसमें जो गुण धर्म हैं वे अर्थात् नहीं जा सकते। अतः हम भावकों तत्र परमात्माकी उपासना नहीं करनी चाहिए कि हम परमात्मानो उपासना कर परमात्मा हो जायेंगे।

किन्तु यदि हम अपनी परिणति के लिए ~~अपनी~~  
 मलिन हानिसे बचाये रख सकें ~~तो हम~~ ~~सुख~~ ~~प्राप्त~~  
 कर सकते हैं। इसका यद् भार है ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 विहासना त्याग कर देना ~~आइए~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 अपनी रक्षा कर सकते हैं। ~~एक~~ ~~दो~~ ~~तीनों~~ ~~के~~ ~~लिए~~  
 विहासनी भक्ति पातक हम ~~को~~ ~~नहीं~~ ~~है~~ ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~  
 निमल भावों की आर हमारा ध्यान ~~है~~

(1923)

### मानस

१ जैनधर्म (मानस) ~~का~~ ~~अर्थ~~ ~~है~~ ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~  
 हमारा अनुकरण कर नीय ~~कर~~ ~~कर~~ ~~कर~~ ~~कर~~ ~~कर~~ ~~कर~~ ~~कर~~  
 यज्ञित नर्त हा सकते। ~~दक्षिण~~ ~~के~~ ~~लिए~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 है मय भिन्न मत्तारा लिय है ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 है तय उसम हमारा मम ~~व~~ ~~प~~ ~~र~~ ~~है~~ ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 बंधका जनक है। ~~आर~~ ~~प~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~  
 असय, पारी, ज्यभिसार, ~~दक्षिण~~ ~~के~~ ~~लिए~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 जाय। हम दूसर पर्याय ~~के~~ ~~लिए~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 मून कारण यही है ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 पदाग न तो युग है, न ~~है~~ ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 नमरे विभाग करत है। ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~  
 है और मत्तात्मग करत है, ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~  
 करते हैं, यही मल शून ~~है~~ ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~  
 परन्तु उस पर्यायमें ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~  
 यही जाय पाहे तो ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~  
 क्या आइ है ~~कि~~ ~~हमें~~ ~~अपनी~~ ~~दुःख~~ ~~है~~

सुखि शान्त विना विना मनस्येव सिद्धिः शान्तिः शान्तियुक्ता ।  
 मनस्येव शान्तियुक्ता शान्तियुक्ता शान्तियुक्ता ।

( १९।१।५१ )

० विद्वान् अज्ञानमज्ञानं विद्वान् अज्ञानं अज्ञानं । शान्तं शान्तं शान्तं  
 अज्ञानं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।  
 शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं । शान्तं शान्तं शान्तं शान्तं ।

( १९।१।५१ )



## सफलताके साधन

१ किमी वायके करनेका जो निश्चय करो उसे सहसा वापस आनेपर भी न छाडो । यदि उम निश्चयसे आत्मघात होना हो और आत्मा मालाभूत होता है तब उसे छाड द। परका वात यही तक मानो जर्न तक स्वाथम वाप न आये । स्त्रासे तात्पर्य निरीहवृत्तिम है । आत्माना स्वाथ यही है कि परमे भिन्न है, पर परमाणुमात्र भा आत्माय नहीं यही भावना हट होना । जब पर परमाणु भी अपना नहीं तब स्वगादि सुगोंके लिए परमेश्वरकी उपासना करना प्रफल है ।

( २१ । १४७ )

२ मेरा निनी अनुभव है जा मनुष्य धीर नहीं वह मनुष्य किमी कार्यम सफरीभूत नहीं हो सता । मैं जमसे अधीर हूँ अत मेरा को भी कार्य आन तक सफल नहीं हुआ । पयाय जान गई परतु पयायबुद्धि नहीं गई । पयाय नश्वर है यह प्रतिष्नि पाठ पढते हैं परन्तु इससे राई तरय नहीं निकलता । तत्र तो जहाँ है वना ही है ।

( २१ । ७ । १७७ )

३ परतो प्रसन्न करनेकी चेष्टा मत करो । जब य अन्नात सिद्धात है कि एक द्रव्य अय द्रव्यका उत्पादक नहा तब तुम्हारे प्रयत्नसे तो अय प्रमन्न न हागा । अपना ही परिणतिसे प्रसन्न होगा । तुम व्यर्थ गिन्न मत होओ कि हमने परिणमाया । अन्य द्रव्यका चतुष्टय अन्यमे भिन्न है ।

( २१ )

८ काठ भा काम करा निर्भरनामे करो ।

( २०।८।४७ )

५ संसारम रतयनिप्र जना र्मगारी भाग्या चैष्टाने पति अपना शक्तिरा विनाम करो । केवल गल्पनात्मे भाई नही हो सकता । कुछ रतव्य पत्रपर जाता, उहा संमार धारामे छूटनना माग है । ता मनुष्य रतव्यनी जानत है उहा शीत्र ही अभाष्ट पत्र पात्र हाते ह ।

( २०।८।४७ )

६ उहुत जल्पवात् र्मभम परिणत हा जाना है । चितना जल्पवाद करोगे जनना हा काय करनेम शक्ति रराग । १०० वाग कहेनेही अपक्षा पत्र नाम करना धेयम्बर है । उपदश जना दो चितना अमलम आ मर । पुण्य धार्याना निरस्कार मत करो । शुद्धापयोग जनम वस्तु है परतु शुद्धापयागनी कथामे शुद्धापयाग नही हाता ।

( ११।९।४७ )

७ का भी काम करा जनानी मत करा ।

( १।९।४७ )

८ ता काम करो शांतिमे करो । प्रथम ता काय करने पडिल अन्धे प्रसारम निणय कर लो कि हम य काय करनेही शक्ति रखत है अथवा नही ? यदि वाग्यता उहा ता उम कायने करनेना मादम उ करो तथा जन उम कायने करनेम सामुग्र होओ तत्र अन्य कायनी व्यग्रता मत रक्थो । जनानी मत करा, चित्तनो प्रमत्त ररा । विगुहता ही प्रत्यर कायम महायन होता है ।

( १५।९।४७ )

६ शांतिमें काम करो, आकुलता दूर करनेके लिए अशांत होना पागलपनकी चेष्टा है।

( १।२।४१ )

१० स्वाध्यायमें ही उपयोग लगाना, किसीमें नहीं जालना यदि कोई गल्प करे तो उसे निषेध कर देना। कपट आगमना क्या करना, जिसका समोच नहीं करना, खलिमल नोपरो दूर करनेके लिये अपने अन्तःकरणमें विचारपूजक कार्य करो। परकी गुरुता लज्जुतासे हमको न लाभ है, न हानि है।

( १०।५।४१ )

११ मरल व्यवहार करो, आभ्यन्तर कषाय मत करो, निर्माके परिणामनको देख हर्ष निपाद मत करा।

( १२।५।४१ )

१२ किसीके अत्रगुणका कषायसे मत दग्गो, हितकी दृष्टिसे देगना काइ हानिकर नहीं। आत्मशुभाय लिए अच्छा कार्य करनेका मन्त्र मत करो। एमें कार्य करा जो लागता दृष्टिमें मान पापक न समझे जायें। आत्रगम आरु व्रत ग्रहण मत करा। व्रत ग्रहणका फल निवृत्तिमार्गकी प्राप्तिमें प्रयवमान है। जो कार्य करा उसका फल उम कायकी सामग्रा फिर न हा यह लक्ष्य रचना चाहिये।

( ३०।५।४८ )

१३ क्यों परकी ओर देखते हो ? कोई हृद्य करे तुम उम आर लक्ष्य का मत दो। यदि कोई तुमसे कहे—'उडे अज्ञाना का' मुनकर शांत रहो। शब्द वगणाँ पुद्गलका परिणामन है, उनका तात्पर्य पुद्गलसे है, वाच्यायसे नहीं। वाच्याय कल्पनिक है जिससे लौकिक व्यवहार चल रहा है।

( ३।६।४८ )



१४ एव जापानाने गाधीनीको एव चीनीना गिनौना दिया,  
उमम ताग वदर ये । एव वद औँलयाला, एव वद मुग्गघाला  
और एव वद वानयाला । नानासे तान प्रकारकी शिक्षा लो ।  
जा औँग वद मिय वा वद शिक्षा देता वा कि पुर काय मत  
देखा । वद वानयाला शिक्षा देता था कि किमीकी पुराइ मत  
मुनो । वद मुखयाला शिक्षा देता था कि किसीकी गिन मत  
करो । परंतु यह शिक्षाँ कवन मुन ममम लनसे नइ लाभ नहीं,  
प्रवृत्तिम ताना ही श्रयस्कर है ।

( ५ । ६ । ४८ )

१५ जो हठप्राही हा उनर ममागमम रहना अपने आमा  
को उपयगामी बनानर प्रयत्न है । जा उपयगामी आत्मा हँ उनर  
भी ससग करना अत्रा नदा । जा उद न मममें उनरी अपेक्षा  
विषययज्ञानी प्रवृत्त हा पुर है ।

( ९ । ६ । ४८ )

१६ कोई वाय करा, आत्माना धोरा मत दा । कोई  
मामामा करे चाहे न करे परंतु तुम अपनी प्रवृत्ति आत्माने  
अनुरूप करो । ममारकी प्रसन्नता या अप्रसन्नतासे न ता लाभ है  
और न अलाभ है ।

( १० । ६ । ४८ )

१७ जा वस्तु तुम्हारे ज्ञानम न आव उसे सहसा अज्ञानर  
मत करो ।

( १० । ६ । ४८ )

१८ प्रतिज्ञाने विमल्य मत करा । प्रयोजन पडे तत्र वचन  
वाला, प्रयोजन पडे तत्र चर्ता और जत्र प्रयानन पडे तत्र मनका  
व्यापार करा । अद्रयाकी स्वच्छाचारिना न हा एमा व्यवहार  
उनके साथ रखयो । यदि अवसर आव तत्र उनको एवदम राना ।

जब पञ्चन्द्रियों में त्रिषयम प्रवृत्ति न हागा तब मन अत्र न जाकर केवल आत्मा हाम अनन्यशरण होकर सलम हा जावगा । जितना बचन व्यग्रहार घटाओगे उतने ही कपायमें कारण न्यून हागे, ऐसी स्थितिमें निराश्रित कपाय बर्हा रहेगी ?

( १ । ७ । ४८ )

१६ शान्त परिणामोमी आर लक्ष्य हो । जाआपका आत्मा कहे उमाने अनुमा कय करा । पराय कहने पर यत् अनुभव न माने सा कदापि न चला ।

( १ । ७ । ४८ )

२० बहुत कम जाला । मत्य जालनेका अर्थ है कि जिसने भी प्रति कष्टकर बचनाका प्रयाग मत करा ।

( १७ । ६ । ४८ )

२१ प्रत्येक बक्ताका ँचिन है कि चरणानुयोगी जा जान जनतारे समथ रम्ये उसे सम्यक् विचारकर रम्ये और निम आरणपर उसका अमल न हा उसका आदेश श्रानागणाको न द ।

( २९ । ७ । ४८ )

२२ मर्प्रथम अपना काम करा, किमामे दुर्गचन व्यग्रहार मत करो । ऐमा व्यग्रहार करो जो किमीको कष्टकर न हो । परका कष्ट देना अपनका कष्ट देनेकी चेष्टा है । अपने ही मन्श दूसराको मानो, परकी उन्वृष्टता मेर प्रमत्त हाओ, यही उत्तम जननेका मार्ग है ।

( ३ । ८ । ४८ )

२३ जिना विचार वाई काम मत करा । निम कायना करो उमका अत तन निराह करो । यदि बन् काय अयोग्य सिद्ध हा तथा अनुभव भी साक्षा न दे ता शात्र हा त्याग दा । जो काय

उत्तम चरे श्रीर मुग्धर प्रनात हा उमे ही यत्नपूर्वक करा रिमी  
वा प्राताम आर मर फम नाओ ।

( २१ । ८ । ४८ )

२४ जा काम करा निर्भीरनामे करा परनु निर्भीरनाम  
सयतामा पुन रुना चाहिण । परने ममभेदा अभिप्रायमा हृदयम  
म्यान नही देना चान्धिय । निवृत्तनामे सन कायारी सिद्धि हाती  
ह, चन्द्रलता ही काय नायक है ।

( ११ । १० । ४८ )

२५ विमारी हों म हा मत मिताआ । म्यन्त्र हृदयमे  
विचार कर क्रिया हुआ काय अश्य सफा हाता है । किसीना  
तुन्द मत माना, तुन्द काड नही । तुन्द यक्ति हा दूसररो तुन्द  
समभता है ।

( ८ । २ । ५१ )

२६ आनामिना अननमा योग्य माग यद् है हि विममे  
अयरो पीडा न पहुँचे तथा अपन परिणामाम भी रिमा प्रनारकी  
संकोशता न्पत्र न हो ।

( १० । १ । ५१ )

२७ वचनमा मूल्य होता है सा नही, वह ता अमूल्य रस्तु  
है । यदि आप उमरा पालन करेग ममार योग्यम मुक्त होंगे ।  
माल न करनमा तात्पर्य यद् है हि आत्मा नामर एक पत्न्य है  
उमरा लक्षण चैतन्यपरिणाम है अरान् विमम चैननता पा जाये  
उमे आत्मा वदत है । आत्मा एमा है इसमे भिन्न  
लक्षणमाता अनीर है । उसम चेतनता गहा पाड जाती । उमरे  
पांच भेद है । उन दोनारा परिणमन प्रथम प्रथम है । इन दाओंमा  
अनादिसम्बन्ध है । अत दानाकी अवस्था विद्वत रूप हा रही  
है । जानम नो ज्ञाता-गुणपता है वह विद्वत हा र्णा है । विद्वतमा

मूल कारण आत्मामे एक विभाज्य नामर शक्ति है इसर द्वारा नर माहकमका उदय आता है उस समय यह पर पशुग्राम निरुत्तरा फलपना कर लेता है । और इमीर द्वारा समारका जपनाता है । इमीरके घणीभूत होकर अनन्त समारका पात्र हाता है । चिन्ह अनन्त समारके पात्र होनेका भय है उन्हे पर पशुग्राम ना निरुत्तरा की कल्पना हाता है उमे त्याग देना चाहिये । यह काय किसी समागमसे नहीं हाता अन्तरत्की विगुद्धता हो इसका उत्पादक है ।  
( १५ । ७ । ५१ )

१८ अनर्थ यास्य मन रोलो, अनर्थ काय मन करा तथा जहाँतय बने अनर्थ चित्तयन भी मत करा । इमके मानसिय शक्तिना सत्पयाग हागा । सफलताका माग भिन्ना ।  
( २७ । ४ । ५१ )

१९ आनेरानी आपत्तिमे भय मत करो । जो कार्य होना है सामर्पापूषर ही हाता है । अत आपत्तिरूप कायरे होनम अन्त रद्ग कारण तो जमान्तररे हमार परिणाम ही है तिनके द्वारा कम बध हुए । अत बतमान आपत्तिम जो निमित्त कारण हा उनपर रोष करनेकी आवश्यकता नहीं । राय करना हा ता समारका धारण है ।  
( १७ । ५ । ११ )

३० आभासो दुग्धसे प्रचानेराले मनुष्य सादगाम व्यवहार करते हैं ।

( २० । ५ । ५१ )

३१ जा ग्रत लिया है उमे सद्धारनामे पाला । किमीमे पुत्रानेका अभिप्राय मत रखयो । किमीका तुच्छ मत माना, परिणामाको संस्तुशतना आश्रय मत धनाश्रो । हमारा शत गाना तय विगुद्धतामे भी बचाश्रा । माग वही है जहाँ इतिमे शुभाशुभ

भाष्य न आय । निर्मात्री आत्मानं मत दा वि ह्य आपना पाय करा देग । यदि काइ अपना काम करानेका ह्य कर तत्र एवमार नि सद्वाच स्पष्ट उत्तर ता, निपय कर दा । साठ भी प्रतिज्ञा आन मरे तिथे मत लो, प्रतिदिन अपने परिणामात्री पराता करते करते जत्र आपना अस निराद्वयाग्य समभा तत्र थागं गता । पुम्तरना अथलायनपर या किमा वक्तारे क्षणित प्रभायम आनर त्यागी मत बनो । अपन अभ्यतरम जा आत्मारूप परमात्मा है त जा स्वीकार कर रती पाय करा । उसरी म्नीष्टतिने निपरात करोगे तो आपत्तिम पडोगे । निर्मात्री माय एमा ययनार मत करा निमसे निस्तानो बुद्ध सदेह हा जाय । निर्मात्री गल्पवादिम पैमा कर अस समयना दुरपयाग मत करा । एमा काय मत करो निस्ताना कट्ट फल भागना पडे । गतना हा भाजन करा निमे जठराग्नि पचा कर । मसे अधिक् कराग उदराग्निना बाधा हागी, पराधीन हा ताअगो । एमे काय ही त करा निममे पुण्य करनी आनश्यना पड, न पतित बनो, न पतितपावारे द्वार जायो, पापी जीवना ही पापप्रक्षालनने लिय परमात्मात्री आनश्यना हाती है । जा पाप न करगा मसे निर्मात्री अराधनाकी आनश्य कता नहीं पडेगी । यह न निर्मात्री आराधना करना है और न निर्मात्रीसे अपनी आराधना कराना चाहता है । न निर्मात्री प्रमत्त करना चाहता है न अपनको किसीसे प्रसन्न करानेकी ही इच्छा रगता है ।

( २२, २२ । ५ । ७१ )

२० विवेकसे काय करा । बिना विवेक कोड भा मनुष्य थयामागना पथिन नहीं बन मनना । प्रथम तो विवेक चलसे आत्मनस्त्वना हठ श्रद्धा होनी चाहिय फिर जा भा काय करो उममें यह देना कि इस कार्यने करनमें हमना नितना लाभ अलाभ है ।

जिस लाभके अथ मने परिश्रम किया वह परिश्रम सुखपूर्वक हुआ या दुःखपूर्वक हुआ ? यदि कर्म करनेमें संकोशकी प्रचुरता हो तब उम कार्यके करनेमें कोई लाभ नहीं । प्रथम ही दुःख सहना पडा तब उमके पत्रान् सुख हागा, कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता । दो प्रकारके कार्य जगतमें दंगे जाते हैं—एक लौकिक दूसरे अलौकिक । लौकिक काय किनको कहते हैं ? जिनसे हमको लौकिक सुखका लाभ होता है । उहे हम पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं । परमार्यसे सुख तो नहीं क्योंकि सुख तो वह वस्तु है जहाँ आनता न हो । यहाँ तो आकुलताही घटुलता है । जब हम किसी कार्यके करनेका प्रयत्न करते हैं तब हम भीतरसे जगत्क वह काय न हो जाये चैन नहीं पडती । यही आनता है । इसके दूर करनेके अथ ही हम जा व्यापार करते हैं उमरा उद्देश्य यही रहता है कि किसी भी तरह काय मिद्ध हा ।

( १३ । ६ । ५१ )

२३ बहुत कम बालो, जो बालो हितकर बालो, गल्पवाद छोडा, प्रबचनमें जो लिखा है उसे विशदकर जनताके समक्ष रखने । ऐसी भाषाका प्रयोग करा कि जनता समझ जाय । आगम भाषाको श्रोताओंकी भाषाम समझाओ । मनुष्योंको जिस विषयमें दिलचस्पी रहती हो उमाम उहे समझानेका प्रयत्न करो ।

( २७ । ७ । ५१ )

## पुरुषार्थ

१ जो कार्य करना है उसे अधिनम्य करो । बबल मनोवृत्तिमें नाय नहीं होता तन्नुकूल प्रयत्नकी महता आवश्यकता है ।

( ९ । १ । ४७ )

० अमंती तक ता जाय पयाय बुद्धिवाना रहता है उमरो स्वरपर विपक्वता बोध नहीं होता परंतु जय यह जीय सही पञ्चन्द्रिय हा जाता है उम समय इमे आत्मपरिचयकी योग्यता आ जाता है । उम समय यदि भेदज्ञानकी चेष्टा कर तत्र आत्माना परिचयकर परका प्रयक्कर अतर्मुत्तम अनन ससारणे हेतु मिथ्याभावाना मत्ता भेट सक्ता है । अत पुरुपाथ करना चाहिये । पुरुपाथका अर्थ है कि अपनी जो परिणति कर्मोदयमे रागादिरूप हो रही उमम ह्य विपाद न कर । ह्य विपादका हाना ही आगामी कम नधना हंतु हाता है । जैसे अपने घर कोड मेहमान या अतिथि आव उमर साथ यदि आप खहमे व्यग्रहार करग तत्र वह फिर आनेका प्रयत्न करगा । यदि आप तटस्थता धारण करेगे तत्र वह फिर आनेका उद्यम न करेगा ।

( २८।८।५१ )

३ सभी वक्ता व्याख्यान दते हैं कि पुरुपाथमे माह्न होता है । कम हमारे पुरुपाथमे ममत्त्व काह वस्तु नहीं । नष्टात भी प्रहृतसे मिल जाते हैं परंतु जय कोई प्रभ्र करता है कि यदि पुरुपाथ ही मुख्य है और सना पञ्चन्द्रियम उमकी योग्यता है तय आप हा इस पुरुपाथको करने शांतमार्गके पथिक क्या नहीं करते ? तत्र ज्ञाना है क्या करे ? परिस्थिति अनुकूल नहीं इत्यादि उत्तर देकर समाधान कर दत हैं । इससे यहा मानना पड़ेगा कि काई ऐसा प्रतिबन्ध है जो योग्यता हानेपर भी हम अपनी श्रद्धाके अनुरूप सम्यग्ज्ञानमे हानेपर भी मोक्षमार्गके साधक चारित्रको धारण करनेम अममथ है । अत यही उपाय हमना शेष रह जाता है कि रागादिके हानेपर यदी भावना भावें कि यह हमारा स्वभाव भाव नहीं है । उमे अपनानेका प्रयत्न न करें ।

( २९।८।५१ )

५ पुरुपार्थ तो वह है जो परार्थीन न हो। धर्म अर्थ-काम यह तीनों पुरुषार्थ परमापेक्ष हैं, जेवन स्वाधान नहीं। जब शुभोपयाग रूप परिणाम होगा उसी कालमें इसके धर्म पुण्याथ होगा। अथ श्रीर काम पुरुषार्थ भी स्वाधान नहीं। अथवा इन पुरुषार्थोंमें आत्माना शान्ति भी नहीं। इसका कारण यह है कि धनानन करना स्वाधान नहीं। अनेकोंके साथ इसमें छलादि करने पड़ते हैं। काम पुरुषार्थ तो इतना निवृष्ट है कि इसके पाछे मरणकर कर लेता है।

( २८। ९। ५१ )

५ धन वह वस्तु है निम्नके विना गृहस्थका जीवन असम्भव है। धामिन् राय जा हैं उनकी रक्षा भी धनर विना नहीं। परोपकारके विना काय है, धर्मगाला, अन्न क्षेत्र, औषधालय आदि जितने काय हैं विना जनताको बहुत लाभ है, धनके विना कोई भी काय नहीं चल सकता अतः गृहस्थको धनकी आवश्यकता है। यह धन स्वयमेव तो जन्मके साथ आता नहीं, चाहे मनुष्य धनार्थके गृहम जन्म ले, चाहे राजशरमे उत्पन्न हो, चाहे ऐसे गृहम उत्पन्न न विनाके पाम कुछ भी सम्पत्ति नहीं। फिर भी जो पुरुषार्थी हैं वे नातिपूर्वक द्रव्य सम्पादन कर सकते हैं। अन्यायसे भी धनका प्राप्ति होता है किन्तु अन्यायसे जो धन आता है उसमें परिणाम मर्लान रहते हैं, उससे परोपकार नहीं देगे जाते। जैसे चोरके औषधालय, विद्यालय तथा अन्नक्षेत्र नहीं दंग जाते। स्वयं व सम्पत्तिको नहीं भोग सकते। तथा जा न्यायपूर्वक अन्न करत हैं वह उसे सुखस्थित रीतिसं उपयोगम लाते हैं, निरन्तर उम द्रव्यमें अनेक परापकारके कार्य होते हैं।

( २९। ९। ५१ )



## निमित्त और उपादान

१ लोकार्गी भावना तो उत्तम है किंतु परिणामन पदार्थने कारण कूटने मिलन पर हाता है । उपादान कारणम ही धायकी उत्पत्ति होती है । किंतु महकारी कारणने जिना उपादानका विकास असम्भव है ।

( ३ । ८ । ४० )

२ निमित्तके जिना ग्याप्तानका विकास नहा होता । यद्यपि उपादानका विकास निमित्तरूप नहीं परिणमना परन्तु निमित्तकी महकारिताने जिना संघल उपादान कायका उत्पात्क नहा ।

( १९ । ११ । ४० )

३ जा नाम हाते हैं वह हाते ही हैं, सामग्रीसे ही हात हैं । अहम्बुद्धिसे आप अपनेका सयथा कता मानते हैं यही महती अज्ञानता है । यह कौन कहता है कि निमित्त रूप कार्य हुआ परन्तु अपनेका सयथा कता मानना चाय मिद्वान्न के प्रतिकूल जाता है । घट उत्पत्ति कुम्भकारादि क निमित्तमे होता है परन्तु घट बना कहीं ? इसमो मत छोड़ दो । तत्र तुम्हारा निमित्त भी चरितार्थ है । अथवा अभावम समारभरके कुम्भकार प्रयत्न करे कया घट बन जायेगा ? मृत्तिकारके उपादानवाल यही पाठ घोपणा करते ह कि मिट्टी ही घटकी जनक है, कुम्भकार तो कुम्भकार ही है । तत्र जगतभरकी मृत्तिकारा सपह कर ला कया कुम्भकारने जिना घट बन जावगा ? अत यहा मानना पडेगा कि घटके उत्पादनम सामग्रा कारण है । कवल उपादान आर केवल निमित्त दोनो ही अपने अस्तित्वका रम्भे रहो कुद् नहीं होगा । यही पद्धति सयत्र जानना । यदि नम प्रक्रियाको स्वीकारन करामे

तब कदापि कार्यकी सत्ता न बनेगी। इस विषयमें वाद विज्ञान पर मस्तिष्कका उन्मत्त बनानेकी पद्धति है। इसी प्रकार जो भी कार्य हो उसके उपादान और निमित्तको देखा, व्यथके विज्ञानमें न पड़े।

( २३।६।५१ )

४ बहुत मनुष्योंकी धारणा हो गई है कि जन्म काग होता है तत्र निमित्त मरय उपस्थित हो जाता है। यहाँपर विचार करना चाहिए कि यदि निमित्त कुछ करता ही नहीं तब उसकी उपस्थिति की क्या आवश्यकता है? यदि कुछ आवश्यकता उसकी कागम है तब उपादान ही केवल कागका उत्पादक है ऐसे दुराग्रहसे क्या प्रयोजन? अष्टमहत्त्वाम श्रीविज्ञानन्द स्वामीने लिखा है कि "सामग्रीहि कार्यजनिका नेक कारण" कागकी उत्पादक सामग्री होती है, एव कारण नहीं।

( १७।७।५१ )

५ पदार्थके परिणामन उपादान और निमित्तकी सहकारिताम होत है परन्तु जो सहकारी कारण होने हैं उसी समय किसीको मुख्य निमित्त होते हैं तथा किसी को तुल्य निमित्त होते हैं। अतः उपादान कारणपरलोग विशेष बल देते हैं। यह ठीक है घटकी उत्पत्ति मिट्टीसे ही होगी, चाहे कुम्भकार बनाने, चाहे जुलाहा बनाने, चाहे धेरय बनाने, किन्तु निमित्त कारण अग्रय वादनीय हैं।

( १५।१०।५१ )

६ यद्यपि सभी पदार्थ अपनेमे ही परिणामन करते हैं परन्तु काग जन्म होता है तब उम त्रिकाश परिणामके लिए उपादान कारण और निमित्तकी अपेक्षा करता है। जैसे जन्म कुम्भकार ५० है उम ५१ नें " " चीवर, जल, दण्ड सूत्रको लेकर ही

निर्माणका उद्यम करता है। प्रथम तो उसने यद् विस्मय हाता है कि मैं घट बनाऊँ, उमर अनन्तर उमरे आत्मप्रदश चञ्चल हाते है जिनमे हस्तादि व्यापार होता है। हस्तर व्यापार द्वारा मृत्तिकाका आद्र करना है पश्चात् दानों हाथासे उम गृह गीली करता है, पश्चात् मिट्टीका चारने उपर रगता है, पश्चात् दण्डादि द्वारा चारको घुमाता है। इमा भ्रमणम हस्तके द्वारा मिट्टीको घटानार बनाता है। पश्चात् तत्र घट बन जाता है तत्र उसे सूतक द्वारा ग्रथकर पश्चात् अग्निम पना लेता है। यत्पर नितने व्यापार है सत्र जुद जुद है फिर भा एव दूसरम सन्तारी कारण है किन्तु तत्र घट निष्पन्न हो जाता है तत्र क्वचत मिट्टी ही उपादान कारण रह जाती है। अनन्तर तत्र घट फूट जाता है तत्र भा मिट्टी हा रहता है। नसी आशयका लेनर अष्टानक गानाम लिखा है—

“मत्तो विनिर्गत मिश्र, मध्येन च प्रशाम्यति ।

मृदि कुम्भो जले धीचि कटक कटके यथा ॥”

जा पदार्थ नहीं उदय हाता है वही मरना लय होता है। यहा कारण है कि यदा तो जगतका मृत कारण ब्रह्म मानत है। परमार्थसे देखा जाय तो आत्माकी विभाषपरिणति हा का नाम संसार है किन्तु क्वचत आत्माका ही यद् संसार नहीं हो सकता है। अतएव उद्दान मायाको स्वीकार किया है। इसका यद् भाव है कि जेवत ब्रह्म जगत्का रचयिता नहीं। तत्र जे मायाका समग मिता तभी यह संसार बन सकता है। अत्र कल्पना करा कि यदि ब्रह्म सर्वथा शुद्ध था तत्र मायाका समग कैसे हुआ? शुद्ध निहार हाता नहीं अतएव मानना पडेगा कि यह मायाका सम्प्रथ अनादिमे है। यद्पर यह शङ्का हो सकता है कि अनादिमे सम्प्रथ है तो छूटे कैसे? उनका उत्तर सरता है कि धीचसे अङ्कुर हाता है। यदि धीच

दग्ध हो जाये तो अङ्कुरोत्पत्ति नहीं हो सकती। यही माया भयका  
वीन है। जब वास्तव्य तत्त्वज्ञान हो जाता है तब वह समाप्त  
कारण जो भ्रमज्ञान है वह आपसे श्राप पयायांतर हो जाता है।

( ९, १०।१२।५१ )

७ बहुतसे मनुष्योंका यह धारणा हो गई है कि निमित्त  
कारण इतना प्रबल नहीं जितना उपादान होता है। यह महता  
भ्रांति है। कागरी उत्पत्ति न तो केवल उपादानमे होनी है और  
न केवल निमित्तमे किंतु उपादान और सहकारी कारणके योगसे  
काय उत्पन्न होता है। यद्यपि काग उपादानमे ही होता है परंतु  
निमित्तका महत्कारिता बिना उदापि काय नहीं हाता। जैसे कुम्भ  
मिट्टीसे हा होता है परंतु हुतानरूप निमित्त बिना काय नहीं हाता।

( २०।१२।५१ )

## स्वोपकार और परोपकार

१ 'हमसे परोपकार होता है' यह धारणा गलत है। हरण  
काय अपनी योग्यतासे होता है और योग्यताका विकास निमित्त  
कारणसे हाता है परंतु निमित्तका निमित्त ही मानो, हमसे  
अधिर नहीं।

( १२।१।४७ )

२ ससारम मनुष्योंका ऋष्टि स्वाभोपकारकी आर रहनी  
चाहिए उमसे ससारका उपकार हा जाये यह अथ्य बात है।

( ४।३।४७ )

३ कोई निमीका उपकार और अनुपकार करनेवाता नहीं।  
आत्माय परिणाम ही उपकार और अनुपकारके करनेवात है। हम

जगतका व्यवस्था करनेवाला ही आत्मा है। नरक मरगादि सब आमपरिणामों का फल हैं, मोक्ष भी आमपरिणामों की परम परिणतिसे हाता है।

४ जगतके उपकारकी चेष्टा करना प्रायः व्यर्थ है। आत्मोपकारकी भावनाम प्रायः जगतका उपकार हो जाता है। जगतके उपकारमें आत्माका उपकार नहीं हो सकता, केवल कल्पना है। उपकार उपकारकी कल्पना मोहाधीन है।

( ३१।७।४८ )

## सत्समागम

१ सत्समागमका पारर मनुष्यमें मानवता आ जाती है। हम उचित है कि वृद्ध मनुष्यकी सेवा कर। उसके द्वारा हम उच्चतम विचारको प्राप्त कर सकते हैं। सपुरुषता अर्थ है कि जो ज्ञान चारित्रसे भूषित हों। जर्दीको वृद्ध शब्दसे व्यवहार करते हैं। निनके बाल शुक्ल हो गये, दाँत भग्न हो गये, मीरा बुटिला हो गई, वण श्रवण करनेमें असमर्थ हैं, उनका नाम वृद्ध नहीं। निनको उभय लोका सिद्ध करना है, तथा विद्या विनयकी आशिक्षा है, उन्हें उचित है कि वृद्ध मानवकी सेवामें तत्पर रहें। जो मनुष्य वृद्ध सेवामें अपना समय लगाते हैं उनकी रागादिके भाव कपायाग्नि शांत हो जाती है। वृद्ध मनुष्योंके समागमसे दुष्टसे दुष्ट भी मनुष्य शांत हो जाता है। अत्यंत मर्त्यास चित्त भी वृद्ध योगियोंके सहवाससे निमल हो जाता है। अगस्त्य तारके उच्य होनेपर जलका पक भाग बैठ जाता है।

“तप श्रुतिधृतिध्यानविवेकयमसयमं ।

ये वृद्धास्ते शस्यन्ते न पुन पालिताङ्कुरैः ॥

प्रत्यामत्ति समायातै विषयैः स्वात्तर्जकैः ।

न धैर्यं स्वलित येषां ते हि बृद्धा युधैर्मताः ॥

इन गुणोंसे त्रिभूषित बृद्ध कहलाते हैं। स्वप्नमें भी जिनके चारित्रिकी उज्वलता है, तथा यौवन अवस्थाम भी जिनके सच्चा रित्रम दोष नहीं आया वही आत्मा बृद्ध है।

सत्रसे उत्तम तो यही है कि दिग्गन्धर महापुरुषोंका समागम अन्ध्रा है। उन दिग्गन्धर मुनियोंका समागम उत्तम है जो ब्राह्म आत्मन्धरसे शून्य है। परन्तु आनन्दल मुनिमाग भी परिग्रहको अपनाने लगा है। किसीना तो पुस्तक छपानेका रोग लग गया है। किमीको मोटर आदि बाह्य सामग्रीका आश्रय लेकर ताथयात्रा करनेकी प्रवृत्ति हो गई है और कोई गृहस्था पर अपना अधिकार चला कर सामाजिक कार्योंमें लगे रहते हैं। अतः उनके समागममें भा शांतिका मार्ग नहीं। लाचार होकर उनके समागममें रहनेसे भय होता है। अतः उनके वाक् तुच्छक ऐलक वर्ग रह जाता है सो भी प्रवृत्तिसे अनुकूल नहीं। तिमके जो मनम आता है सो प्रवृत्ति करता है। विद्या का व्यसन नहीं, स्वाध्याय भी कई करते हैं कई विषेष विद्वान् भा हैं तथा प्रतिभाशास्त्री भी हैं किन्तु ज्ञानका उपयोग स्पेच्छापूर्वक करते हैं। हमने भी अपने प्राप्त ज्ञानका कुछ उपयोग नहीं किया।

( २६ । ८ । ५१ )

## पुण्यात्मा पापात्मा

१ पुण्यसे मनुष्यको बाह्य पदार्थका मिलना कोई उपयोगी वस्तु नहीं। किन्तु शुभ परिणामका फल हो तो पुण्य है। शुभ परिणामोंसे घातिया कर्मणि स्थित और अनुभाग भेद पढता है।

तत्र उमरा उदय आना है उम कालम जापने मन्त्रपाय होती।  
 मन्त्रपायम जीपने परिणाम पून करना, स्वाध्याय करना,  
 पालना, जापना उपकार करना, हात है। यदि उमर परिण  
 परिग्रहम अत्यंत आमक्त हा तत्र यह घातियाने तात्र उदय  
 पाय है। तीत्र पापत्र परिणाममे घातिया कमरी स्थिति  
 अनुभाग बहुत बना होता है। अत निन नीयों बहुत परि  
 होनपर यदि उम समय परिग्रहम विनाय मूद्धा है तत्र यह उ  
 वर्तमानम पुण्यात्मा नहीं। किसी जीपने परिग्रह अल्प है  
 उमने परिणाम निमल रहते हैं, मन्त्र कपायरूप रहत है तत्र  
 नीय वर्तमानम पुण्य जाय है। सिद्धानम ता निम जीपने वा  
 अशुभात्र भी जात्र परिग्रह नया तथा अतनी मन्त्र कपाय है नि  
 राह उमरा शस्त्रासे भी पीडा पहुँचाय ता भी यह उम पीडा  
 चानयात्रपर कायादि भाय नहा करना और यदि जात्र पारि  
 पुण्यास उमरा अचन कर रहा है ता भी उम का मन्त्र दान  
 समता भाय है त्रिनु यदि उसका मिथ्यात्व नहीं गया है तत्र  
 पापी जात्र कदा है और निमने जगतका बहुत वैभय है त्रि  
 हानेपर भी अपनी रक्षाके अर्थ विराधी निमा भा करता है, रा  
 त्रि त्रिभूति भी है परन्तु सम्यग्दर्शन हा गया है  
 उसे पुण्य जात्र कदा है। यदापर मन्त्र कपाय और नात्र कपा  
 प्रयाचन नहीं। निसरा आत्मास मिथ्यादर्शन निजा गया,  
 परित्र आत्मा अन्त है। चाह वाह्य त्रिभूति अमर्यादित हा य  
 हो और निमने सम्यग्दर्शन नहीं हुआ उम जात्र त्रिभूतुपमा  
 परिग्रह न हो उमरा 'पुण्य जीप' शब्दमे व्यक्त करना घौ  
 रिह है। जा पश्च पापहर्त्र भा प्रमत्तयागने मद्गात्रम है। परम  
 हिंसक मिथ्यादृष्टि है। चाह उमर द्वारा जापना घाननहा।

समता यह अन्यको क्या ममभेदा ? अतएव अज्ञाना जीव न तो पुण्यका स्वरूप जानता है और न पाप का । पुण्य पाप करता है परन्तु स्वरूपको नहीं जानता । यथा—

“कुशलाकुशल कर्म परलोकश्च क्वचन ।  
एकान्तप्रहरक्तेषु नाथ ! स्वपरत्रैरिषु ॥”

श्री समतभद्र स्वामीने कहा है हे नाथ । जो एकांत महिम आसक्त है उनके न तो कुशल पुण्यका ही स्वरूप बनता है, और न पापका हा स्वरूप बनता है और न परलोक आदिका स्वरूप ही बनता है । वस्तु स्वरूपकी व्यवस्था तो स्वाभाव मित्वा तसे ही होती है ।

( ८, ९। ८। ५१ )

## समता

“मोहप्रह्विमपाकर्तुं स्त्रीमर्तुं मयमश्रिय ।  
छेतु रागद्रुमोद्यान समत्वमवन्म्वताम् ॥”

( ज्ञानाण्ड )

यदि मोहाग्निसे दूर करना चाहते हो, तथा मयम रूपी लक्ष्मीसे स्त्रीभार करनेकी अभिनाया है तथा रागवृक्षको छेदन करनेकी बाछा है तो ममत्वका अवलम्बन करा । समत्व किसको कहते हैं ? इसका विवरण श्री १०८ रुद्रमुक्ता स्वामीने प्रवचन सारम लिखा है—

“चारित्त खलु धम्मो वम्मो जो सो ममो त्ति णिदिट्ठो ।  
मोहक्खोहनिहीणो परिणामो अप्पणो हि समो ॥”



अथात् चारित्र ही धर्म है। स्वरूपम जो आचरना नाम चारित्र है। यह ही वस्तु स्वभाव होनेसे धर्म व उसका अर्थ यह है कि शुद्ध चेतनका प्रकाश जहाँ होता नाम धर्म है, उसीका नाम मान्य है। उसमें यथाथ है। अथात् दर्शनमाह और चारित्रमोहके उदयमें आत्मक्षोभ होता है, उसमें अभानम आत्माका जा अत्यन्त परिणाम होता है इसीका नाम चारित्र है, इसीका नाम है। ऐसा सिद्धांत है कि—

“परिणमदि जेण दव्व तक्काल तम्मय त्ति प  
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो सुणेपव्व

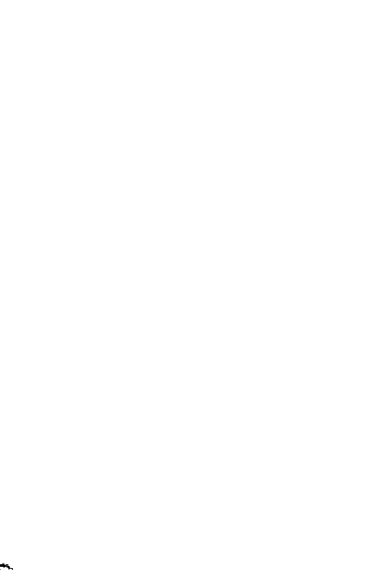
( ४ )

## निरीहता

१ निना निरीह वृत्तिने कपाय वृत्ता होना  
वर्ण है। अतएवम चाहदाह महती कष्टदाया  
बाहको त्यागो।



संसारके कारण



## संसारके कारण

१ जा परको अपना मानता है वह निजका भूलता है। निजको भूलता ही संसार बंधनकी जड़ है। संसार ही नाना दुःखाका आस्पद है। अतः ता चेतो !

( २।६।४७ )

२ बहुत काल परकी सगति की, पर कौनमा लाभ उठाया ? अनन संसार ही के पात्र तो रहे ।

( २८।७।४७ )

३ परकी प्रशंसा और निन्दासे सुख और दुःख मानना ही संसारका कारण है। वान कहना और है कार्य दुःख और है।

( ९।५।४८ )

४ संसारका कारण सुख दुःखका अनुभव नहीं वरु जो कम विपाकान्त्य फल है। जो राग द्वेष आत्मान होता है वही संसार बन्धी जड़ है।

( १०।१०।४८ )

५ कथाके रसिज मनुष्योंसे सपर्क रहना ही संसार बंधनका मूल कारण है।

( २८।१२।४८ )

६ आन तक जो हम संसारमे भ्रमण कर रहे हैं उसका कारण है कि अपना परिचय नहीं किया। अपने परिचयका प्राप्त करनेके लिए उन्हें बाधक कारणको निरन्तर ग्योना। यही महना अज्ञानता हम संसार बन्धनमे फँसाये है। जिस दिन हमारा अज्ञानभाव चला जायगा उसी दिन हम संसार बंधनसे विमुक्त हो जायेंगे। संसार

नाम मंसरणरा है । जिसमें ये जाय चतुर्गति परिध्रमणरर अ  
लशके पात्र होते हैं । इसमें मृत कारण अय दुश्च नहीं, आ  
परिणतिरौ स्वच्छ न बनाना ही है । स्वच्छतास तात्पर्य य  
चित्तने पर द्रव्य है उनमें निरन्तर भावनी कल्पनाया त्याग कर

( २१८१ )

७ इस मसार अरण्यम अनादिने यह आत्मा भक्त रह  
समा मूल कारण परम दृष्टि है । जय तर पर दृष्टि रहत  
नरतर यह आत्मा पक्षपात करता है । अन्यरौ कथा छे  
मगानरके नाना स्वरूपरौ कल्पना करता है ।

( २१९० )

## कपाय

१ सत्मा अपनी अपनी कपायरी पूति करनरा वर  
है । मसारम विरला हा हागा जो इस वरमे मुक्त  
कपाय वर हा महान वर है । इसका भूत तय सत्तर होता ।  
अच्छे अच्छे ज्ञानी चक्रम आ जाते हैं । मरसे प्रमल यही  
वर है । मरे वगम यह जीव निरन्तर बेहोश रहता है  
वेदार्शाम आत्मान अस्तित्वरौ परम मान बैठता है ।

( १०१९१ )

२ जहाँ कपायसे अनुरक्षित परिणाम है उहाँ नियमसे  
है । निह तत्र विमुक्तिरौ आमाना है यह धनम अनुराग  
रखते । अनुराग ही मसार कधनरा कारण है ।

( २५१९१ )

३ मकोच कपायसे प्राणारा भाव पतित हा जाना है,  
रक्षा करना । 'कीन किसका है इम सिद्धान्तपर हट रहना ।

( २५१७१ )

४ आत्मीय परिणतिवो कल्पित मत होने दा । परिणामोंने कल्पित हानेम अतरङ्ग कारण मोह राग द्वय है, वाङ्मय कारण पञ्चन्द्रिय के विषय हैं । विषय निमित्त कारण हैं परन्तु एसा व्याप्ति नहा कि विषय परिणतिवो कल्पित कर ही देखें । विषय ता इन्द्रियोंने द्वारा जाने जाते हैं उनम वा इष्टानिष्ट कल्पना होता है यह कपायसे हा होनी है । कपाय क्या है ? जो आत्माना कल्पित करता है । यह स्वयं होती है । आत्मान इसका परिणमन अनादिसे चला आ रहा है । हम निरंतर प्रयत्न करते हैं कि आत्मानें स्वच्छ परिणाम हों परन्तु न जाने कौनसी शक्ति आत्मान है कि निमने कारण अनिष्ट मारी भाव आत्मान स्वयमेव चने आते हैं । हमसे यहां निश्चय हाता है कि आत्मान अनादिमे ऐसे। सस्कार आ रहे हैं जा निरंतर ही उसमे आत्म वेदनाओंका पात्र बनना पड़ता है ।

( २० । ४ । ५१ )

५. चित्तको जाननेकी चेष्टा करो । निमने प्रथमे कार्य कर रहा है ? पर पदाथ चित्तका अपनेअधीन नहा रग्य सप्रता । हमका कायम मचालन करानेकी शक्ति आत्मान है, उस शक्तिका नाम ही कपाय है । कपायके द्वारा ही मत्र काय जगतके होते हैं । वा परदया उप कार आदि कार्य होते हैं यद् भी मद् कपायके कार्य हैं । अथ जो मारन ताडन विषयादि काय हैं ये मत्र अशुभ कपायक कार्य हैं । यह दोनों ही कार्य बंधने बता हैं । अत एव अच्छा एव सुरा है यह व्यवहार परमार्थ दृष्टिवाला नहीं करता । शुभ कार्यके करनेका नियेव नहा परन्तु उसे ब्रह्मा जनक सममा । यद्यपि आत्मा ज्ञाता दृष्टा है परन्तु कर्म मलके सम्प्रथसे सप्रदा यह रुद्ध न रुद्ध करता ही रहता है और उस क्तव्यका एव भोगता हुआ चतुर्गतिका पात्र बना रहता है । इसमें किसीका अपराध नहीं । क्या करें जत्र मद्यका नशा आता है तत्र मनुष्यके अयोग्य आचरण हाता ही है ।

इसी तरह कर्म विपाकम इसी जा दशा होती है वह इससे नहीं। यदि यह जीव पुन्यार्थ करे तब बुद्धि काय बननेकी संभावना है। जिस कालम नशा उतर जाता है उस कालम नशाने काय चिंतन करे तब अधिकांशम उनसे मुक्त हो सकता है।

( ४। ६। ५ )

६ क्रोधादिक जा उत्पन्न होत हैं वह औपाधिक हैं। उनसे ही आत्मा क्लृपित हो जाता है। क्लृपिताने कारण अंतरङ्गमें अत्यंत दुःखी होता है। और उस दुःखका दूर करनेके अर्थ क्रोध कषा कायम प्रवृत्ति करना है। जैसे क्रोधम किसीका मारता है। यद्यपि उमम आपसो दुःख भी लाभ नहीं परंतु जयतर वह काय क्लृपित तबतक शांत नडा हाता। क्रोधसे दूर होनेपर स्वयं शांत हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि दुःखका मूल कारण क्रोध है। हम परको दुःखका कारण मानते हैं यही महता अज्ञानता है।

( २९। १२। ५ )

## आगप्रझारे-अहङ्कार

१ समारना मयमे प्रजा कारण अहम्बुद्धि और मानबुद्धि इस जीवका यह अहङ्कार अनादिसे लगा हुआ है कि 'मैं एक निराली व्यक्ति हूँ मर ममत्त्व अथ सत्र तुच्छ है। यह मानना कि अज्ञानपूर्ण है ? यह नहीं सारता कि मैं जीव हूँ, तब मर जो हात है यदि वे वास्तव में तब चितने जीव हैं उनमें यही मर होंगे। तब फिर निव और अथम क्या अंतर हुआ ? भेद ज्ञान कारण लक्षण मय जीवोंम पाया जाना चाहिये। तब हम सत्र मर हैं अतः साम्यभाष ही सुखदायी हुआ। यदि अपनम ज्ञानविहीन है और वीनरागभाव है, अथमे नहीं है, तब यह विचार क

आवश्यक है कि हम और यह दानो जीव हैं, हमम जो गुण विकास हुआ वह इसमें भी हो सकता है। केवल पाई प्रतिबंध है जा इस जीवम अतक नहीं होने देता। अतमें यदि अपनेम पुरुषार्थ है तो हमको सम्बोध कर उस गुणम विकास करनेम प्रयत्न करना उचित है। प्रत्येक आत्माम गुण विकास हो सकता है किंतु उसके विकासम बाधक जय नहीं हम स्वय ही हैं।

एक मनुष्य प्रमादमे मागम जा रहा था, एक पत्थरकी टोकर लगनेमे वह भूमिपर गिर पड़ा। एकदम साथीसे कहा—'हथौड़ा लाकर इस पत्थरको चूण कर दो, इससे टकराकर हम भूमिपर गिर पडे और हमारा बहुत चोट लगा। यह इस पत्थरका अपराध है।'

साथीने उत्तर दिया—'श्रीमान्। इसम पत्थरका क्या अपराध है? वह स्वयं तो उड़ल कर आपके पैरमें लगा नहीं। आप स्वयं प्रमादम चलते थे, इससे इसकी चोट लगा, यह आपने ही प्रमाद का फल है। अत आपको उचित है कि मागम जय गमन करें, दग्वकर हा कर, प्रमादको त्याग, यद्वा आपका निमित्त अभीष्ट स्वभावतः जायेगा।'

इसी तरह हम स्वयं काधानि कपाय कर अपने आ माको समार बाधनम डालते हैं। हमको उचित यही है कि काधानि कपाय न करें। तिनके निमित्तसे क्रोधादि कपायका उद्भव हाता है उन पदार्थाम द्वेष करनेकी आवश्यकता नहीं परंतु माही जीव आत्मीय अपराधको तो दूर करनेकी चेष्टा करता नहीं जिनमे क्रोधादि कपाय हाते हैं। हम उन निमित्त कारणोंको पृथक् करनेका प्रयत्न करते हैं जो क्रोधमें निमित्त होते हैं। निमित्त भी दो प्रकार के हैं। पर तो वे जो हम प्रत्यक्ष हो रहे हैं, दूसरे वे जो प्रत्यक्ष नहीं होते, तिनको द्रव्य क्रोध कहते हैं। उनमें चार भेद हैं—अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, और सञ्चलन। इनका



यहाँ घणन नहीं करना है। क्रोधका उपादान कारण आत्मा ही है। आत्मामें अनन्त गुण हैं। उनमें एक चारित्र नामक गुण भी है, यही गुण क्रोध, मान, माया और लोभ रूप परिणमता है। जय इम जीवके क्रोध कपायना उदय हाता है उम कालम यह आत्मा काय रूप परिणमता है। उससे परका अनिष्ट करनेका भाव हाता है। परके ऊपर तीव्र कपाय होती है, उसे नानाप्रकारके कष्ट दता है, गाली आदि दुबचनोंकी चेष्टा करता है, अस्त्रादिसे उसे मारनेका भाव करता है तथा अस्त्रादिवा कारणमे प्रयोग करता है। यद्यपि अस्त्रादिसे उसका अन्न भङ्ग करनेकी चेष्टा करता है, मनम निरन्तर उस जीवके अनिष्ट ममागम हो यही चिन्तन करता है परन्तु यदि उमका कोई भी अङ्ग विद्वान न हुआ तब स्वयं अस्त्रादिसे अपना ही घात कर लेता है। सभी प्रकार मान कपायके उदयम अयको लघु दिखानेका प्रयत्न करता है, अन्यके प्रशस्त विद्यमान गुणोंम भी दूषण लगानेका प्रयत्न करता है।

( २१ । १० । ५१ )

## माया

१ आनन्दका अर्थ है सरल होना। सभी मनुष्य अपनेको सरल मानते हैं परन्तु वाय इसके विपरीत ही करते हैं। निरन्तर कपट व्यवहारसे आत्मानी वञ्चित करते रहते हैं। यदि कोई मनुष्य यह चाहता है कि मैं मायाचारमे वर्जित रहूँ तब उसे पर पदार्थमि आमभावना त्याग देना चाहिये। परका आत्माय मानना ही मय पापोंकी जड़ है। उस पदार्थ रक्षाके लिये हा हम सब अनर्थ करने पड़ते हैं। ससारम वा ही प्रकारके पदार्थ हैं एव ता चेतन और दूसरे अचेतन। यदि इनके स्वरूपका विचार किया जावे तब

सब पदार्थ अपने अपने द्रव्यादि चतुष्टयमें लीन हैं, कोई पदार्थ किसी पदार्थके साथ नहीं मिलता। हम अज्ञानी लोग कत्यूय बुद्धिके द्वारा जगत्के स्रष्टा बनना चाहते हैं। यही हमारी महता अनानता है, इसे हटाओ। सभी पदार्थ सत्ता सामायकी अपथा समान हैं उनसे क्या स्नेह किया जावे ? विशपना अपेक्षा विचार किया जावे तब सब जीव चेतन गुणकी अपेक्षा समान हैं। इनसे भी क्या सम्बन्ध किया जावे ? क्योंकि सब अपने अपने स्वरूपम रत हैं।

( ७ । ९ । ५१ )

## राजरोग राग

१ गल्पनादसे यथार्थ पदायना निणय होना मुसाध्य नहीं। प्रनिदिन शास्त्र प्रवचनम यह निरलता है कि रागादिव ही आत्माके गुण विकाशमे बाधक हैं। मैंने साठ वर्ष तक प्रयास किया परन्तु इस पर विजय प्राप्त न कर सका। वहनेसे करनम महान् अ-तर है। सभी कहते हैं कि रागादिक परम दुःखके कारण हैं गीत पाठ पढ लेते हैं परन्तु कतव्य पथसे प्राय वञ्चित रहते हैं।

( २ । ९ । ४७ )

० ज्ञानसे अज्ञाननिवृत्ति होती है किन्तु एतायना जा जो ज्ञानातरभाविनी चारित्रकी प्राप्ति है उसका कारण रागद्वेषकी निवृत्ति है। अनादि कालसे यह सम्बन्ध है। शरारके सम्बन्धसे रागद्वेष है यह बुद्ध बुद्धिम नहीं थाता क्योंकि रागद्वेषकी उत्पत्ति आत्मामें होती है और शरीर जड़ है। उसकी शक्ति एसी नहीं जो आत्मामें राग द्वेष उत्पन्न करनेमें प्रयत्न प्रक हो। यदि कर्मको

कारण क्या चाहे तब वह भी अचेतन है अतः आत्मा रागादिका उपादान कैसे हो सकता है ? और रागादिक भाव होना है यह तो निश्चय है । यदि ये आत्माके स्वभाव माने जायें तब आत्मा का भाव प्रयत्न करना है यह जय्य हो जाय । बुद्धि बुद्धिम नहीं आता है । अतः यही मनाप कर लेना पड़ता है कि चा रागादिक भाव है तदात् अयथ है इसीलिए आत्मा उपादान कारण आत्मा है निमित्त कारण राग होना चाहिये । जैसे स्वप्न उपादान कारण तो रागादि रूप नहीं परिणमता किन्तु रागादि भावपत्र का उपादान है उसी निमित्तमे रागादिरूप परिणम जाता है ।

( १० । ४ । ५१ )

३ सुमाग तो यही है कि मयमे स्मृत्त्यागा । यही धन्यता माना है । परसे माग एक्य भावता ही मसारफी ताव है । यही परम निच यही परिणति हो जाता है यही अनायाम राग द्वरफी मत्तति होना रहता है । निमरो हम निच मानत हैं ममरा अपने अनुकूल रगनेरा प्रयत्न करत हैं और यही व्यपगा आत्माका निरंतर विचर रगती है । इसी परिणतिरा नाम संसार है । बहुतसे ध्यति इश्यमान रगतरो संसार माने हैं, उमने अपनी परिणति हटानफी चेष्टा करत हैं मा बुद्ध बुद्धिम नहीं आता । आत्मामे भिन्न वितने पत्तय हैं वह तो भिन्न ही हैं उनरा त्यागने की आवश्यकता नहीं किन्तु काम विनत्यकी धन्यता हाती है, उसे घटाओ, यही परिणति संसारफी जनती है ।

( २४ । ४ । ५१ )

४ राग परिणाम संसारका कारण है चाहे यह शुभ हो, चाहे अशुभ हो । यदि चाहे चरनरा हो, चाहे नीमरी हो, दाना ही जतायेगी ।

( २५ । ४ । ५१ )

५ 'संसाररुधनका मूल कारण राग द्वेष है। इस पर विनय प्राप्त करना चाहिये' यह व्याख्यान ता प्रत्येक देता है तथा नरक पूण वाक्यांसे अपने व्याख्यान द्वारा जनताका मन्त्रमुग्ध कर देता है, स्वयं भी तमय हो जाता है परन्तु उत्तरकालम गन्तमानका ही क्रिया करता है। न जाने केवल व्याख्यानसे क्या लाभ? यदि उमर अमल न क्रिया जान तब इस प्रकारकी चेष्टा कुछ लाभदायक नहीं।

( २० । ८ । ५१ )

६ समास्या जो अस्तित्व है यह जीवके रागादि परिणामा से होता है। नरक निमित्तका पापक न कामण यगणाँ जीवके प्रत्येक प्रदेशमें हैं न ज्ञानावरणादि स्वरूप परिणमता हैं। उनका उदय शरीरादि नोक्तम और रागादि परिणामाकारण रूप होता है। संसारम एसा एव भी समय नहीं जिसम आत्माने रागादिक परिणाम न हा।

( २३ । ९ । ५१ )

७ 'प्राणामात्रका न्यून्यण राग त्यागनेमें है। त्यागकी मर्दिमा का गान करत हैं किन्तु रागत्यागकी और अणुमात्र भी लक्ष्य नहीं। पञ्च परम गुणकी उपासना इस अभिप्रायका पुष्ट करनेकी थी कि राग न्यून हो किन्तु जमकी और ता लक्ष्य हा नहीं। केवल पूजन प्रभावना कर रागवद्धन ही हाथ रह जाता है। इसीम पूण पुण्यार्थ लगा दत हैं।

( २८ । ९ । ५१ )

८ राग-द्वेषके बशीभूत होकर मनुष्य को कुछ न करे सो अल्प है। आगमम लिखा है कि रावणने एव सीताक रागम अपन प्रति नारायण पदको तिलाञ्जलि द दी। जिस समय रावणने लक्ष्मणपर चक्र चलाया और चक्र लक्ष्मणके हाथम

आया उम समय श्री रामचन्द्रजी ने रावणसे कहा कि हमको न ता तुम्हारा राज्य चाहिये और न चक्र चाहिये, हमारी सीता हमको दे दो, वनम किसी बुढियामे रहकर अपना निवाह करेंगे, तुम मान-अधचत्री पदना उपभोग करो किन्तु रावण इन वाक्याना श्रवणपर आग बनूला हा गया और बोला कि तुम्हारे चक्रना पाकर इतना गद मत करो। इतना श्रवणपर लक्ष्मणने जा करना था सो किया। अत इसमे यह सिद्धात निरूना कि क्षपायने वशीभूत हार जीर्णानी जो दशा हाता है यह प्राय प्राणी मात्र प्रत्यक्ष है। विशेष आर्य यह कि हम लागान मसारको उपदेश देना मात्रा है, मय रागद्वेष दूर करनेना प्रत्यक्ष नहीं करते। रागद्वेष त्यागने लिये लम्ब लम्ब व्याख्यान देते हैं। दूसरे श्रवणपर मोहित हो जात है और प्रशंसावादना बहुत बुद्ध आश्चर्य हाता है। किन्तु जल पिलातानेमे सन्श ही यह कार्य होता है। अत यह मसार बधनसे मुक्त होना है जे सत्र कार्योंको गौणकर रागद्वेष त्यागना चेष्टा करना ही अपना कतव्य समझो।

( १८ । ११ । ५१ )

## स्नेह

१ स्नेह ऐसा प्रबल परिणाम है जा इस अनन्त समारकी रक्षा कर रहा है। यदि यह मिट जाय तब अतर्मुदूर्तम इस संसार का ध्वश हा जाता है। अत जिहें इस संसारका अभाव करना है व स्नेह त्यागो।

( ४ । ७ । ४८ )

२ संसारम प्रथमा कारण स्नेह ही तो है। उसने वशीभूत होकर यह जीव क्या क्या अनर्थ नहीं करता? सत्र अनर्थाती

जड़ यही स्नेह तो है जिसने इस पर विनय पा ली उसने जगपर विनय पा ली ।

( ५ । ७ । ४८ )

३ जहाँपर रहो वहीं समुदायसे स्नेह हो जाता है तथा व्यक्ति विशेषसे भा स्नेह हो जाता है । यह स्नेह ही ससारका कारण है । इमे लोग धार्मिक स्नेह कहते हैं । पयवसान में इसका फल उत्तम नहीं । जहाँ श्री अर्हदनुरागको चन्दन नग सद्गत अग्नि-की तरह दाहोत्पादक कहा है वहाँ अन्य स्नेहकी कथानी गिनती ही क्या है ? अत सामान्य मनुष्यसे स्नेह करना ता सर्वथा ही हेय है । यदि स्नेह करनेकी प्रवृत्ति पड़ गई हो तब चेतनमे स्नेह हटाकर अचेतनमे करो या एम चेतनसे करो जो स्नेही न हो । इससे यह सिद्ध होता है कि एक ही का उपाय करना पड़ेगा अथात् एकी ही चिन्ता रहेगी अन्य चिन्ता न रहेगी । अपना मोह ही त्यागनेकी चिन्ता रहेगी । वह भी निराश्रय होकर स्वयमेव विलय जावंगा ।

( ७ । ६ । ५१ )

४ परमात्मसे स्नेह बन्धन ही का कारण है ।

( २० । ६ । ५१ )

५ अनादिमे यह आत्मा पर पदार्थासे मिलकर अपने स्वत्वना गी बैठा है । यह स्वत्व विना त्यागो नहीं मिल सकता । त्यागका अर्थ यह है कि परको जो स्नेह साथ अपना रहे हो उस स्नेहको त्यागो । स्नेहका त्याग क्या है ? स्नेहम राग न करा, वह स्वयं राग है । तब क्या द्वेष करें ॥ द्वेष भी न करें । तब, क्या करे ? उपेक्षा करो । यही तुममे हो सकता है । रागम उपेक्षा कैसी ? इसका अर्थ यह है कि राग आत्माकी आत्मकृत विभाज शक्तिके मद्भागम माहके द्वारा प्रीतिरूप परिणति है । इसने उदयमें पर-

घर्षी-वाणी

पदार्थों का यह प्रीतिरूप परिणाममें अपनाता है, यही संसृ-  
जनक है। उसमें लक्ष्मी बना अनुभवगम्य ही है। प्राण  
अनन्तगुण है, प्रत्येक गुणका परिणाम प्रकृत्य है।

(१०।१।१)

६ ससारम यधनरा मृत कारण स्नेह है, निम्न  
त्रितय प्राप्त की उमन ममारना पार विया। प्रतिदिन हम पया  
य करते हैं कि इस त्यागना चाहिये, इमीका आताप प  
परतु यह आनापमात्र हा है।

(२०।१।१)

७ ससारम प्राणीमात्रक स्निग्ध परिणाम हात है। नि  
प्राणा हैं प्राय परना निन मान अपनात है। सयम प्रथम  
शरीरका निन मानना इस ससारीका मृत कतय है। नर्ण श  
निन कल्पना हुइ यदा शरीरकी अधस्थाआम निमापर राग, नि  
पर ह्यप या किमीपर उपेक्षा हा जानी है। जैसे नय अमाता  
नीयना नदय होता है तय बुमुक्षा न्यपन्न हाती है, उमय  
करनेका प्रयत्न करता है। निमस यह दूर होती है उस प  
रवाभाविन प्रेम हो जाता है।

(१।१।१)

८ न जाने ससारम स्नेह विनयी यही कला है नि  
अधीन होकर प्राणा परका प्रमहदृष्टिसे देखने लगता है।  
देखता ही नहीं अपनाता भी चान्ता है। यद्यपि यह अपन  
अभिप्राय मिथ्या है। कोई पथाय निमीग नहीं होना। निनने  
जगतम हैं सय अपनी सत्ताका लिय हुण भिन्न-भिन्न हैं। जैसे  
और अनीय दो ही पदाथ मूल है। उनम चेतना लक्षणवाता  
है। निमस चेतना न पायी जाये यह अनीय है। अनीय  
पांच है--पदगल धम अधर्म आराश और वात।

रूप-रस गन्ध स्पर्श पाये जायें उमे पुद्गल द्रव्य कहते हैं । न पुद्गल द्रव्य तिनका पुनःप्रभाग न हा मने परमाणु हैं । ये अनन्तानन्त हैं । तिनने परिमाणम परिमाणु ह् उनने ही रहेंगे । उनमें न एक् कम हा मरता है और न एक् वृद्धिरूप हो मरता है । उनम एक प्रिभाय नामक शक्ति है तिससे व शब्द-बन्ध-सौरम स्थूल आदि रूप परिणमनका प्राप्त हा जाने हैं । चन्दनेम सहकारी धम, स्थिरनामे महकारा अधम, श्रवकाशदाता आनारा और परिणमनम सहकारी काल द्रव्य है । ये चारा द्रव्य सजदा शुद्ध ही परिणमन करते हैं । इनम धिभाव शक्ति नहीं । जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं । इनम भी प्रिभाय परिणमन शक्ति है । मात्मादि उमान प्रिपाक वादम रागात्त्रिरूप परिणमनका प्राप्त हो जाते हैं । तिनतु फिर भी तिनने जाव हें वे परस्पर भिन्न भिन्न ही रहत हें । ममीका मत्ता भिन्न भिन्न है । जहाँ एक् शरीरम अनन्तानन्त निगोदिया जीव रहते हें, एक् श्वासम अठारहवार मरते तथा जन्मते हें, फिर भी उनसी सत्ता पृथक् पृथक् है । जीव तो परस्परम भिन्न हें किन्तु एक् द्रव्यम तिनने गुण हैं उनका स्वरूप भी भिन्न भिन्न है । जैसे पुद्गल द्रव्य स्पर्श-रस-गन्ध-स्पर्शात्त्राला है फिर भी स्पशादि गुण भिन्न भिन्न हें । एक् आत्माने जो सम्यग्गणन गुण है वह भिन्न है, ज्ञान गुण भिन्न है । ज्ञान गुणसे छोड़कर शेष सब गुण निरुक्त-व्यप ह ।

( १२ । ११ । ५१ )

## मोह महाभट

१ ससारकी प्रक्रियाओंका देख माही जीव नाना धन्प नाएँ करता है । होनेवाले कार्यामो कोई परमेश्वरकी इच्छा से, नाड



कर्मने उदयसे, तो कोई भवितव्यतामे होना मानता है परन्तु यह निविराद सिद्ध है कि जन्मन माहका सद्भाव है तबतक आत्मा दुर्गोका पात्र है। जन्म तब माहरी तदर है तबतक संसार है। जन्मक संसार है तबतक आकुलता है। आकुलता हा दुर्ग है और प्रत्यक गनुष्य दुःखसे छूटना चाहता है। छूटनरा उपाय सत्यब्रह्म है। सत्यब्रह्मने विना न ता सम्यग्ज्ञानरी उपनिदाना है और न सम्यग्चरित्रा ही। और तबतक सम्यग्चरित्ररी उपति नहीं होता तबतक माह नरा।

( ३० । १ । ४७ )

२ यास्तत्रम आत्माना काय ता जानना और दग्गा ही है। कायने वितने काय है व आत्माने सम्भायी नहीं फिर भी जीवों को माहके सद्भावमे सभी काय करन पड़ते हैं। कौन चाहता है कि मुझे भूख लगे, प्यास लगे, धाम बढता हो फिर भी यह सब बन्नाएँ होती हैं और उनका प्रतीकार इसे करता पन्ता है। अन्यकी क्या छोड़ो समसे प्रष्ट पुण्यशाली पुण्य तायद्वर हात है उनका भी तारपायने उदयमे चतुर्ब गुणस्थानमे उमरा प्रतीकार करना पड़ा अथवा आदिनाथ भगवानने १०० पुत्र और २ कन्याएँ कर्तसे आई ? तथा पत्र गुणस्थानमे असाता की उदारणाम आहारके लिय जाना पड़ा। अत मित्र हाता है इन आठ कर्मोंमे सममे प्रवन्तमे माह कम है विसके द्वारा सात कर्माना रस मिलता है और यह स्वय रहता है। चित्त आत्म वन्याण करना हा उ सममे पहिल इसरी सत्ताका मिटाना चाहिए। इसरी सत्ता ही चतुर्गति संसारका मूल है।

( २० । ५ । ४७ )

३ मोहना विलास अद्भुत है। अभी तब तुमने जाना ही

नहीं। जिस दिन जान जाओगे उसी दिन मोक्षमार्गनी साड़ी पर पहुँच जाओगे।

( १४।६।४७ )

४ हम अपने माहने अनुमूल पर पदाथम इष्ट या अनिष्ट कल्पना कर लते हैं यही कल्पना अशाक्तिका मूल है। अशाक्ति का अर्थ है कि वह पदार्थ हमारे अनुमूल होता है तब हम उसके सद्भावना प्रयाम करत हैं। नसम चाहे हमारा सर्वस्व भी लग जाय।

( ३०।८।४७ )

५ लोग सरल हैं, प्रत्यक्ष जालमें आ जाते हैं। अनादिसे मोहने जालमें फँसे हैं। कोई निवारण करनेवाला नहीं। स्वयं ज्ञानाननसे बद्धिन रहते हैं, पर मानत नहीं। या तो स्वयम्बुद्ध मनुष्य हो, या परकी माने, तामरा उपाय नहीं।

( ३०।८।४७ )

६ कोई न तो किसीको फँसाता है और न कोई फँसता है। माहा जीव कल्पना करता है कि 'मुझे फँसा लिया, मैं फँस गया' इत्यादि विकल्पोंसे दुःख अनुभव करता रहता है।

( २४।४।४८ )

७ परमार्थसे तो मोही जीव सदा ही दुःखी रहता है। उमरी दृष्टि ही दूषित रहता है। उसे वास्तवमें आत्मरोध नहीं होता।

( १३।७।४८ )

८ शारीरिक दुबलता उतनी घातक नहीं, आत्मा<sup>ही</sup> की निरलता महती घातक है। मोह परिणाम आत्माके वास्तव गुणने घातक हैं। निह संसार दुःखसे अपनी रक्षा करना है उह उचित है कि मोहकी त्यागें।

( २६।७।४८ )

६ अत्र पयाय मुनि तिरु धातुन कर प्रथित दय मुञ्जा परतु माहापशमन विना आ मा संमारी नी रता । संमारवा अत्र यदि अत्र है ना माहाहा परिणामि अर्वा रण परा । मनुज ननरा ताम मन्त्र नी मियाग ।

( २० । १० । ४८ )

१० महापदाय अर्वा अर्वा मन्त्रानिय हुण पाणामाराग ह । पाड पन्नाय रिर्मास माथ मन्त्रय नी म्पया । विग वदाथर ना गुण पयाये है उनीय माथ ननरा तादा म्पया म्पया है वाड म्पयेनत हा वाड अर्वाग हा । यत्र पदा रसा गान्त्रय येउन गुण पयायेने माथ है यद् विर्णीय है हिनु अर्वादि वानने मादवा मन्त्रय आ मास माथ हा रदा है । माह पुद्गाय अर्वा परिणाम है हिनु नत्र म्पया विषास वात्र अर्वा है उम वात्रम दद् अर्वा रागादि रूप परिणाम करना है । अर्वाम येन गुण है, नत्र यद् अर्वा है, नत्र ज्ञान वात्रम है । ज्ञान गुणय फाम जानना है । येने दपणम म्पयदता है, म्पय अर्वा प्रतिधिय पदना है हिनु अर्वा जो म्पया और वात्रा है यद् दपणमे नी है । नत्र ज्ञान गुण म्पय है म्पय माहके उदयम रागादि हात है य अर्वाकी अर्वादान नलिमे ही हुण है, नेमिचित है । यद् अर्वा म्पया मात दाता है यही इसका भूत है । नी भूत अर्वा संमारवा नियामन है । त्रिद अर्वा संमारम पार दाता हा य इम भूतने अर्वा । संमारवा त्रि मत् यार्वा और त्रि वका संमार वात्रा । न तुम रिमास हा और न वाड तुम्हारा है परन्तु मोहन आरगम तुम्हें हुण म्पया नी ।

( १४ । १ । ५१ )

२१ सभीरा इच्छा दाता है वि मासारिक द्वन्दसे त्रिद हा शान्तिमागना आभय करे परन्तु जयतक म्पया माथव पारण

अपना ही साह राग द्वय परिणाम अंतरङ्गम सत्तर्क हैं इन्द्रा फलप्रता नहीं हो पाती ।

( १९ । १ । २१ )

१२ अथकी क्या छाडो जो नीय मन्व्यगानी हा चुने ह व भा अभिप्रायसे तो लुप्त करना नहीं चाहते परंतु फिर भी जो आँ यिक कपाय विद्यमान है उससे अनुमूल नाय करते हा हैं । यद्यपि यने प्रशम, मनेग, अनुमन्पा और आस्तिक्य ये चार गुण प्रगट हा चुने हें, अमन्पात लोक प्रमाण कपाय और विषयासे मनसा शिथिल कर चुके हैं फिर भी विषयोंम प्रवृत्ति देखा जाती है । अथ मामान्य मनुष्योंना क्या छाडो ना तीर्थङ्कर हें जिनके द्वारा अथ जगतना रक्षायण होना है वे भा इम चारित्रमोहने उदयम सामाय मनुष्या के मन्श ही यरहार करते हें । इमसे सिद्ध होता है कि चारित्र मोहने उद्यमे महान् आ मा भी दिगम्बर पद वारण करनेम अस्मर्थ रहना है । जिनकी सामर्थ्य अनन्त है वे भा म्मके उदयम उदासीनताको छोड विशेष पुरुषार्थ करनेम अममय हें । तत्र अथना क्या ही क्या है ? किन्तु यह भी पुरुषार्थ सम्य म्शनने मद्भागमें होता है । सकल वाय करते हुए भी वर्तने पात्र नहा बनते ।

( १२ । ३ । ५१ )

१३ ऐमा प्रयत्न मोह है कि अपनी उन्नतिने लिये ममर्थ होते हुए भा यत्नीय लुप्त नहीं कर मरना । ज्ञानार्जन करना प्राणी मात्रने लिये आवश्यक है और अयसाश भी प्रत्येकने पास है किन्तु यह मोही उममे प्रयत्न नहीं करता, इपर उधरकी कथाएँ करने निच समयको बिना नेना ही म्मका वाय है ।

( १५ । ३ । ५१ )

१४ यद्यपि वस्तुतः कोई पदार्थ निर्मीता परिणमाया नहीं

परिणमता यह विविचिह्न सिद्धांत है। फिर भी अपनी माह परिणतिस व्यथ ही बता यनत है। वट यभाव ही संमाग्रा कारण है। यदा भाग्यश आ मारा वना माननम कारण हाता है। सभी द्रव्याका परिणमन स्यापीन है, काइ द्रव्य किमीरा परिणमाना गी कचल निमित्त है।

( २३।४।५१ )

१५ १ जान यह जीव अपना परका भेद जानकर भी निरंतर परसो क्या अपनाता है ? यद्यपि प्रत्येक प्राणीका यह विश्वास है कि परक द्वारा हमारा सुख दुःख सुदृ भी नहीं जाता फिर भी अनानि माहना एमा विभ्रम है कि उठीकी संगतिमें आभीय कल्याण दगता है। सामान्य मनुष्यकी कथा ता पर रह, घड़े-यद महापुम्प भी मग्यगष्टि हाकर इन पदार्थाक संमगरा छोड़नम अममथ रहत है। श्री रामचंद्रकी महारान जैमे महापुम्प लदमण के माहकी वनवत्तासे सीतानीके आया होने पर भी गृह नहीं त्याग सरे। तब उनका मरण हो गया तब भी छह मास तक नरका मृत शरीर लेकर भ्रमण फरत रह। विभीषण आदिने बहुत सुख सम भाया परंतु एकी १ सुना। क्या उनको यह ज्ञान नहीं था कि यह निर्वाच है, परंतु माहकी प्रयनान इतना विद्वल करा दिया कि वालकों जैमी चेष्टा करत रहे। जब छह मास पूण हो गय, नम मोहकी मदता हुए तभी फिरक हुए अत जहाँ तब वन एसा माह किनीसे न करा जा जम-जम दु गवा कारण हा। आसा क्षात दर्शन वाला है उमे ज्ञाता दृष्टा ही रहने दो। मिथ्या भावने आरग म उसे रागी द्वपी मत वाआआ। अथवा पद्धताआगे।

( ४।५।५१ )

१६ ससारम जो जीव हैं उनके स्निग्ध परिणाम हाता है उम परिणामते मोहादि कम होता है। कमसे कोई गति होता है,

गतिसे देह होता है और देहसे इन्द्रिय होती है। इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण होता है और विषयसे रागद्वेष होत है। रागादि परिणामात्मक अत्यन्त गतिमें जाता है। गतिकी प्राप्तिसे देह होता है, देहसे इन्द्रियों होती हैं, उनसे विषय ग्रहण होता है, विषयसे रागद्वेष भाव होते हैं ? इस प्रकार ससार चक्रमें यह जीव अनादि अनन्त काल तत्र भ्रमण करता है।

मिसीमा अनादि होने पर भा स्वरूपोपलब्धिसे मान्त हा जाता है।

आत्मामें जो मोह परिणाम होता है उही समार भ्रमनकी भित्ति है। उमाके महत्कारसे रागद्वेष भाव हाते हैं। यद्यपि इनकी सत्ता मोहसे भिन्न है परन्तु इस मोहके सहकारसे ही उनमें पुरुषात्त्व रहता है। मोहका नशा इतना प्रबल है कि उसमें आत्माके स्वपर का भेद ज्ञान नहीं होता। पर पदार्थमें आत्मीय सत्ताकी कल्पना करता है। मोहका निर्वचन करना अति कठिन है। इसके उदयमें आत्मामें विपरीत अभिप्राय होता है और जब यह चला जाता है तब यह आत्मा स्वतः परको पर मानता है, उनको निच नहीं मानता। उसका घणन इस तरह है। जैसे किसीको कामला रोग था वह उस अथस्थाम दूधको पीला देखता था और यदि उसे दूध दिया जाये तब उसे पीला जान पीनेकी इच्छा नहीं करता। यह इच्छा उसे हाती है। वही जन्मांतरका अनुमापक है।

( ११।५।५१ )

१७ अनादिसे अनायास ही परका सम्बन्ध बन रहा है। किमने बनाया ? इसकी मीमांसा तुम क्या कर सकते हो ? जिसके त्रिकालवर्ती निखिल पदार्थोंकी पर्याय क्षाममें आ रही है वह कहता है—'अनादिसे यह सम्बन्ध है'। प्रमाण भी है कि यदि ऐसा न होता तो तुम्हीं बताओ तुम्हारे पिता कौन थे ?

‘जमुन थे ।’

‘उनके कौन थे ?’

‘अन्य थे ।’

फिर उनके कौन थे ?’

‘और अन्य थे ।’

अज्ञता गया रसासार रगना ही पड़ता है कि—‘अनादि सम्प्रथ है । हम इसमें अधिक उद्भ नहीं जानते ।’ यह ज्ञानी भाष्य कहता अतः नम विवस्वता त्यागा । यह सम्भव भा है । निमसा अपना उच्च विभ्रंम करना हो गिरान नहीं कराय । इमी तरह निमसे आत्माय समारवा विभ्रंम करना इष्ट है उमे उचित वचन्य यह पावन करना चाहिय कि मोहादि भात्रोम आमक्ति त्याग । समय पाकर आपमे आप इनकी अनुत्पत्ति हाने लगेगी ।

( १५ । ५ । ५१ )

१८ समार क्या है ? रागद्वेष और इनका मूल मोह यह मिलकर ही ससारसे प्रवृत्त है । जहाँ पर पदार्थोंम निवृत्त बुद्धि हुई वहाँ पर जहाँ मोह हुआ वहाँ उसमें प्रीति रूप परिणाम होने लगा । जहाँ प्रीति तहाँ अप्रीति होनेका अन्तर अनायास आ ही जाता है । अथवा कथा छोडो यह शरीर जितना प्रिय और सुन्दर माहूम हाता है । परन्तु जब रोगसे आक्रान्त हा जाता है तब अनायास ही इससे अरुचि होने लगती है । यहाँ तक लाग रुद्धते हैं कि मर जाँने तो अच्छा है । देखा भी जाता है जब असन्न वदना हाती है तब विष खाकर मनुष्य अपन प्राण गमा दता है । अतः समारसे मुक्त होना अभाष्ट है तो माहको त्यागो ।

( १७ । ५ । ५१ )

१९ संसारमें अनन्तान्त जीव हैं और पुद्गल द्रव्य इनसे भी अनन्तगुणे हैं । वर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, तथा आकाशद्रव्य य

तीनों द्रव्य एक एक ही हैं। काल लोचप्रमाण असंख्यात द्रव्य हैं। इन द्रव्योंमें चार द्रव्य स्वभावतः शुद्ध हैं, इनमें त्रिभाव शक्ति नहीं। अतः एक भी विट्प्रभावको नहीं परिणमता। जीव और पुद्गल दो द्रव्य ही ऐसे हैं जो विट्प्रभावको प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि गृह्णन्ने जायते दा भेद उताए—संमारी और मुक्त। पुद्गलसे भा अणु स्कन्धके भेदसे दा भेद उताए। जीवना लक्षणं ~~सुन्द~~ भगवानने प्रयचनमार पञ्चास्तिशायन लिखा है—

जाणदि पस्सदि मच्च इच्छदि मुत्तय विभेदि दुम्पपादो ।

( प्र० १८५ )

बुद्ध्यदि हिदमहिद वा भुजदि जीवो फल तेसि ।

( पञ्चास्तिशाय १२२ )

२० सपरो जानता है दग्गता है, सुगरी अभिलाषा करता है, दुग्गमे भय गाना है। शुभाचार और अशुभाचारना करना है और उनके फल भागता है। इस स्वस्वमे अनायाम हा जीवना बोध हो जाता है। हम लाग अनादि कालसे माठका नदाम इतने उमत्त हो रहे हैं कि अनायाम ही तिम तत्त्वना राध भगवान सुन्द सुन्द महाराजन बनाया है उसे नहीं जानत। थडे-थडे पण्डित और त्यागियाः द्वारा उसे जाननका प्रयास करत हैं। अतना गतना वह ताग भा क्या कहेंगे ? काइ 'उपयोगा लक्षणम्' वह उमरी व्याख्या कर देते हैं कोइ—

जीवो उपओगमओ अमुचि कत्ता मटहपग्गिमाणो ।

भोत्ता समारत्थो मिद्धो सो विस्मभोड्ढुगई ॥

जीव ज्ञानापरयोग-शर्गनापरयोगगाला है. अमर्ताक है. कर्मांग



ससारी, सिद्ध तथा स्वभावसे ही उध्यगतिवाला है। द्रव्यसंपद्धी यह गाथा पढ़कर मतोप बरा देते हैं परन्तु परमाणुम विचारा ता जा लक्षण उन्दुन्द महारानने किया वही ता मयम आना है।

(१८।५।५१)

२१ परमायसे तो सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं। किमाना तादात्म्य किमाने नहीं हैं। पर मोहमे परतो अपना मानकर हैं अपनाके की चेष्टा करना क्या थाय है। परतुमाहमे यही थाय है। तिसने मय पानकर लिया उमका पत्राका मा वट देता काट रठिन नहीं। अत त्रिह आत्मरन्याग करना ह्य व इन पर पदार्थम निवत्त माननेका जो अनादि प्रवृत्ति है उमे त्याग।

(२०।५।५१)

२२ 'कैवल्यपत्र प्राप्ति अतिदुर्लभ है' यह बात माही नीत्र कहत है। मोही जीव अनादिसे पर पदार्थका अपना मानत हैं और अपनेका पराया मानते हैं। उह कैवल्य हा हा कैमे सनता है? यद्यपि सजदा आत्मा केयन ही है दूसर द्रव्यका अशभा उसम आया नहीं और न आ सनता है परतु इसने ध्यानम परम निवत्तनी बुद्धि है इसीसे निवत्तर गित्त रहता है। गित्तता नहींसे आती नर्न। हम स्वयं त्रिमेकने अभायम उमत्त वा चेष्टा करनम ही सुय मानते हैं। वास्तवम सुय है नहा। सुयकी परिभाषा है—'किसी प्रकारकी आतुनका जहाँ न हो गसीका नाम सुय है।' यत्ति सुयकी परिभाषा यही है तय तो प्राय ससारी मनुष्य सभी सुयी हो जायेंगे। जय इम प्राणको रूप देयनेकी इन्द्रा होता है तस बालम रूप देयनेके अर्थ यह व्याकुत रहता है। यही हु गरी। फितु जय रूप देय चुनता है उम काताम ता सुयकी चदो। परन्तु उसे सुयी काइ कहता है? यह स्वय अपनेका सुयी नहीं कहता। इसका कारण यह कि इसे उसी समय विषयांतरकी

इन्द्रा उन्पन्न हो जाती है। अथवा वासनाम अनेक प्रकारसे सरल्य रहत हैं जा प्राय प्रत्येक मनुष्यक अनुभवम आ रहे हैं। यही कारण है जो लाकम प्राय सभी दुग्गी दग्ग जात हैं। मुग्गना अनुभव उमीको होगा जो सब चिंताओंसे रहित हो जात। अथवा कथा छोडा जा धर छाड दत हैं व भी गृहस्थोंक सदृश व्यग्र रहत ह। वाइ तो बेगना परापकारसे चरमे पड़नर स्वसाय ज्ञानना दुरुपयाग कर रहे हैं। काई हम त्यागी ह, हमारे द्वारा ममारका वन्याण हागा एसे अभिमानम शूर रहकर काल पूण करत ह।

( ३१ । १ । ५१ )

२३ काइ मोहका अच्छा मानो तो मानो परतु न मुग्ग दार्या नह। चिमने द्वारा पर पदायम आहुनता हा यह काहेका हिनू ? आचनर इमी भ्रातिने हम बहुविध आत्मानाम्प आप त्तियाना पात्र जनाया। यदि कोई भ्रातिसे रज्जुम सपनी भ्राति कर ल तत्र सिसाय भयादिमने अय फल नही। भ्रातिना कारण रज्जुमे ज्ञानना अभाव ही तो है। यदि रज्जुना ठार ज्ञान हो जात तो उमी ममय भ्रातिकी अभाय हानेसे मनुष्यक भय आदि अनायाम चले जात हें। इसी तरह हम अनादिसे इस पञ्चभौतिक शरीरको ही आत्मा मान रह ह। अत शरारका हा पुष्ट करनेकी चेष्टा करते रहत ह, क्योंकि भिन्न आत्माना परिज्ञान नही हुआ। आत्मा ही ज्ञानादृष्टा है। शरारको आत्मा माननेथाना यह तो मानता ही है कि मैं हूँ, क्योंकि 'मैं हूँ' यदि यह ज्ञान न हो तत्र अपन शरीरसे भिन्न जो परका शरीर है उमे भी अपना मानने लगे सो मानता नहीं अत निच शरारम ही आत्मा मानता है। मेरी समझम न तो आत्माना ज्ञान है और न शरीरका ही ज्ञान है। क्या है ? इन्द्र ज्ञानम नहीं आता। अनभ्यसाय ज्ञानके सदृश

ही यह ज्ञान है। इसी अनध्वयसायने द्वारा आत्ममे पयायमें  
आत्मा मान दिन व्यतात करता है।

( २०।६।५१ )

२२ इस भयानक अरण्यम भ्रमते भ्रमते हमारा कितने  
संक्रोंरा सामना करना पना उना हम कणन नहीं पर मन्त्रे  
अन्वरा ना कणन ही क्या करंग ? तिम जीवक ना पयाय जाती है  
रम पयायरा रमर माय नागम्य ज्ञाना है। उम पयायका यदा  
जीव अनुभव करता है। अथ नीय गते मयश हो उम पयायका  
जाननेवाला है अनुभव नहीं पर सरना। जब पर मिद्धात है  
तत्र भगवानरो पदादु क्या रना ? रहीं रना वि भगवान दयादु  
हैं ? भगवान ना धीतराग ह उनर न ना त्यालुना है, न अत्या  
लुता है। यस्तु ना अन्वत हें उनर ज्ञानम भी हमारा दु त्य  
भासित नहा ज्ञाना। यह भा तिरर नागम जो आया रमसे स्वयं  
ह मी हा जाल ह और फिर तु मरों पर करनेर अथ प्रयन करते  
हैं। इम प्रकार मादी चायोंरा परिणमन है। हम यह कल्पना करत  
हैं कि अमुकने अमुकने उपर महना अनुसम्पा की परतु यस्तुत  
कोइ भी नीय किमां पर अनुसम्पा करनेवाला न ता आन तत्र  
हुआ, न हे और ग हागा। जितन व्यसहार है मादी चायोंरी  
कल्पनाके नियम हैं।

( २२।६।५१ )

२५ चित्तम ना अनेक प्रकारकी कल्पनामें आना है गारा  
उत्पादक कौन है ? इम पर विशय विचारका आयश्यनता है।  
चित्त कहो या मन एव ज्ञानविशय है। ज्ञानम पदाथ प्रतिभास-  
मान होता है। किन्तु जा प्रतिभास्य हाता है यह रस्तु अन्य है,  
यदापि प्रतिभास्य जा पदार्थ है यह तिसम प्रतिभासित हाता है  
यह नहीं हो जाता। जैसे दर्पणम विम्ब पडता है। तिस यस्तुका

प्रतिबिम्ब पड़ता है दर्पण वह वस्तु नहीं हो जाता। हाँ, वतमानम जो परिणमन हो रहा है वह परिणमन रूप ही का है। परमात्मसे विचार किया जाय तब दर्पणम पर वस्तुने निमित्तसे वह पथाय हुई अतः उम पथायको दर्पणकी स्वच्छताका विचार कदा जाता है। इसी प्रकार ज्ञानम ज्ञय आता है। क्या आता है? कुछ आता जाता नहीं। कुछ ऐसी प्रक्रिया बन रही है जो ज्ञानम ज्ञय जैसा आकार प्रतिभासित होता है। वह परिणमन ज्ञान हीका है। इसीसे विज्ञानाद्वैतवादीका कहना है कि “यत् प्रतिभासते तत्प्रतिभामान्तं प्रतिष्ठं सत् प्रतिभासस्वरूपमेव प्रतिभासमानत्वात् प्रतिभासस्वरूपवत्।” यदि ज्ञेयरूप ज्ञान ही जान तब ज्ञानमें जो स्वपर प्रकाशरूप है ध्रुव हो जायगा। जैन सिद्धांतमें आत्मा अनंत गुणका पिण्ड है, रहा, उमम महत्ता इस बातका है कि ज्ञानम स्वपरप्रकाशकत्व है। अतीतम नहीं। एतावता अतीत भी महान है। वास्तवम न तो कोई महान है और न कोई लघु है। मोह ही सब व्यग्रहार कराना है। माह जानेके बाद ये सब व्यग्रहार विहीन हो जाते हैं।

( २५ । ६ । ५१ )

२६ दुःखका मूल कारण परके साथ समागम है। माहने बिना परका समागम कदापि नहीं होता। यह अनुमापक है अतः परका समागम छाड़नेकी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता इस बातकी है कि आत्मस्थित का मोह है वही दुःखदायक वस्तु है। जिसमहान आत्माने उसपर नियंत्रण प्राप्त की वही इस ससारके लक्ष्मणे नियुक्त हो सकता है। अर्थात् जो लेशका मूल है उसपर विचार करो। यह क्या वस्तु है? कुछ नहीं। तुम्हारी ही मलिन परिणति का यह ठाठ दृष्टिपथ हो रहा है, जिस समय चाहो उसे दूर कर

सकत हा । जा कारांगर भकानका निमाण करता है यह उसे ढह भा सकता है परन्तु ढहनका भाष हो तभी । हमने आत्मीय अज्ञान परिणामामे यह जगत् बना रक्खा है । यदि हम अंतरङ्गसे प्रयाम करें तत्र आन ही उमी समय इस प्रजल वीरीना विघ्नश बर सकते हैं । जो भाव हमम होता है तत्रा हमारा अज्ञानतासे हुआ उसे ढर करना कौनसा पठिन घान है ? अज्ञानताकी निवृत्ति ही तो करना है । अज्ञानताका अयनाध ही तो अज्ञानताक हटानेम कारण है । भ्रमना ज्ञान हा नाना ही भ्रमक दूर होना कारण है । जैसे रज्जुम किसीना मपज्ञान हा गया, यह भ्रम कैसे मिट ? भ्रम जानका यथाय ज्ञान हा जाना ही तो भ्रम मिटनेम कारण है । विस बालम रज्जुम मपज्ञान होता है उमीना नाम भ्रम विषयय ज्ञान है ।

( ११८१५१ )

२७ यद्यपि वस्तु स्वरूप तो यह कहना है कि एक पदार्थ अन्य रूप नहीं हाता परन्तु मोक्षम परिणमन अन्य रूपमे ही होता है । अथान् माहा जान यनी मानता है कि मैं परपदार्थक परिणमन वा कना हूँ, यह पदार्थ मेरे द्वारा परिणमन करत है । यदि मैं न हाता तत्र य क्या इस रूप हो जाते ? हमार ही प्रयामसे आन आप इस वैभयनी प्राप्त हुण । यह मन सहती अज्ञानता है । सिद्धान्त ता यह कहता है कि—

“सर्वे सदैव भवति नियत स्वयीय

रुमादियान्मरण जीवित दु ख मौग्यम् ।

अज्ञानमेतदिह यत्तु परात्परम्य

दुर्यान्मरण-जीवित दु ख सौख्यम् ।”

अपने कर्मोदयसे जीना, मरना, सुख, दु ख ममी सदा ही

होते हैं। जा यह मानता है कि परसे परमा मुग्ध, दुःख, जीवन, मरण होता है वह मिथ्यादृष्टि है। प्राणात्मा जीवन अपने आयु कर्मसे अधीन है। आयुक्रम अपने परिणामसे अवन किया जाता है, अन्य कोई अयको आयु नहीं दे सकता। तब मैंने इसका निलाया, मैं इसके द्वारा जाता हूँ यह सब मानना मिथ्या है। इसी प्राणात्मा जा मरण होता है अपने आयु कर्मसे जीण हो जाने पर होता है। अथ मनुष्य आदि अयरा आयुका क्षीण नहीं कर सकते। अपने भागसे आयुक्रमका क्षय होता है फिर यह मानना कि हमने इसे मारा, इसके द्वारा हम मारे गये, यह भी मिथ्या कल्पना है।

( ४१८१५१ )

२२ जीसम परस्पर मौमनस्य नहीं, पर दूसरसे प्रेम नहीं करते, यह सब माहकी महिमा है। यद्यपि पर पदाथमे मोह बरना अच्छा नहीं और आगमम उपदेश भी निरंतर माह दूर करनेका किया जाता है। वृत्ता लोग भी 'माह त्यागा' यही उपदेश निरंतर देते हैं फिर आप इसका क्या अच्छा नहीं मानते? यह ठीक है जहाँ परस्परसे स्नेह नहीं होता, वहाँ पर जो स्नेहका त्याग है वह द्वेष नहीं है। त्यागम उपशानुद्धि होना परमावश्यक है। आपका जा त्याग है वह केवल तब अपने अनुष्ठान प्रवृत्ति नहीं हुआ था तब पदाथसे उदात्तमान हो गया। उसका अर्थ यह नहीं कि उससे प्रिय हो गये, उसने द्वेष करने लगे। जेना ही धीनरागता रूप है, सम्यग्दृष्टिसे जो उदात्तमानता होता है वह उदात्ता अर्थ है अतः उसमें धीनरागभावका अंश है, मिथ्या दृष्टिसे जो त्याग है सा द्वेष रूप है। जहाँ द्वेष है, वहाँ राग अवश्य है, अतः तिनका बल्याणका भाग स्वीकार करना है व द्वेष त्यागों।

( १४१८१५१ )

२६ आत्माम जा अशास्त्रि हाती है अमम मूल कारण मोह है । उसमे ही यह मय दलचता होता है । यहाँ तब बड़े बड़े अनुगतिरा सम्बन्ध उर्मीन विभक्ता फल है । यदि हमका किमा वस्तुकी आश्रयता होता है तब उसे पानेका प्रयत्न प्राणपनमे करते हैं । यह वस्तु जब हमको प्राप्त हा जाता है हम हममे फूल जात है मानों मयमय मिल गया । यदि यह इसम दान्न हो गया तब उसे शत्रु मान लेते हैं । और माधन हा गया तब मित्र मान लेते हैं । इस तरह हम निरंतर मोहके चक्रम रहकर भेद ज्ञान प्राप्त नहीं बनते ।

( २० । ८ । ११ )

“अहो निरजन शान्त बोधोऽह प्रकृते पर ।  
एतावान्तुमया काल मोहनैव विडम्बित ॥”

२० यह आश्रयकी बात है कि मैं निरजन है, रागादि उपद्रवासे रहित शान्तस्वभावरूप हूँ, तब ज्ञान स्वरूप है परन्तु एतावान् काल मैंने मादक द्वारा त्रिना किया । अनानि कानसे जा पयाय पाइ उर्मीन अपनत्वकी कल्पना कर ता । यद्यपि यह असमान जाताय पुद्गल और जीव ज्ञानका मनुष्य पर्याय है किन्तु मैंने अपने स्वरूपको न जान कर पयायका अपना माना कि यह पयाय मेरी है, यह मैं हूँ, इत्यादि अहंकार ममकार द्वारा उगाया गया । नहीं चतायमान है चेतनाका विलास जहाँ ऐसा जा आत्मा उसने प्रवृत्तसे च्युत होकर ममस्त किया दुःखको अपना मानकर मनुष्य व्यवहारको आश्रयकर वहीं रागा हाता है, यही दुःखी होता है । पर द्रव्य कमकी सगत करता हुआ पर समय होता है । अथात् जहाँपर द्रव्यको अपना मानता है वहीं परममय हो जाता है । जो परसे भिन्न अपने आत्माका मानता है । यह जो पर्याय है

उह कंजल मेरी नहीं, इमम पुद्गल द्रव्यका समावेश है। मैं तो चैतन्यका पिण्ड ज्ञान स्थानमाना आत्मा हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ। यह जो परद्रव्यका सम्पर्क है वह अनादिकालसे जो मेरी आत्मानम धमना सम्बन्ध है उसके निमित्तमे है। अब इससे मोहको त्यागता हूँ, अपने आत्मानम ही अपनेको मानता हूँ।

( १०।९।२१ )

३१ माहने मद्भागम नाना कल्पनाओंका जन्म दाता हूँ। जितन मनानुभाव धुरधर लेकर हुए हैं सभाने प्राय अपने विचारोंम मनमे प्रलयान् शत्रु आत्माना माहमाना परन्तु जेमा पाय देखनेम न आया कि इस शत्रुसे पिण्ड छूट जाये। हम भी निरन्तर यही कहन रहते हैं कि 'माह वञ्चक हूँ' यद् तो कहनेका वात हूँ। दुमरापर प्रभाव डालते हैं परन्तु जत्र अपना और नष्टिपात करने हैं तत्र अणुमात्र भा उससे त्याग करनेम अपनेको अममर्थ पात हूँ। मोहकी कथा तो दूर रही, पञ्चन्द्रियाके विषय तिनके त्यागम अणुमात्र भा कष्ट नहीं, उनका भी छोड़नेम अममर्थ हूँ। यदि किसीन प्रवृत्ति विरुद्ध कोई वात कह गी तो आगममूला हो जाते हैं। यद्यपि किसीने कावये आगम आनर उद्य शब्द उह दिये ता तिमने शब्द कह उनका उत्पादक जो है वहा तो उनके फलका भाक्ता हागा, उससे हमारा क्या सम्बन्ध? कता और भाक्ता प्रवृत्त्यर्थ नहीं हात—जो कता सो भाक्ता परन्तु हम काय ही कल्पनाकर दु रने भाजन बन जाते हैं।

( १४।१०।०१ )

३२ जहाँ कपायाके द्वारा मन वचन कायके व्यापार हूँ वहाँ ही वचन हूँ। कपायके अभायम मन वचन कायके व्यापार रहा, आत्माना कोई घात नहीं। जैसे पङ्कजे अभायम नायुके वेगसे भी पानानी स्पन्दताका घात नहीं हाता केवल प्रदेशकम्पनमात्र ही



हाता है अतः आपस्ययता है कि हम आमासा कल्पित वरनवा  
माह, राग, रूपरा कर । मयययययय व्यापार रयययय  
कात पापर मित्र नायग । सुत्र जय मूलमे ग्याइ दिया चाना है  
तय ग्मरी मरिचाराग्या अयकागम ही विता प्रयामद म्यययय  
चती चाना है । ग्मी तरह आगामे जय माह राग रूपरी निशुक्ति  
हा चाना है तय अतायाम ही शय चार अचातिया वम ग्य हा  
चान है । अणयय गीगाम तिया है—

“मोक्षो विषयैरस्य बन्धो वैषयिको गम ।

एतावदेव विज्ञान यथेच्छमि तथा बुरु ॥”

पद्माट्टियोंर विषयय अतुराग माहा चीवाइ रहता है, क्याकि  
यह परमा निव मानता है । जय आगामे माह पायमान हा  
चाना है तय यह परम तिवर बुद्धि छाइ दता है । ग्मद वाइ  
गसक भागनय च रम आता है यह ग्मग आयमे आय चरहा कर  
दता है । निममे ग्मगा हा जानी है उमम रम बाग्वा ? अवा  
परमाथम जय पदार्थारा पर जान लिया तय न ता ग्मग राग  
हाता है और न रूप । जयनक हम उनरा उपगारी और अतुप  
कारी जानन ह तभी तय उनक माय राग और रूप यरन है ।  
नय य ग्मिग हा गया कि य पर है, न ता हमारा कल्याण कर  
मरन है और न अग्म्याण कर मरन है, ययन हमारी थनादि  
कालसे यद् धारणा गी कि राग रूपरा मूत कारण य परपदाय है  
तारा हम उगी मत्ता अमना करनम व्यम रत थ । यगपि  
यह अमग्मय है कि हम विमीरी रग अरशा कर मने । संमारम  
चितने पदाय ह य उनने ही रहगे तथा उनके परिणाम भी निरंतर  
धारावाह रूपसे रग । हम न ता विमीर अग्मितयरा रय मरतो  
है और न मिना सकत है, ययन माहवे गशाम अयथा ग्मदानकर

इस अनन्त ससारकी विविध यातनाओमें पात्र बन रहे हैं। जिन्हें इन यातनाओसे मुक्त होना है उनमें उचित है कि इस मिथ्या धारणाका हृदयसे निष्कामन कर दें। जो पदार्थ ईं वे स्वतः सिद्ध हैं, तथा ज्ञाना परिणमन भी स्वतः सिद्ध है। कोई शक्ति ऐसी नहीं जो हम अनन्त पदार्थानी प्रवाह परम्पराको अत्यरूप कर सकें। ज्ञान सवदा जीव ही रहेगा।

( १८ । १० । ५१ )

३३ हम सर्वदा पराश्रित रहकर आत्मीय उत्कर्ष और अपकर्षकी कल्पना करते हैं। उत्कर्ष और अपकर्ष यह दोना विद्वृत भाव है। तथा इनका मानना भी माहमे होता है। माही जीवपयाय बुद्धिबाल हाते हैं जो वान इनमें रुचिरर हुई और उमरा लोग प्रचार करने लगे तो हपसे फूल गये और जो यात रुचिरर न हुई और लोग उसका प्रचार करने लगे तो टुसी हा गये।

( १ । ११ । ५१ )

४८ जितने ज्ञान है सतका परिणमन स्वाधीन है। हम माह के प्रावीन होकर परका अपन रूप परिणमन कराना चाहते हैं, पर यह असम्भव है।

( १७ । ११ । ५१ )

५५ अनादि कालमे हमने मोहके वशाभूत हाजर आस्तन ही का अपनाया, आत्मतत्त्वकी श्रद्धा नहीं की। इमाका यह फल हुआ कि निरन्तर पर पदार्थानि अपनानमें ही समय गमाया। यद्यपि ये पदार्थ आत्माके स्वरूपसे भिन्न हैं। यह माहा जीव उह निच मानकर अपनानेकी चेष्टा करता है। आत्माका स्वभाव देवना जानना है। साम्यभाव बदकर मोधादि कपाय हो जात हैं, उनसे यह उलुपित हो जाता है। इसी कलुपतासे यह आत्मा निरन्तर व्यग्र रहता है। ज्ञानका कार्य इतना है कि उसके द्वारा

पदार्थों का ज्ञान होता है, पर यह पदार्थरूप नहीं होता। जैसे  
 दपगमे जो स्वररूपा है उसमें यह सामान्य है कि यह  
 अपने स्वररूप का दिग्गता है न कि अन्य पदार्थों के आकार का भी  
 अपनेम भलका देता है। किंतु अकाररूप नहीं होता। जैसे अग्नि  
 दपगमे दृश्यमान होता है किंतु उसमें ज्वाला और उष्णता नहीं।  
 इसी तरह ज्ञानम का ज्ञानि कर्पाय भवते हैं परंतु ज्ञान का धाररूप  
 नहीं होता। जय यं उक्तु भयादा है कि अत्मा दुर्गी क्या होता  
 है? दूसरा मूल कारण यह है कि यह जीव जय अपनेम का धाररूप  
 मान लेता है तत्र का धारण काय सिद्ध न हानेमे दुर्गी होता है।

( ७ । १२ । ५१ )

## पिशाच परिग्रह

१ समारम्भ परिग्रह पापनी रति है। इससे परिग्रह तो  
 दुर्गा है हा परंतु मेरा तो यह धारणा है कि ता परिग्रह का क्या  
 करता है यह भी व्यप्रताम अत्रुभय करने का पात्र हा जाता है।

( २१ । ७ । ४७ )

२ जिससे याचना करना महान पाप है। जय अन्तरङ्गनी  
 कामना घट गत तत्र यह उचित है कि पराय अथ विमम लक्ष  
 हा एसा प्रवृत्ति न करा। परिग्रह मनुष्योंमे प्राणसि भी प्रिय है।  
 उस छानननी चेष्टा करना कर्षों तत्र उचित है। बहुत मनुष्यासे  
 एसा मुन्नेम आया कि हम विमसे याचना नहीं करत। दूसरा  
 लिये मार्गनेम क्या हानि है? यह भी एष छल है। जो एसा करते  
 ह उननी भावता परीपकारका वहाना लकर अपनी कर्पाय पुष्टर  
 रयाति ताभनी ही रहती है।

( ८ । १ । ४७ )

३ परिग्रह पिशाचसे पीडित मनुष्य विनेक शूय हा जाते हैं। आन जो मारनाट हो रही है उसका मूल कारण यह परिग्रह ही है।

(१६।१।४७)

४ रुपया यह वस्तु है जा ससारम मोही जीवने पतनना कारण हो जाना है।

(३१।१०।५१)

५ जहाँ परिग्रह पिशाचना आग्रह रहता है वहाँ निज परना विवक नहीं रहता। यदि इमक पिण्डस छूट जायें तब सुभाग पर ही आनायें। मामाय मनुष्योंनी बात छोट्टिये आ रामचन्द्रनी महारान तादमगरे स्नेहम छद्द भाद पागल रहे। सीतानीना जननर रामसे स्नेह ना टुगी रना, स्नेह त्यागते ही थाया हो गई। अतः त्रिफलोका त्याग ही श्रेयस्कर है।

(१८,१९,१२।४८)

६ परिग्रह पिशाचन ग्रह उत्तमस उत्तम मनुष्य अधम भावको प्राप्त हो जाते ह। रावण सट्टश प्रतिनारायण क्तिमन भावने वश श्रुगतिना पात्र दुव्या तथा वतमानम अनेरोंनी यनी गति है।

(१६।१।४८)

७ ससारमें पापका मूल परिग्रह है। इमका निसन मन्त्रध किया उसीना ससारम पतन होगा। निहें परिग्रहमे वचना हा व इम त्यागें। यही माग प्रशान्न और पयागी है।

(१७।१०।४८)

८ ससारमें परिग्रह ही महापाप है। इमने त्यागना अपदेश देना ही धर्म है। निहोंने इमपर वित्तय प्राप्त की यही सत्य धमात्मा है।

(१३।११।४८)

६ समारम्भ नहीं परिग्रह होता है वहीं पारम्परिक सौम नस्यकी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। अतः मनुष्याने विचार किया कि जब परिग्रह अनर्थक मूल है तब इसे ऐसे कार्यात्म तगाओं जहाँ हमने द्वारा थशाति न हो। परन्तु यह तो जिस परिणामका है जहाँ गया अपना नाय करेगा। और की कथा छोड़ा, मन्दिरम गया तो वहाँ पर भी इसने अपना रङ्ग चमाया। मन्दिरके निधि रत्नरत्न हृदयम ऐसा अभिमान उपत्र किया कि 'मं मन्दिरका गवाञ्छा ह।' फूलवर हृपा टा गया।

( २०।१।११ )

१० द्रव्य अनर्थकारा है परन्तु मन्दिरका द्रव्य तो मनुष्ये अधिक अनर्थकारा है। जो मनुष्य मन्दिरके द्रव्यका स्वामी बन जाता है वह शेषका तुच्छ समझने लगता है और जो मन्दिरका द्रव्य उसके हाथम रहता है उसको अपना समझने लगता है। परिणाम यह होता है कि समय पाकर दरिद्र बन जाता है और अन्तमें जनताका दृष्टिम उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। अतः मनुष्यताकी रक्षा करनेवाला उचित है कि मन्दिरका द्रव्य कभी भी जपन निना उपयोगम न लान। द्रव्य वह वस्तु है जिसके वशाभूत हाकर मनुष्य 'यायमागम' न्युत होकर चष्टा करने लगता है।

( १०।३।५३ )

११ समारम्भकी दशा इतना विचित्र है कि हमने मिटानेका प्रयास करना ही व्यर्थ है। यह कर्मभूमि है। यहाँ पर मनुष्योंम एकता होना असम्भव है। हाँ, यह अवश्य है कि यदि इनमसे काद परिग्रह त्याग दे तब परस्परम अपेक्षा न जानने किसीका किसीके साथ वैमनस्य नहीं हो सकता। वैमनस्यका कारण परिग्रह

हा है। कहीं तक वह इसके कारण पति पत्नी, पिता पुत्र, भाई  
घट्टिनम भी वैमनस्य हो जाता है।

( २२।३।५१ )

१२ भगवानने मूच्छ्राको परिग्रह कहा है। हम निरंतर  
जनताका कहते रहते हैं—‘परिग्रह त्यागा’ और परिग्रहका अर्थ  
मूच्छ्रा है। इस प्राणीके प्रबल मूच्छ्रा तो परम नित्य कल्पना  
है। जो पत्नी आपसे भिन्न है उसे अन मानना मगमे वनप्रता  
मूच्छ्रा है। हम मूच्छ्राने बहुमतानी शक्ति की है। आन समारम  
नितने मत है म्मी मूच्छ्राके प्रभापसे जमे ह। जैसे ईमाइ कहते  
है कि विह मसार यातनाआसे मुक्त होना है वे इमा पर विश्वास  
करें। मुमनमानोंका कहना है कि धर्म गुदाने द्वारा जगतम  
आया है। अत गुदा पर विश्वास करो और यह भा कर्ते हैं कि  
गुदानी शक्तिमे सन सचालन हो रहा है।

( १०।६।१ )

१३ समारम द्रव्यके अर्थ जा-जो अनर न हा थोडे ह।  
इसने प्रसीभूत हाकर मनुष्य आत्म स्वरूपको भूल जाता है।  
आत्मस्वरूपकी वजा छोड़ो, आज नितने मनुष्य रणक्षेत्रम जाते  
ह और जानकी चेष्टा करते हैं केवल एन अथानके लिये ही ता  
यत् प्रयाम है। इस अथके लिये मनुष्य जदानतम साथी द  
आता है। उस अथके लिय भाइ-भाइको विप देकर मारनेका प्रयत्न  
करता है। इम अथके लिये गरीबानी रोटी तक छीन लेता  
है। इस अर्थके लिये आन हजारों स्थला पर पण्डा लोग जलनी  
पूना कराकर वृष नहीं होते। उस अथके लिये गया (निहार)  
मे १० पाठी पहिलेकी और १० पत्रानकी सुगति भेन दी जाती  
है। इस अर्थके लिये हजारों स्थान तीर्थ रूपम परिणत हो गये

उन स्थानों पर धन देनेसे साया स्वयं मिलेगा एसा प्रलोभन दिया जाता है।

( १० । ११ । ५१ )

१४) ना मूत्रशुद्धि स्वरूप वात है, तब व उसे दूर नहीं कर सकते तब तिनका इमका स्वरूप परिष्कार हा नहीं व दूर न कर तब एमम आन्तरिकी क्या हा क्या ? आन्तरिक ना एम वातसा है कि तिनका विद्वान ई व स्वयं इमका द्वारा पराभूत है अत आन्तरिक त्याग करानका उनका चेष्टा विफल है। यदि वदया जान मनक पालनका उपदेश देन ना वर्धा तब उचित है ? यदि वाइ पराया कल्याण करना चाहे तब समय पहिले उक्त उक्ति है कि वह स्वयं कल्याणक भागग लग।

( २० । ११ । ५१ )

१५) ना सुख अविद्यन होन पर हाता है बर वीपीतमाय परिमन्त्रके सद्भावम भी नहीं हाता।

( १२ । १२ । ५१ )

## परसभागम

१) समागम उत्तम होता है परन्तु धमके अनुकूल हा तभी, अन्यथा संसार गतम पढनेका कारण हा जाना है।

( २ । ११ । ४० )

२) संसार अशांतिका सागर है। इमम न शांति मिली और न मिलनका है। अनन्तरतासे हम संसारक चक्रम आ रहे हैं और अन्तकाल आगे भी रहग, क्योंकि आत्मतत्त्व अन्वयाधनसे पराहमस्य है। परमो आत्मीय मानकर निरन्तर परम सपन करने

में अपनी चेष्टा लगा देते हैं। उसना जो फल हाता है सो प्रत्यक्ष है।

( २२ । १२ । ४० )

३ पर सम्पर्कमे ही रागादि दोषनी प्रपत्ति हाती है और रागादि तप ही समाप्त करण होत है।

( १० । १ । ४८ )

४ अनेक मनुष्योंके सम्पर्कमे स्वात्मतत्त्वना उपलब्धि पूर हाता जाती है, क्योंकि सम्पर्क ही स्नेहना कारण है और यदि सम्पर्कम मनोमालिन्ध हुआ तब द्वेषना होना अनिवार्य है। यद्यो तब इस त्रिषयम विवरणा का जाये, दुःख राशिना कारण यह समागम ही है।

( २९ । १ । ४८ )

५ परने माय समर्गमे हा वचनासी प्रवृत्ति हाती है और वचनामे नाना प्रकारके विकल्प आत्मान होत है और आत्मा तसे अनेक मङ्गलम पन्ता है अत निररी परिणति स्पन्द्य हो वे इन ससर्गांश परित्याग करें।

( १६ । २ । ४८ )

६ तिन जासोंको आत्मन्याणमे पतित हाता हा ऊह गृहस्थाना सम्पर्क करना चाहिये। जत्र अनाभीय पदाशमे आत्म-युद्धि पूर हा जाती है तभी तो यत् कल्याणमागना पत्रिक होता है और उन्हींना सम्पर्क करने लग तत्र कालांतरम जस श्रानपे च्युत हाकर उन्ना आनाभीय पदाशम तिन ररी कल्पना करने लगता है।

( १६ । ३ । ४८ )

७ परने ससर्गमे ही मनुष्योंके चित्तम नागा प्रसारके विभ्रम हाते हैं। विभ्रम ही संसारना मूल कारण है। चिन्दाने पर पन्तार्थसे



संसार नहीं छाड़ा वही संसारक पात्र हात है। संसार बन्द नहीं, आसानी परिणति विगत ही है।

(१०।९।४८)

८ संसारम समागम करना ही ज्ञानमारा कारण है। जिस विमल अनुकूल प्रवृत्ति पर ? स्वार्थी रहता ही धर्म साधनम मुख्य हनु है।

(११।८।४८)

९ प्राय पर सम्पन्न छाड़ा, भगवान् प्रकृतों उपासना करा परन्तु अनुरण मा मात्रा। सम्पन्नो महत्पारी उत्पत्ति हाती है और फिर मनो अंतरिध विराम हात है। जिसामे अनन्य प्रकारकी आत्माना हाता है अज्ञातामे निरंतर दुःखी रहता है क्याकि चर्ह पर आत्माना है यही दुःख है।

(१।९।४८)

१० समुदाय ही अनुप्यरा फमानेयाना यत्र है। इसद चरम वा आता है यह संसार परिभमण करनेका पात्र हाता है।

(११।९।४८)

११ परने समागममे हानि ही हाती है। प्रथम ना पर समागममें अपना समय नष्ट होता है। दूसर विमला समागम करते हा जसके अनुकूल प्रवृत्ति करनी पड़ता है। अनुकूल प्रवृत्ति न उग्न पर उमर स्पष्ट हानेकी सभावना हा जाती है। अत परवा समागम हेय है।

जिस समय आत्मा अपनका जगिता है उस समय जित स्वल्प ज्ञान दशा ही है। दशान ज्ञानका काम देगता जानता है इसमें अतिरिक्त भावना अपनको ठगता है। आत्मा ना दृष्टा जाता है। जमे रागी, द्वेषी, भाही बनानाबद्द वाय सदा आत्माके मध्यमेय नहीं हाता। यदि परकी निमित्तता इसम न मानी चार तथ आत्मा

हा ना उपादान हुआ और आत्मा ही निमित्त हुआ तब सतत उह होते रहेंगे, कभी भा आत्मा इनसे अलिप्त न हागा । अत किमी भी आत्माका मान न हागा । इसलिये यह मानना चाहिये कि आत्माका यत्ना रागादि भाव हैं यह विकारा भाव हैं । जा विकारी भाव होता है यह निमित्तके दूर होनेपर स्वयमेव प्रथम हा जाना है । जैसे अग्निके सम्प्रधानो पानर जलम उष्णता आ जाता है यत् उष्णता औपाधिक है । अग्निके अभावम यह उष्णता या तो काल पानर स्वयमेव विगत जाती है क्योंकि जल प्याय स्वभावत उष्ण नहीं, आत्मा भी स्वभावमे रागादि रूप नहीं, यत् काल पानरजाते हा है । यत् इन बातना है कि तब उह उदय देकर जाते है हम उनमे इनना प्रेम करते है कि उन्हें आत्मीय मानकर स्मरण चाहते हैं । उनका कहना है कि तब तो अत्र रह नहीं सकते, हों हम ऐसी प्रक्रिया तब त्राग नि कालांतरमे निरंतर आयेंगे । परन्तु जिस दिन तुम हमसे स्नेह छोड दागे और हम आत्मीय न समझोगे तो फिर हम तुम्हार पास भूलसे भा न फटकेंगे । तुम्हारी कथा दूर रह, जो मनुष्य तुम्हारे वचनोंपर विश्वास करेगा उसके पास भी न आयेंगे । अत रागादि होनेका रोद मत करो, उनके होनेम राग मत करो, उमे अन्धका न समझो, विकार परिणति जान उससे होनेके अत्र प्रयत्न मत करो । एक हा अमोघ उपाय उमसे त्र होनेका है कि ना पदार्थ रागम विषय आया है उसको आन दा, उमको अपनातेकी चेष्टा मत करो । अपनाता हा उह भविष्यमे लिये आदानन दना है । तिन महाशयोंको कल्याणकी अभिलाषा है यत् उचित है कि तब प्रथम अपनेको जाननेका प्रयत्न करे अनंतर ना पर हैं उनका समग छोड तथा चिन्होंने आत्मतत्त्वकी यथार्थ अवस्था प्राप्त कर ली उनका स्मरण करे ।

शरीर यद्यपि पर है और हम तथा अत्र वक्ता भी यही निरूपण

रत हैं। श्रद्धा भी यही है कि 'यत् पर है' पान्नु जत्र कोई आपत्ति आता है तत्र उपरसे तो बड़ी बात परन्तु अन्तरङ्गम वेदन हृद् और है। श्रद्धा ज्ञानमात्रसे बन्धाण नहीं, मा त्र भरित्र गुणना भी विनाश हाना चाहिये। हम अन्तरङ्गमे चान्त हैं, हम ही क्या प्राय अधिक्तर प्राणी रागादि दापाना नहा चाहत क्याकि य साक्षात् आत्नता उ पादर ह। आत्नता ही दु पर है, कौनमा मानर है ना त् ररु काणरा दृष्ट मानेगा ? किन्तु लाचार है, जत्र रागादि हाते हैं और तत्रय पीडा मन्न नहीं कर सता तत्र उमर मेटनेरा उपाय ररता है। उठ चाहे किमात्र प्रतिभूत हो चाहे अनुभूत हा। जैसे जत्र पिता पुत्रसे गिलाता है और म्मे श्रधरा वा, कपोतारना चुम्बन करता है। भा ही बह चुम्बन पुत्ररा जनिष्ट हा फिर भी पिता आत्माय रागादित्रय पीडारा मेन्नके लिय चेष्टा ररता हा रता है। यही प्रक्रिया मर कपायारा दूर करनम दग्गी जाना है। जत्र मर कपायरा उदय हाना है तत्र पन्नाम अनिष्ट मान उनके नाश होनरा प्रयत्न करता है व उहें कष्ट दनरी चेष्टा करता है, उनरा अनिष्ट स्वयमेव हा जात्र तत्र आप प्रसन्न होता है। अथवा जो उह दृष्ट पदार्थ मिला तत्र आप उन दृष्ट पदार्थसे निरभाव कर शत्रुओंकी वृद्धि करना है। एरने शत्रुम आत्नता की अत्र उमसे शतगुणी हा गड अत जो मनुष्य अपना बन्धाण चाह उहें चचित है कि हा पर पदार्थसे त्यागें।

( २५, १६, २७, २८ । १० । ११ )

(२. काइ भा वस्तु अपनी नहां तव उमे अपनाना कहीं तत्र सुखरर रागा ? तिनका बद्द उपशमभारना उदय हा उठ ना सर्वथा ही पर पदार्थसे मात्र सम्पर्क ह्दाइ दना चाहिये। यद्यपि सम्पर्क ह्दा ही है, केवल सम्पर्कनाम बह मानता है कि 'ये मेर है, मैं इनरा हूँ' अधया 'मैं बह हू, बह मैं हू, य पहत हमार धे, हम

पहले इनके धे, यह फिर हमारे हाँगे, हम इनसे फिर होंगे,' यह मिव्या विकल्प यह जीव निरंतर करता रहता है। जपतप अज्ञान है यह विकल्प होता है, अज्ञानके अभावमें यह विकल्प मुतरा चला जावेगा। अज्ञानमें विनयी मति मोहित होगई है यह उद्ध अयद्ध पदाथामा अपना मानता है, चाह वह चेतन हा, चाद अचेतन हों, विन्नि निगित पदाथामो जान लिया है उद्वान वदा यताया है कि जपमा लक्षण उपयोग है, वह पुद्गल द्रव्य नहीं हो सक्ता।

( ८ । ११ । ५१ )

## संकल्प विकल्प

१ सर्वत्र हा विकल्प रहते हैं। विकल्पाकी निवृत्ति ता तत्र हा जत्र अंतरङ्गसे पर पदाथामि मूच्छा द्यूटे। कहने और करनम वडा अंतर है। अंतरङ्गसे मूच्छा त्यागना उडा कठिन है। मूच्छा त्याग ही तो व्रत है। व्रत वस्तु भातरमा है। या तो सहना व्रता है परनु परमाथमे विरता हा व्रता होगा।

( १ । १ । ४० )

२ चित्ता क्यों होता है इसका मूल कारण अंतरङ्गकी जिनामा है। जहाँ जिनामा है वहाँ मद्विषयक जिनामा होगा। उसका सिद्धिमा उपाय करना पडता है। उसके अथ अनेक प्रकारके विकल्प होत है और उस विषयकी सिद्धि हानेसे यह प्राणा अनेक दुःखाना पात्र होता है।

( १ । ७ । ४७ )

३ मनम नाना विकल्प होत हैं। उनका शांतिमा उपाय

नेत्रत कपायोंका उपशसन करना है। कपायाके दूर करनेका उपाय पर पदार्थमें मून्दाका त्याग ही है। अतः मून्दाका त्याग ही मुख्य काय है।

( २६।८।४७ )

४ मसारम जा हमारी यह बुद्धि है कि अमुक काम हमने किया, अमुक व्यक्तिने हमारा प्रभावमें आकर अमुक काय किया यह हम भाहजय कल्पना है। बाइ भी विमाने द्वारा कुछ नहीं करता। अपने अभिप्रायसे ही करता है। निमित्त अथवा जाय यह बात हमरा है, इससे 'हमने यह किया' कहा हा सकता। मरता यह श्रद्धा दा गइ है कि बाइ चीज किसीका कुछ नहीं करता।

( १०।११।४७ )

५ चित्तम जो विरल्प आत है यह क्या आते हैं ? हमम जा अंतरद्ग शक्ति है वह तो हमारा ज्ञानम आता नहीं, कबल गलत निमित्तोंका हम कल्पना करते हैं और उन्हींका ध्यानेका प्रयत्न करते ह। परन्तु इनको छाड़नेसे कुछ साध्य नहीं। साध्यता मिद्धि ता यथाय हतुमे होती है, गल्पबादसे कुछ नहीं।

( २९।२।४८ )

६ वास्तवम विरल्पको आशय देनेवाता आत्मा हाता है। यह भी सप्रथा नहीं। यद्यपि उपादानका अपेक्षा तो यथा है फिर भी कायका अपत्तिम महकारा कारणारी भी आवश्यकता रहता है। फिर भी अपन ही म अपना रूप देखना चानिये

( २२।४।४८ )

७ मनम जो विरल्प आत है, उनका मृत कारण कपाय है। वही उन विरल्पका जनक है। व विरल्प जा काय करते हैं वह कुछ रूप है अथवा उन विरल्पका उपत्ति होनेसे चैत नहीं

अतः जिन मनुष्यांशु कल्याण करना इष्ट है वह विन्यासे मूल कारण पर पत्नीमि नित्य कल्पनाओं दूर करना चाहिये ।

( ३।९।५१ )

८ प्रतिदिन मनुष्योंक प्रति मानव जातिके अनन्य विचार हाते हैं । मनुष्य अपनेको बहुत बतुर समझता है और निरन्तर उदापाह करता रहता है कि वत्र हम समार बधनमे छूटें । ममारम प्रचरु जीरभो नाना प्रकारकी आपत्तियों त्राण हुए हैं । मनुष्य नीच मत्र जात्राम श्रष्ट है । यदि वह चाहेता आत्माय चित्तवृत्तिका मकारर अपना कल्याण कर सकता है परन्तु यह तो जगत्मात्रकी चित्तम अपनेका फँसा ताता है । और फन उमरा अत्यन्त कदुख हाता है । अधान न तो अस्तछा उपकार कर सकता है और न अपना ही कल्याण कर सकता है । काइ भी शक्ति ममारम एसी नश ना निर्मासा टु र दूर कर मरे । प्राय ममारम अधिक्तर मनुष्य परमश्रुकी उपामना करते हैं कि हमार दुखको दूर कर हमका समाग पर लाआ परन्तु फिर भी ममारम अनर प्राणी दुग्गी ही दग्ग नात ह । मुग्ग टु ग य दानों प्राणियाक विरन्त हैं । जैसे ना घान अपनेका रुचिर न हुड तगा निम पत्नीका सयाग इष्ट न हुआ वहा यह आत्मा दुग्गयन्त करने लग जात है । और जो तगा आफका इष्ट हुइ अवशा जा पदा नष्ट हुआ ममका समागम हाने पर मुलफा बदन करने लग जाता है ।

( १३।११।५१ )

## इच्छा

१ कार्य करनम इच्छा मुख्य कारण होती है । इच्छा ही प्रेरणा कराने प्रवृत्ति कराती है । अतः सबसे उत्तम माग ता यही

है कि ऐसा अभ्यास करो ता किसी भी विषयकी इच्छा न होव । इच्छा ही जगतका मूल कारण है । इच्छाने अभ्यास कोई भी कार्य नष्ट होता ।

( १६ । १ । ५१ )

२. संसारम प्रयत्न प्राणा उत्कर्षो चात्ता है । आत्माकी प्रकृति न ता रूपरूप है न अपकर्षरूप है । उक्त नीच व्यवहार कमजोर है । आत्मा द्रव्य ता ज्ञान दर्शन गुणवाता है । स्वाभाविक रूपसे विचार किया ता तत्र आत्मान ता किसीका दग्धना चाहता है और न जानता चाहता है । दग्धन जाननका अभिप्राय समारी जानने हाता है । दग्धन जाननेकी इच्छा कोई उत्कर्षका नियामक नहीं । दग्धने जाननका इच्छा प्रयत्न दुग्धना कारण है । जब तब हम जिस दग्धनकी इच्छा है वह पदाथ न दग्धना ता हम दुग्धी रहत है । दग्धनका ता सुखी हो जात है । विचारा, दग्धनेसे क्या मिल गया ? दुग्धी भी न मिलता, कवल दग्धनेकी ता इच्छा मित गई जा दुग्धी बनता थी । अत मेरी समझमें यह आता है कि सर्व विषयोंका इच्छाआगे त्याग देना चाहिये । जिससे दुग्धना वात ही मित जाये । मुझे तो यह विचार है जो कृष्णानी श्रोत है उनका कहना है कि भोक्षकीभी इच्छाको त्याग दो । इन इच्छाआरा त्याग ही मन दुर्जावा दूर करनेका उपाय है । आज हम ज्ञानानन करते हैं, जगतका समभावोंगे, यत् भी उपद्रवका यत् है । महिज्ञान सम्पादनकर विन मनकी इच्छा भी दुग्धना यत् है ।

( १७ । ६ । ५१ )

३. शास्त्रकारोंने तपका वर्णन—'इच्छा निराव' किया है । इच्छा का प्रकारका है, शुभापयागचनिका, अशुभापयागचनिका । शुभापयोगचनिका जो इच्छा है उससे पञ्च परमर्षीय गुणोंमें अनुराग होता है । जयच परापरार, अनुसम्पा, शानादि विषयका भाव

होते हैं। इनमें भी दो तरहके जीव होते हैं। एक तो वे जानते हैं कि जिनका मृत अभिप्राय तो पर पदार्थोंमें अणुमात्र भी अनुरागना नहीं परन्तु समांतरता सम्भार इतना प्रबल है कि जिनके मत्त्व कालमें निव स्वरूपमें जानते हुए भी इन पर पदार्थोंके सहवासमें छोड़नेमें असमर्थ हैं। यद्यपि जिनका दृढ निश्चय यह है कि इन पर पदार्थोंसे हमारा अणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं और न ये हमारा उल्लंघनी प्रगाड या सुधार करनेमें समर्थ हैं परन्तु जिनका ज्ञानमें भी कुछ ऐसी परिस्थिति आ जाता है कि वे द्वाइजन्म अशक्य हैं। जैसे कोई मनुष्य अपने अपराधसे अज्ञात कर मलरिया ज्वरमें पीडित हो गया, चैत्रन उसे उटकी, नाम, चिरायताका साथ पानेका उपदेश दिया, यह रागी चिरायता आदि कटु पदार्थोंके साथका सुगन्धपूर्ण पा रहा है परन्तु यह नहीं चाहता कि मैं इस साथका पान करूं। इनका प्रकार भेदज्ञाना जीव इन विषयोंका नहीं भोगना चाहता परन्तु उद्यम जाय जो भाव उनका दूर करने लिये विषयोंमें प्रवृत्त होता है।

( १०।९।५१ )

४ दुःखका कारण हमारी इच्छा है। हम विषयोंका भोगना चाहते हैं परन्तु वे कभी भी भोगनमें नहीं आते क्योंकि वे इच्छाके अनुकूल ही तब ता शान्ति ही, सो होता नहीं, क्योंकि जिनका परिणमन जन्म अवान है, जाना भी चाहिये। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श ये पुद्गलके गुण हैं, इनका परिणमन भिन्न भिन्न है। ये भिन्न इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहणमें आते हैं। हम मरना एक कालमें विषय वरना चाहते हैं पर यह सदा असम्भव है। इन्द्रियोंके ज्ञानमें यह सामर्थ्य नहीं, क्योंकि इन्द्रिय प्रतिनियत विषयोंका ग्रहण करती है। ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धसे वे विषय ज्ञानमें भासमान होते हैं। परमार्थसे न तो विषय ज्ञानमें जाता है और न ज्ञान विषयमें जाता



हैं। श्रेयसे ममसधानम ज्ञानम एमा परिणमन हा ता है कि हमने श्रेयसा जाना और स्वच्छास एम श्रेयसा ताम वल्पना करन है ।

( ३ । १० । ५१ )

## आकुलता

१ मनापसा एग मरणा मधुर हाता है । मनापसा अर धिमा भी विषयम आकुलतासा चरनीमा मेरना है । मसार मार्ग सा आकुलता ही दु खरी बनना नग । मारु मागम भा आकुलता दु खरी बननी है । तर्हा दु ख यहा सुखसा हाता सम्भव नहीं ?

( १९ । ४ । ४८ )

२ आकुलता हा शांति तरी नाधर है ।

( २ । ५ । ४८ )

## मूर्खता

१ म्बिर चित्त उसारा हा मरना है ता एर प्रतिज्ञा पर म्बिर है । जा जगतसा प्रसन्न करना चाहुता है एर परम सुख है । आ मासा प्रसन्न करनसा जा प्रयत्न करना है एग विपरीत है । यही मात्तुमागसा पात्र है । या ता जन्म लेनसात और मरनसात बहुत है ।

( १७ । ७ । ४७ )

२ न्हत कथा करना मूर्खता है ।

( ४ । २ । ४८ )

३ कम तो लौकिक यातनाओंसे निवृत्ति करानेका कारण है। उसे लौकिक कार्याके लिये करना महान् मूर्खता है।

( ८ । २ । ४८ )

४ नियम करना एक तरद्वे मूर्खता है। नियमकी अपेक्षा काम करना उत्कृष्ट है। कोढ़ भी निमारो विप्रशस्त्र अथ रूप परिणमन नहा करा सकता। मोही जीवाकी प्रकृति स्वयं अनाप शनाथ प्रवृत्ति करनेकी होती है।

( १५ । ४ । ४१ )

## चिन्ता

१ शरदी गरमी तो शारारिक रोग है। इनमे उनका कष्ट नहीं जो कष्ट मानसिक चिन्ताओंमे होता है। मानसिक चिन्ताओं वपायोरु कारण हाती हैं। मृत है कि नम आत्माय तु मसे चितने दुःखी नहीं चितने पराये तु मसे दुःखा हा जाते हैं। हम ममारकी क्या करते हैं होता जाता हृद्र नहीं। जिन कार्योंका हम स्वप्न म भा नहीं कर मते उनका भी प्रयत्न करते हैं।

( ११ । ७ । ४७ )

२ प्रत्येक मनुष्य यहा चाहता है कि जगतका मन्त्राण हो और उसका कृतमरा श्रय उसे प्राप्त हा। परन्तु जगत ना अनादि निधन है। यह तो मदा ममा ही रहेगा। चितना हमरे पदसे वचना हा उसे उचित है कि जगतका चिन्ता त्याग, अपर्ना चिन्ता कर, उपाय मरल है।

( २८ । ५ । ४१ )

हैं। ज्ञेयके समग्रधानम ज्ञानम एसा परिणमन होना है कि हमने ज्ञेयको चाहा और स्वच्छामे उस ज्ञयका नाम बल्पना करते हैं।

( ७ । १० । ५१ )

## आकुलता

१ सनापना फल सपना मकुर होना है। सनापना अर्थ किमा भी विषयम आकुलताका जननीका मटना है। समार मागरी आकुलता ही दु मरी जनता नया, माक्ष भागम मा आकुलता दु मरी जनता है। जहाँ दु म वहाँ सुमका होना सम्भव नहीं ?

( १६ । ४ । ४८ )

२ आकुलता ही शांतिरा बाधक है।

( २ । ५ । ४८ )

## मूर्खता

१ स्थिर चित्त उमीका हा सकृता है जो एव प्रतिमा पर म्भिर है। जो जगतका प्रमन्न करना चाहता है वर परम मूर्ख है। आत्माका प्रमन्न करनेका ना प्रयत्न करना है वना विरसी है। वही माक्षभागीका पात्र है। या ता जम लनगात और मरनेवाले घटत है।

( १७ । ७ । ४७ )

२ जहुत कया करना मूर्खता है।

( ४ । २ । ४८ )

३ वर्म तो लौकिक यातनाओंसे निवृत्ति करानेका कारण है। उसे लौकिक कायाके लिये करना महान् मूर्खता है।

( ८ । २ । ४८ )

४ नियम करना एक तरहसे मूढता है। नियमका अपथा नाम करना उत्कृष्ट है। कोई भी किसीको विवशकर अन्य रूप परिणामन नया करा सकता। माही जानाका प्रवृत्ति स्वयं अनाप शनाप प्रवृत्ति करनेकी होती है।

( १५ । ४ । ३८ )

## चिन्ता

१ शरदी-मारमी तो शारीरिक रोग है। इनसे उना कष्ट नहा जो कष्ट मानसिक चिन्ताओंसे हाता है। मानसिक चिन्ताओं कपाथोंके कारण होती हैं। यदि है कि तम आत्माय दुःखसे चितने दुःखा नहीं चितने पराय दुःखसे दुःखा हो जाते हैं। हम समासकी कथा करते हैं होता जाता लुट्ट नहीं। चिन कार्याओं हम स्वप्न म भी नहीं कर सकते उनका भी प्रयत्न करत हैं।

( ११ । ७ । ४७ )

२ प्रत्यक्ष मनुष्य यही चिन्ता है कि जगतका कल्याण हो और उसके कर्तृत्वका धन उसे प्राप्त हो। परन्तु जगत तो अनादि निधन है। वह तो सदा ऐमा ही रहगा। चिसका इमर फन्दसे बचना हो उसे उचित है कि जगतकी चिन्ता त्यागे, अपनी चिन्ता करे, उपाय मरल है।

( २८ । ५ । ४१ )

३ परका चिन्ता ही समारंभे हु ग्रांकी गनि है ।

( १० । ८ । ४८ )

## मिथ्यात्व

१ अनादिमार्तात गुप्तम मिथ्यात्वके सम्ग्राममे हमारी बुद्धि भ्रमात्मक हा रही है । हमरा फन जा भ्रमनाममे हाता है वनी हाता है । मिथ्यम ज्ञानम पनाय विपरीत भासता है । यद्यपि पदान् अथवा नरी हु ता परन्तु हमार ज्ञानम अथवा भासमान हाता है । जैसे रज्जुम निर्माका सप भ्रान्ति हा जान तय घट मजुप्य भ्रमभाव न वनमे एवम भासता है । यद्यपि रज्जु सप नरी हुआ परन्तु हमार जानम ता सप है । चरतर य ज्ञान न हो—नाय सप, भ्रमनाना रज्जा सप इति जान हिम यत्पूर्वै जात तमिथ्या अत मे दापयशात् तद् ज्ञानं जातम्" ऐसी प्रतीति जानसे हम भासनमे रुन जात है ।

( २० । ९ । ५१ )

२ सत्रसे महान परिग्रह मिथ्यादर्शन है क्याकि मिथ्यात्वके लक्ष्यम यह जीव विपरीत अभिप्राय पापण करता है । अनावशो जाय मानता है, शरीरम आत्मबुद्धि करता है । जैसे रामला रागनाता शत्रुता पाला मानने लगता है । एक बार मुझे श्री हण्डरापुरना क्षेत्रपर चतुर्मास करनेका अवसर आया । उस समय मुझे बड़ बगम मनेरिया उबर आ गया और पित्त उबर हो गया । एक वैशने कहा तुम माता ( गजा ) चूमा, उबर शांत हा जावेगा । मैने गजा चूसा किन्तु चिरायना य तीमसे भी य वदुत बडुवा तागा, मैंन उस फेन दिया ।

गार्गीने कहा—'बटा । चूम लो ।'

मैंने उत्तर दिया—'कैसे चूमूँ, यह तो चूसा नहीं जाता ।'

यद्यपि माँटाना रस मीठा था परन्तु मुझे ता राग था इसलिये वह कड़वा लगना था । इसी प्रकार निम्ने मिथ्या रोग है उन्हें मोक्षमार्गमा उपदेश देना हितकर नहा होता क्योंकि मोक्षमार्ग-म तो प्रथम सम्यग्दर्शन है ।

( १२ । १२ । ५१ )

## सद्बोध

१ सद्बोध ही पापकी जड़ है । सद्बोधसे पशुभूत हानर मनुष्य उत्तममे उत्तम कार्यसे पराङ्मुख हो जाता है । निर्मीक द्वारा अपना प्रवृत्तियो विपरीत करना अच्छा नहा ।

( २२ । ७ । ५१ )

## लोकप्रशंसा

१ मनुष्यम सन्ने बडा अरगुण अपनी प्रतिश्रुता है । प्राय अधिकाश मनुष्य अपनी प्रशंसा चाहते हैं । प्रशंसाने लिये पुत्र कलत्रादि त्याग कर नाना प्रकारके कष्टानो सहन करते हैं । त्रत करे, उपवास करे, एक बार भजन कर । कर्णों तक कर्तितन-नुपमात्र परिग्रह भी न रखें । कवन लाग दुःख उक्तम कर्णमा निम्ना अभिलाषा है उनका यह प्राय त्याग दुःख ही है ।

( ३० । ४ । ४० )

० लोकेपणा बहुत ही प्रशंसा समारबद्धक अनामीय भाषा

की जनना है। बहुत ही कम मनुष्य ऐसे होंगे जो इसके रङ्गसे रंगे हों।

(७।१।४७)

३ स्वयं ताव प्रशमासे न दुःख ताव है और न होगा। स्तुतिवाद्म ह्य ज्ञानना पतनरा कारण है।

(१२।९।४०)

४ लौकिक प्रशंसा ही आन्तरिक मसार गतम तुमना गिरा रहा है। निम्नता लौकिक प्रशंसा रचिन्तर है उसे निदाग अवश्य दुःख होगा, जा निदा करेंगे उह यह नियमसे अनिष्ट समझना और जो प्रशंसा करेंगे उन्हें इष्ट समझना। यही इष्टानिष्ट कल्पना आतध्यानम कारण हागी। तथा पर दुःखना अपनानना का भाव है वह रौद्रध्यानम कारण पडता है अतः कल्याणना इन्द्रा है तत्र मनसे पहिले जिस भावसे यह अपनाने जाते हैं वह जागा।

(१०।५।१)

५ जिनसे जा न हा योडा है। परमात्से जगत्में कोई भी किसीना उपकार और अनुपकार नहीं करता। हमार विषयम हम स्वयं कल्पना कर सुग और दुःख, यश अथवा अपयश, निदा या प्रशंसा मान लेते हैं। कोई दुःख पड़े यदि हम उमना ज्ञय न बनाने दुःख भी कल्पना नहीं हो सकती। प्रथम तो हम स्वयं उसका भ्रम करनेकी अभिजापा करते हैं। उसके अन्तर यह लिप्सा बैठी है कि दुःख हमारी प्रशंसा ही ता होगी। यही पाप हमारेका प्रेरणा करता है। कहा भाइ! क्या अमुक यत्तिने क्या कहा? यदि प्रशंसा वाचन शब्द श्रवणम आये तत्र तो हमम मसकरी तरह पृथ गये, यदि निन्दा वाचन शब्द श्रवणम आये तत्र हृदय फट गया। मसकरी तरह पचन गया। भीतर चलन पैदा हा गइ। संरश परिणामाकी प्रचुरतासे पाप प्रकृतियाका बंध

होने लगा। हमने यह मित्र होना है कि उन पाप प्रवृत्तिप्रारंभ का कारण क्या हुआ? हम स्वयं हुए। उनका ही न हुआ हमारा अभिप्राय भी मिथ्या हुआ किन्तु चिमक द्वारा व परिणाम कराए गये हमने उन संकशारा मूल कारण जाना। उन अज्ञानता का न पर अल्प है। अनादि कालमें हमारा यही पद्धति उन गुरु हैं कि हम पुण्य पापके कारण अर्थ ही का मानते हैं। और जितना यह भावना रहगी तबतब हमारे मुक्त जाना असम्भव है।

( १ । ६ । १ )

६ प्राणिकों का भाग इस लक्ष्मणामे पर है। लोक प्रवृत्तिप्रारंभ अर्थ त्याग प्रवृत्ति अर्थ न करना धूलक अथ रत्नका चूरा करनेके समान है। पंचेन्द्रियके विषयोंको सुगम अथ सेवन करना जीवनके तिय विषय भक्षण करना है। जगत्के मनुष्य आत्मीय म्यात्रक लिय ही काइ काय करत हैं। यह कोई निन्दनीय बात नहीं। सामान्य मनुष्योंका क्या ना छाडा किन्तु जो विद्वान् हैं उन भी जो कार्य करत हैं आत्मप्रवृत्तिप्रारंभ लिये ही करते हैं। प्रवृत्ति व्याख्यात देत हैं तब यही भाव उनके अदयम रहता है कि हमारे व्याख्यातका प्रशंसा है। अधान लोक कहे कि मन्त्रान् । आप धन्य हैं, हमने ना एसा व्याख्यात नहीं सुना जैसा श्रीसुगमने निगत हुआ। हम लोगोंका सौभाग्य था ना आप जैसे मन्त्रका द्वारा हमारा प्राप्त पवित्र हुआ। प्राप्त ही नहीं आन हम लागने गुरु आपके चरणम्पगसे पवित्र हो गये। महान पुण्यका उद्भव हाता है तभी आप जैसे महात्माओंका मिलान होता है। श्रियादि वास्तवोंको मुनकर व्याख्यात महादय हृदयम प्रसन्न हो जाते हैं। उपरमे कहते हैं यद्युक्त। हम तो सुद्ध नहीं जानते। यह आपकी गुणज्ञता है ना अल्प वाग्यताका मन्त्र मानते हैं। पानाना



स्वभाव ऐसा जाता है जो इसमें एक विदु मत्र ढालनेसे सम्पूर्ण तल उतरसे मनरूप दीग्यता है। एम ही आप लागोंका हृदय है, चक्षु-श्राता एतेना प्रमन्न ह। इसरा कारण यदि दग्वागे ता दानाका इन्द्राण पूग हागइ यदा प्रमन्नतारा हेतु है।

( २४।६।५१ )

७ वनमानम मभा मपुप्य लार प्रशामाके तामा हा रह है। धम भा करते हैं परन्तु प्रयानन करता तौबिर प्रतिष्ठारा रहता है।

( १६।७।५१ )

८ मेरा यह अनुभव है कि प्रशामासे आदमाकी गुम्ना लघुताम परिगन हा जाती है। जहाँ प्रशामा हुइ आन्मी उसे मुनकर प्रसन्न जाता है और जहाँ निदा हुइ यहाँ दुग्य हाता है। प्रशामा और निदा दाना हा विरुत रूप है, इह निव माना हा भयदुर भम है, इस भ्रमका फल ससार है। ससार ही दुग्यमय है।

( ९।११।५१ )

९ यदि आन हम लोग प्रशामा त्याग दर्थे ता अनायास ही सुखा हा मने हैं। परन्तु लोकागामके प्रभावम दें। यदी हमारे कल्याणम धावक है।

( २७।१२।५१ )

## भोजन

८ अनुमति त्याग लिय आगमम भोजनम अनुमति दनका त्याग रिग्या है। मानन तो उपलक्षण है पापारम्भर ममस्न ही कायाम अनुमति नहीं दगा। इसका यह अर्थ है कि एममें अनुमति दे सकता है।

( ८।७।४७ )

० भोजन करानेवाला मनुष्य से महान दोष यह है कि मयादासे अधिक खिलानेकी चेष्टा करते हैं। यदि खानेवालेकी रसना चशमं न हो तब अनर्थ हो जावे। परन्तु यह पञ्चम बाल है। जैसे ही खानेवाले वैसे ही परोमनेवाल। 'पुष्टीदेवी उँट पुनारी।' समयका पालना बठिन बात है, चिनका संसार तट अल्प है यही इसके पात्र हो सकते हैं।

( १०।७।४७ )

३ जो भोजन कराता है वह पात्रबुद्धिसे हा कराता है, उसके परिणाम निमल रहते हैं। उर यही जानरर दान देता है कि मै पात्रको भोजन करा रहा ह। उमके कोई थिक्ल्प अयग नही। अत उर पुण्यभागी अरश्य होता है।

( ४।८।२७ )

४ भोजनकी लालसा चितने त्याग दा यह उहुत ही अल्पकालम शरार और आमा दोनोंका नीरोग बना सकता है।

( १३।८।४७ )

५ ससारम यदि वैरको मिटाना है तब परम्पर भोजनका व्यवहार रक्खो। यही वैर मिटानका सत्रसे उत्तम साधन है।

( १८।८।४७ )

६ भोजनम यदि पित्रया होना चाहे तब रमनेद्रिय पर चिन्तय प्राप्त करे। दाताने द्वारा यह काय नहीं हो सक्ता। इम कार्यमें पात्रको उचित है कि अपनी कपाय पर चिन्तय प्राप्त करे। दाता तो अपने परिणामाक अनुकूल भोजनका तयारा करेगा पात्रको अपनी इच्छा रोक्ना चाहिय।

( २०।१०।४७ )

७ भोजनसे कर्मी भी वृत्ति नहीं होती। आहार सशा

अनादिसालसे लगी है। निरंतर नयीनता चाहता है। कोई पुद्गल नहीं बना जा आतबार भोगनम न आया हो ?

( १० । १० । ४७ )

८ भानन करानम प्राय प्रत्यक्ष की रचि रहता है। यदि पात्र उत्तम हा तो दाताका महान पुण्यबन्धना कारण हाता है। पात्रकी विशेषतासे परिणामोंम अधिष निमलता हाती है और यही विशेषता विशेष पुण्यना कारण होती है।

( २० । ११ । ४७ )

९ भाननकी गृहता ही स्पशनेन्द्रियवर् अध पात्रना कारण है। चाह माता, चाह न माना, अग्नि सम्बन्ध दाह करगा।

( ८ । ३ । ४८ )

१० ना भानन उत्तम हा परंतु पदके विरुद्ध हा ता यह आसाम गृहता उत्पन्न करता है, और गृहता ही चारित्र्यकी घातक है।

( १२ । ३ । ४८ )

११ यद्यपि भिक्षाभोजन अमृत है परन्तु विषभोजी चीथनों ऊँटकी तरह मिष्ट इच्छु नहीं स्वता। अनादिसे परम आत्मयुक्ति चालाना यह नहीं स्वता।

( १४ । ३ । ४८ )

१२ भिक्षाभोजनका शास्त्रम अमृत पददा है, यह प्राय आन अनुभवम आया। धन्य है उत्तम जीवोंका जो यह अमृतभोजन करते हैं।

( १८, २१ । ३ । ४८ )

१३ भोजनकी प्रकिया बही है जा थी। न ता दाताकी बुद्धि मार्गपर है और न पात्रकी। विशेष दोष पात्रका है। यदि पात्र चाह तो सत्र रस हानेपर भी नीरस भोजन कर सकता है।

अन्तरङ्गसे कषायविनया हाना चाहिये । कषाय दु ग्नर हैं, प्ता-  
प्रता कषाय छूट गइ सो नरी ।

( ३३ । ४ । ४८ )

१८) आनकल साधुओंके भोजनकी प्रक्रिया निर्मल नहीं ।  
इसका यह अर्थ नहीं कि भाननम अशुद्धि रहती है या देयद्रव्य  
पात्रकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं । नग भाननम ऐसे पात्र प्रतात है  
जो पात्रका लालचके कारण प्रन जाये । अनादिकालसे भाननकी  
मज्ञा है । इसका त्याग हाना प्रल नहीं ।

( ४ । ९ । ४८ )

१५) त्यागाना यह भानन मिलना चाहिय जा उससे हानादि  
गुणोंका साधक हा अर्थात् भोजन सादा हाना चाहिय ।

( ५ । ९ । ४८ )

१६) भानन यह सुखद हाना है ना पक हा, आलस्य न  
लाय, उदराग्नि निससे शा त न हा जाये । ना विकृत भानन करन  
बाले होते हैं वे मोहा रागी दुषा हाते हैं । प्रथम तो भानन पर है,  
उमे निच मानना हा तो मोह है । मादप्रण म्मेरे म्वादम राग होना  
स्वाभावि है । यन्ि प्रग्निसम अनुकूल हुआ तत्र अनायास राग  
नी जाता है । जा प्रकृतिर अनुकूल भानन प्रताता है उसम अना  
यास माह और राग होता है । तथा यन्ि प्रकृति विम्द भानन  
मिला तत्र उम घनानेवात्म अनायास राग नहीं रहता । अय  
रुग छाडो उस भाननको फेर देत है । अत जो मनुष्य प्राकृतिक  
भोजन करते हं उनकी परिणति विकृत नहीं हाती । ममयपर जो  
मिल गया उसीसे सतोप कर लेत है । परन्तु यह वही महानु  
भावोंसे प्रताता है चिन्होंने वस्तुका यथार्थस्वरूप सममा है । वाम्न  
यम यन्ि वस्तु स्वरूप मममम आ जावे तत्र अनायास आत्माका

मुभार हा सकता ह। अना : उम न जान हमारा 31  
 रही है।

( १।८।१ )

१७ यह भावन ही भिपुत्रा प्रमृत है जा उमक नि  
 न बनाया जाय।

१८ ना गृन्थ गृढ भावन फरनधाना है, अप्मून  
 पानन करता है, पञ्चादुम्बर और मग, मांस, मधुना भक्षण नहीं  
 तथा नियमी श्रद्धा पञ्च परमर्षीय है, यिना छना पानी नहीं पी  
 नीरदयारा पाता करता है यी भाजन देनका पात्र है। उ  
 लनेवाला है यह उत्तम, मध्यम तृषयक भेदस तीन प्रकारका है।  
 उत्तम पात्र ना त्रिगम्धर है चिनर चाण और आभ्यन्तर परिष्  
 ना है। मध्यम पात्र एषादश प्रतिमाओंम अत्यतम प्रतिमावले  
 है। उनर भा तीन भद है। उत्तम ना दशम और एषादश प्रतिमा-  
 धारा है। इह लक्ष्य धायक कर्त है। मध्यम सप्तम प्रतिमासे लेकर  
 नरम प्रतिमापाल ह। और प्रथम प्रतिमासे लेकर छह प्रतिमा  
 तक जषय रहलात है। इनमे चिनर काइ प्रतिमा नी  
 किन्तु नैनधमकी रदुनम श्रद्धा है उह जषन्य पात्र कहत है किन्तु  
 अप्मुलगुणरा नियमस पालन दाना आपश्य है। यदि अप्मुगुण  
 रा रिक्त है तत्र व जैनरमरा श्रुति भी श्रयण नही कर सका।  
 यः नियम उन्हीसं लिय है जा कुलक्रमस जैनधम माननेवाल हु  
 म्यम पैग ह्य हें।

( ५।१०।५। )

### पराधीनता

१ पराधीनता ही मसारकी जननी है। अनादिकालमे हमन  
 पर पदाथम आत्मीय बुद्धिक द्वारा अपन स्वरूपकी अयदलना की

२. र पौद्गलिक पदार्थोंके व्यामोहम उमत्तकी तरह इनस्तन  
 ण कर रहे हैं। जा निव ज्ञान है, जिसके द्वारा जगतको जानते  
 (उमरी उपत्ति पर द्वारा मानते हैं।

(३।१।४०)

० अनादिमे इन प्राणियोंने आत्मतत्त्व नहीं मममा और न  
 मिमकनकी चेष्टा ही करते हैं। यों हा आते हैं और यों ही संसारमें  
 जाते हैं। समारने बधनमे मुक्त हाना पठिन वान है। वे ही पार  
 डा सरते हैं जो पराय दास नहीं बनते। हम लोग परकी ममतामे  
 ही घूम रह हैं।

(२।१२।४०)

३. ऐसा प्रयत्न करो कि परका अयलम्बन दूट जावे। परक  
 अयलम्बनमे ही स्वाधीनताका अभाव होता है।

(२।८।४१)

४. यदि आत्माको समारम रखनेवाली कोई शक्ति है  
 व परार्थीनता ही है और बल्याण करनेवाली कोई शक्ति है  
 वह स्वाधीनता ही है। परार्थीनताका मुख्य पाठ सिखाने  
 नैयायिक और स्वाधीनताका पाठ सिखानेवाले हैं जैनग्रन्थ।  
 दोनोंम जो परार्थीन हैं यह सदैव अकिञ्चि कर है, क्योंकि  
 स्वयं तो दुःख पर ही नहीं समता।

(०१५)

५. यदि आत्माकी उत्पत्ति स्पष्ट है तो परार्थीनता  
 परार्थीनताके उपासक हैं वे क्वापि आत्मशापित नहीं हैं

(१३)

## दुख

१. किसीका अपराध नहीं, अपनी निन्दित  
 दुःखकी जननी है।

चित्तशक्तिमत्त्वप्रता मत आने का । व्यपत्ताही दुःखका मूल है ।

( २७ । १० । ४८ )

२ संसारक मनुष्यादी प्रवृत्ति मरच्छानुमार हानी है और व अविद्या अपने रूप परिणमाया प्राप्त है परन्तु जब व परिणमते तब नव मनुष्य रूपे पात्र हात है । इगतीय यदि यद मानना छोट दन कि पदार्थाना परिणमत अपने अतुल्य होता है ता दुःखकी बाड घान नगी ।

( १० । ११ । ४८ )

३ बहुत ज्ञानता दुःखका मूल कारण है ।

( २७ । १२ । ४८ )

४ प्रमत्ता आपमे भिन्न पदार्थों का निरन्तरकी कल्पना है जहा मिथ्या कल्पना दुःखका मूल है ; क्योंकि तिमै हमन अपना मान लिया हमका परिणमत उमर अर्थात् है, हमारा परिणमत हमार अर्थात् है । हम ज्ञाना परिणमोंका एक रूप घाना प्राप्त है यही मनुष्य दुःखका कारण है । यदि दुःखमे छूटना चाहते हा तब पर पदार्थोंम सम्बन्ध छाड़ दा । यका सब दुःखोंम छूटनेका उपाय है । दुःखका मूल कारण अपना अज्ञानता है अज्ञानताका निरास तिमने किया यही मानत है ।

( २ । ९ । ११ )

५ संसार दुःखमय है । दुःखका मूल कारण ज्ञानलता है । अज्ञानताका उपादन माह कम है । माह कमर अयम मिथ्यात्व और रागादिक उत्पन्न हाते है । जगत हमर काय जहा हात तब तक आ माम शांति नहीं हाती । काय हातर अनन्तर मुनरा शांति हा जाता है । जैसे जय फाय कपायरी उ पात हानी है तब अयका अनिष्ट माननेका विचार जाना है । उमर अनिष्ट हानेसे यथापि हमे हृद नहीं मिलता परन्तु दुःख दनजाला कपाय है अत

कपायका अभाव ही मुक्तका मूल कारण है। अतः निह दुःखसे वचना हो वे कपायको त्यागें।

( १६।१२।५१ )

## तृष्णा

१ तृष्णानन्ता इतनी भयङ्कर और गहरी है कि ससारकी सारी सम्पदा भा इमने एक कोण तकको नहीं भर सकता। अतः ममभावसे ही उमकी पूति हो सकती है। हम चाहते हैं कि ससारके समस्त पदार्थ हमारे उपयागमें आये, सम्पूर्ण ज्ञान हम हो जाये, किन्तु यह विचार नहीं करते कि कल्पना करो यदि सभी पदार्थ तुम्हारे उपभोगके लिए तुम्हें प्राप्त हो गये परन्तु उनका उपभोग एक कालमें तो नहीं कर सकत। एक रूपपर ही विचार करो, सत्र रूप-ज्ञान तुम्हारे समक्ष है परन्तु तुम एक कालमें एकहीका तो उपभोग करोगे फिर भा दूसरेके दर्शनका अभिगाथा बनी ही रहगी। कभी सत्र रूपोंका दर्शन एक कालमें नहीं हो सकता। इमा प्रकार सत्र इन्द्रियोंकी व्यवस्था जानो। ज्ञानकी भाषाही बात है। अतः यदि शांतभावको चाहते हो तत्र यह अशांतिके कारण त्याग दो। आभास जो परिणमन है वह आत्मा तक ही रहने दो।

( १५।११।५१ )

## हिंसा

१ अहिंसाका अर्थ है—हिंसाका अभाव जहाँपर होता है वहाँ पर अहिंसा होता है। 'प्रमत्तयोमात् प्राणव्यपरोपण हिंसा।' जहाँ प्राण दश हैं, पाँच इन्द्रिय—स्पर्शन, रसना, प्राण, चक्षु और श्रात्र, तानत्रल—मनोत्रल, उचनत्रल और कायत्रल, आयु और स्वासो-च्छ्वास। कपायने घशीभूत होकर जहाँ इन प्राणोंका घान हो जाता है वहाँपर हिंसा होती है। परकी हिंसा होनेपर यदि प्रमत्त योग



नीं तत्र हिंसा नहीं होता । हिंसामे मूल कारण प्रमत्तयोग है । जहाँपर यह है वहाँ पर अथवा घात भले ही न हो आत्मीय ज्ञान शून्य-सुख प्रीयता घात तो जाना ही है अतः प्राणोंका घात ही हिंसा है ।  
( २९, ३० । ८ । ४८ )

२ दा प्रसारके काय है एक शुभ, दूसरा अशुभ । इनका विस्तार ही मन काय बताप है । उद्द काय लाकने उपनारक और शुद्ध अउपनारक हात हैं । जैसे हिंसा, भूठ, चोरा, मैथुन, परिषद मे काय लाकने अथनका और परमा कष्ट देनेवाले हैं । हिंसामे पर जीवता ही घात जहाँ हाता, अथना भी घात होता है । यहाँ तब कि हिंसकर द्वारा निम्नी परक प्रानक अभारम आपरा ही घात हा जाता है । हिंसा यह पाप है चिमने जगतका प्राहि प्राहिसे व्याप कर रकना है । हिंसामे मूल कारण कपाय है—

“यत्प्रलु कपाययोगात् प्राणाना द्रव्यमात्ररूपाणा ।

व्यपरोपणस्य करण मुनिश्चिता भवति हिंसा ॥”

ममा अमयादि पाप हिंसामय हैं—

“आत्मपरिणामहिंसनहतत्वात् सर्वमेव हिंसैतन् ।

अनृतचरनादि केवलमुदाहृत शिष्यबोधाय ॥”

आत्मामे परिणामका जहाँ घात है वहाँ हिंसा है । अमत्यादि पापाम आत्मपरिणामका घात ही ता होता है । अतः अमयादि चितने पाप हैं सभी हिंसा हैं । शिष्याका बाध करानेके लिए यह भी हिंसा है यह बताया है । परमाथसे यही पाप है । परमाथसे आत्मामे जो माह राग द्वेष हाते हैं यही हिंसा है । रागादिक परि ष्यामोंका न जाना ही अहिंसा है ।



स्वतन्त्रताके सुप्रभातमें



## स्वतन्त्रताके सुप्रभातमें

संसारकी दशा इस समय भयङ्कर है। भारतवर्षमें मनुष्यात्म परम्पर सहानुभूति नहीं इसीसे विदेशी लोग यहाँ आकर अपना मत्ता जमा लत हैं और इनका बुद्धू बनाकर अपना स्वराज्य नमाते हैं। अतः परस्परमें सहानुभूति रक्खो, किसानों भी पैर भावना न रखो शत्रुको मित्र माना यदि वह जरूर है तत्र शांत वानेका प्रयत्न करो।

( २७।७।५१ )

२ आन रात्रिके १२ बजे रात भारतका स्वतन्त्र मत्ता मिलगी। समय परिवर्तनशील है। चिनके राज्यम सूर्य अस्त नहीं होता या व ही भारतको राज्य सम्पत्त कर रह हें। संसारमें उचित तो यह है कि मनुष्यका निरंतर ऐसे वायाओं करना चाहिय चिमम प्राणी मात्रको वष्ट न पट्टये। जीवन तथा लक्ष्मी क्षण भङ्गुर हैं, न जाने कब दसरा अरधि आ जाय। अतः जिन नीतमें उपयोगकी शुद्धता हो वही नीति उत्तम है।

( १४।८।४० )

३ आन भारतवर्षके प्राणियोंको पूर्ण स्वराज्य मिला। (मागरम) चिलके अन्तर उसका उत्सव था। २०,००० रास हजार रतता हागी। मरने हृदयमें उल्लास था, महिलावग रडा प्रसन्न ग। हर एफ मनुष्य छा, वाताफ, बालिकाओंके मुख पर प्रमन्नताकी ध्योति मलरना थी। प्रबध सरादनीय था। यह सन हुआ परंतु प्रापत्ति कालमें परस्पर सहानुभूति ही उत्तम हागी।

( १५।८।४० )

७ स्वराज्यता तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपना प्रेमी है। अपने-अपना उपति निर्मल परिणामोंसे दार्ता है। चाहे तौकिये न चाहे पारमाथिन हो, मारनाटकी स्वराज्यता स्थायिना नहीं।

( १७।८।४३ )

५ यह जमाना बहुत ही मनुष्यमय है। लाया निरपराधी मनुष्योंकी हिम्मा निम्नतासे माथ टा रही है। स्वराज्यमें आशा वारि जाति रहनी परन्तु हुआ मन्त्र विपरीत ही—सात समार अशातिमय हो रहा है। इसका मूल कारण तो विद्वयता का ही था हमको ज्ञान शिवादा जाती है उगम आमतस्वरी मिद्विना नाड पाठ नहीं पढ़ाया जाता। बरल—'साओ, पाओ, मुग्धमे रहा' वही मितयाया जाता है।

( २०।८।४३ )

६ समारम इस समय अशातिता साम्राज्य है। भारतके दो विभाग हो गये, एक तो हिन्दुस्तान और दूसरा पाकिस्तान। हिन्दुस्तानमें कामकाज राज्य और पाकिस्तानमें मुगल मानाया राज्य। पाकिस्तानमें रहनघात हिन्दू, सिक्ख तथा जैन महान मङ्गलम हैं। लायाका निम्नहत्या हो रही है, वैदिक मन्दिर, गुम्बदारा तथा जैन मन्दिरोंका ध्वंस कर दिया है। मृतियोंका तोड़ फाँट दिया है। सड़कोंकी सफाई का शास्त्र व उपाय भस्मसात कर दिया है। काड मुननयाला नहीं। ना गवर्नर भारत हैं व एमा प्रत्येक जहाँ निजाते निम्नसे प्राणियोंकी रक्षा हो। यह मन्त्र अनथ परिग्रह पिशाचसे पीडित मनुष्यों द्वारा हो रहा है। बलात्कार पृथक धर्म परिवर्तन कराते हैं, मातृगणोंको, उनके प्राणियोंका बल करनेमें रञ्जमात्र भी विद्वयी जीयोंका दया नहीं आता। अहिंसाका महिमा अपरम्पार है परन्तु उमके पालनेका पात्र होना चाहिये। इस समय न तो व ऋषि हैं, न वे मुनि हैं जा

अपने चमत्कारके द्वारा बुद्ध करते। एक गाँधीजी हैं, उनका अभिप्राय साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत अच्छा है परन्तु ऐसी बर्रर जातिके साथ भारतका सम्बन्ध है कि एक पक्षान्ते लो गाँधीजी को दयाता मानते हैं परन्तु दूसरे पक्षवाले उनके भावोंका विशय आदर नहीं करत, अन्यथा शांति होना असम्भव न था। पहले नाआर्यालीमें निरपराध लाग्यों हिंदू धमवालोंकी मन्दि लुटी, खा यगका सती-य अपहरण किया, जय विहारमें उन्क प्रतिभार हुआ तत्र इस पक्षने नेताओंने उनको दया दिया। विद्व हिंदू दयावाले थे मान गए। फल यह हुआ कि पक्षान्ते महत्सगुणा नुमशान हिंदू धमवालोंका हो गया उन्क विशेष बात हो गई कि कोई न्पाय शांति रक्षाना नहीं।

७ समारम इस समय भयङ्कर उपद्रव है, पक्षान्ते का निमम सहार हो रहा है, अराजकता हो रही है। कारण जो पुरुष इसे दमन न करगा व विपत्तिमें अत सनका उचित है कि राष्ट्री रक्षा करनेमें लगा दये।

( ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ )

८ आज परम दयालु महामा गाँधीजी अत हो गया।

९ समारकी नशा अत्यंत माचनी उपकारी एवं कल्याणना कर्ता हो उसको मानते हैं।

१० भारतका महान आमा शुक्रवारने ५ बने एक मनुष्य द्वारा है

वन्दूकमे परलोन मियार गया। मंसार कपायना पुञ्ज है, एसे एमे मनुष्योंका निघास है चितकी निदयता घचनातात है।

( १।२।२८ )

११ आन गोंधार्नी के शयनी भस्मको श्री जगद्गुरुलालजी नहरूने उठाया, प्राय सत्र स्थानाम उतरा। भस्म प्रसहित की हुई। भारतयप ही क्या समार भरकी शांति चानेनाला महापुरुष था।

( २।२।४८ )

## देशका दुर्भाग्य

१ भारतयप परापकारा हपि आदि महापुरुषाका चितना उत्तम दश था आन उनना हा अपनी गुणगरिमासे गिर गया है। पत्रिम दशकी सम्भ्रतासे केंदल विषय पोपक कार्याका भारतने इस समय अपनाया है। जहाँ प्रथमायस्थाम मग, माम, मधुका त्याग कराया जाता था वहाँ अब तीना अत्रुरूप मान चारर नरं बिना गृहस्थोंका निराद नहीं हाता। बालकाको औपधिम मगपान करानेकी चेष्टा की जाती है। बाडे दिन पहिले काई माबुन आदिका स्पश नहीं करना था, आन उसने चिना स्त्रियाका निराद नहीं हाता। सत्र असंगत काय हा रह है। अंमजाम चा गुण थे उह भारतने नहीं अपनाया। व समयका दुर्नपयाग नहा करते थे, चिमको जो वचन देते थे उमका निराह करत थे। उहाने भारत वपनी महिलाआसे सम्बध नहीं मिया प्राचान वस्तुआका रक्षा की, चिया प्रेमी थे, स्वच्छता ररते थे इत्यादि।

मुसलमानोंम भी बहुतमे गुण हैं। जैसे एक बादशाह भी

अपनी जातिके अदना आदमीके साथ भाननादि करनेमें सहाय नहीं करता। यदि किसीके पास एक राटी हो और १० मुसलमान आ जायें तब वह एक एक टुकड़ा खाकर सन्तोष कर लेंगे। नमानके समय कहीं हों वहींपर नमान पढ़ लेंगे। परस्परमें मैत्रा भावना रखेंगे। यही कारण है कि जो भारतमें उन्हीं मर्यादा हा गइ। वह अपनाता जानते हैं। यदि उनमें सामान्य गानेका व्यवहार और गाय भूमोंको मारनेका व्यापार न होता तो उनका गणना मध्य मनुष्योंमें हाती। अब हम लागाका स्तर जातियकि सदगुणाका अनुकरण करना चाहिये। उनके विशेष गुणाका आदर करना चाहिये और अगुणोंको त्यागना चाहिये।

( ३ ४ । ७ । ५१ )

२. मद्गृहस्थता सबसे पहला लक्षण 'यायापात्तवन' अथात् 'याय पूषण धनका अवन कर। 'यायका नियचन क्या है ? सब काइ जानता है कि चिम द्रव्यापाननम प्रमत्तयाग है वह धन वदापि 'यायानुग्रह नहीं हाता। सिद्धांत ता यह है कि चितने द्रव्य समारम है उनमें परिमत्तका व्यवहार रूपी पुद्गल द्रव्यम हाता है। आकाशादि अमूर्त द्रव्य हैं, निरिचारी हैं, सब साथ उनका सम्बन्ध एक सदृश है। रूपी पुद्गलमें विश्रुति है। उसका परिणमन नाता प्रसार है। उसका पञ्चद्रिय प्रिय करता है। सामान्यतया सबके उपभोगम यह आता है। कोई न राइ उसका अनुचिन उपयोग करते हैं। मशा मनुष्य चाहते हैं कि हमना यथेष्ट भानन मिले। इसके अर्थ नाना प्रकारके यन्न करत हैं। मनुष्यके भाननके लिए—आटा १॥, दूध १॥, ची १—, शाक तथा लहई आदि कुल मिलाकर १॥) में यथेष्ट निराह हा मरता है, परन्तु चिमरे पास पैसा है वह ५) म भा वृत्त नहा हाता। ५) मद्यपानम ही व्यग्र कर देता है। इसके लिए बडे बडे



धनार्जन करता है, घुस लेता है, ढाका ढातता है १०) का धाती जाड़ा ३०) म बेचकर भी सन्तोष नहीं करता ।

( २४।७।५१ )

## धर्मके नामपर ?

१ नुनसर ( चत्रलपुर ) ग्रामम ३-५ घर विनोयाता जैनियाहे हैं । गरीब हैं । दर्शन करनमे भा लाग उह राखत हैं ।

( २९।१।४७ )

२ आनका यायना गला घोटकर धमके काय कराये जात हैं ।

( १३।३।४० )

३ मदिदरनीम प्ररचनम ब्राह्मण क्षत्रिय वर्णकार आदि मभी आय । जैन धमकी रुचि हुइ परतु लागानी विशाल हन्य नरीं परना अपनावे नहीं, धर्मको पैकर मग्नि मान बैठ हैं ।

( १०।४।४० )

४ मदिदराम अनाप मनाप द्रव्य पडा है और रिमारे उप यागम नहीं आता । दन ता बीतराग हैं । व नगतका यही अपदश द गये कि यदि कन्याण करना है ता हमारा मार्ग अर्द्धार कर ।

( ५।७।४७ )

५ बहुतसे महाबुभाव मुक्तसे यह प्रत्र करते हैं कि आपकी दस्साओके पूजा करनके विषयम क्या सम्मति है ? तथा हरिनतोरि मदिदर प्रवेशमे क्या सम्मति है ? मैं तरणानुयोगका आगम तो जानता नहीं परतु जत्र आगममें उनका पद्धम गुणस्थान लिखा है उमरे अनुसार वे स्वयं यहाँ तक पहुँच सकते हैं । प्रतोंको देव पूजा

स्वयं आ गया। अतः मेरा सम्मति तो उनके पक्षमें है। रहा यह बात कि आप लोग माने या न मानें यह अन्य बात है।

( ४, ५।३।४८ )

६ गापाचल पर्वत [ लश्कर-ग्वालियर ] के बीच अनेक जैन मूर्तियाँ पत्थरोंमें बनाई गई हैं। बहुत ही सुन्दर और चित्तार्पण हैं। परन्तु जत्र यत्नोक्ता राय हुआ उन लोगोंने धमायतर्का ध्वस्त कर दिया। राय मत्तोन्मत्त हाफर मनुष्य घोर पाप करनेमें नर्त हिचकता।

( १२।५।४८ )

७ आन यहाँ पर था महिसागर दिग्म्बर मुनि आय। लोगोंने चर्चाके लिये प्रायना की थी फिर क्या था? आप रहने लगे किम्के यहाँ भोजन कर। किसीके शूद्र जलना त्याग है? वस्साआके यहाँ भोजन तो नहीं करते। परस्पर नानियोंमें (अन जातीय) निगाह तो नहीं करते? आदि अनेक मानव जानिके अथ उपदेश था।

एक भिण्डनिवासान कहा—‘मेरे शूद्र जलना त्याग है।’

‘किसके समक्ष लिया?’ मुनिने प्रश्न किया।

‘श्री १०८ सूयमागर महाराजके ममथ दिया था।’ श्रावकने उत्तर दिया।

‘रह ता उत्तरवा मुनि हैं, प्रतिमाको स्पर्श कर प्रतिज्ञा ला।’ श्रावक मन्दिरमें गया और प्रतिमा स्पर्श करने आया। आपने उस कृत्यका कराया। श्रावक फिर नीचे आया, पडगाहे गये, परन्तु आत्मार देनेवाली औरतके मुँहसे यह नहीं निकला कि—‘मैं वस्साके घर भोजन नहीं करूँगी।’ अतः मुनि भोजन छोड़कर भग गये। स्टेशन पर साथके मनुष्योंके साथ भोजन करके चल गये। माम माम चला होता है, यहाँसे भी ६०। चला...

साथमें मोटर है, हर जगह चढ़ा होता है, पञ्चम काल है अज  
यही धर्म रह गया है ॥

( १ । १ । ५१ )

८ आलस्य हरिचन समस्याकी प्राय जैन जनताम चर्चा  
रहता है । एक पत्रका कहना है कि धमका अधिकारी प्रत्येक  
मनुष्य हा सकता है । उनम गुरु भा धमका अधिकारी है, क्योंकि  
आत्माका जा स्वभाव है वह प्रत्येक प्राणाम है । परन्तु अनादि  
कालम प्राणियकि कमका सम्बन्ध है निम्ने कारण आत्माण विवृत  
हा रहा है । उनम उत्तर दा भेद हा गये । असती और सती ।  
असती तो मन रहित होनेस सम्भारणके अधिकारी नहीं । मनी  
वीरोम चाहे व दय, मनुष्य निर्यञ्ज या नारकी काई भी हों,  
भाग्यता पाकर आत्मरक्षणका वाचन जा सम्यग्दर्शन है उमके पात्र  
हा सकत हों । यह जा सम्यग्दर्शन गुण है वह मनी जीवाम उदय  
हाता है । यही आत्माका ससारसे मुक्त होनेम मूल कारण है ।  
इमका सम्बन्ध साक्षात् आभासे है । परन्तु उमम निमित्त कारण  
बाह्यम देवादिकका श्रद्धा न भा है, परिणामाकी अपत्ता इमम काइ  
बाधा नहीं । परन्तु व्यवहारम जा वम करना चाहते हैं उन्हे देव  
मन्दिर आदिम जाना चाहिय । देवके दर्शन, गुरुकी श्रद्धा और  
आगमकी श्रद्धा हानी चाहिय । इसम एक अन्य महासभाम अनु  
यायी है यह कर्ता है कि जा अस्त्रद्वय शूद्र हं यह मन्दिर नहीं  
जा सकत । उनर जानेसे अव्यवस्था हो जातगा । अत न तो व  
मन्दिर जा सकत हैं और न शास्त्र छू सकत हैं । इसीका लक्ष  
व हरिचन मन्दिर प्रवेश त्रिलका निरोध कर क रहें ।

हमरा पत्र दिग्गजर जैन परिषद्का है कि यदि हरिचन भी  
मद्य, मास, मधुको त्याग देवे और बाह्यम शुद्धतामे आर तब वह  
भी श्री जैन मन्दिरमें आकर भगवान्के दर्शन कर सकता है । जय

पशु व्रत धारण करनेका पात्र हैं तब मनुष्य कुत्रमे जन्म लेनेवाला यदि निर्मल आचरणका धारी है तथा हिंसक न हो तब क्या धर्मका पात्र नहीं हो सकता है ? पुरुषार्थसिद्धयुपाय में—

“मद्य माम धौद्र पञ्चोद्गुम्परफलानि यत्नेन ।  
हिंसाव्युपरतिकामे भोक्तव्यानि प्रथममेव ॥”

यह उपदेश मनुष्य मात्रक लिये है। केवल जैन मनुष्यके लिये हा नहा है। प्रत्युत विचार कर देखा जाय तब जैनियाम तो प्राय मद्यादि सेवन करनेवाल दम्य ही नहीं जाते तब उन कुत्रका यह उपदेश है भाड। यदि हिंसासे बचनेकी प्रयत्न इच्छा है तब प्रथम मद्यपान, मांसभक्षण और औषधिम जा मधुरा उपयोग करत हा उसे त्यागा। यदि न त्यागागे तब यह लिग्या है—

“अष्टानिष्टदुस्तरदुरितान्यमूनि परिवर्ज्य ।

जिनधर्मदेशनाया भवन्ति पात्राणि शुद्धपियः ॥”

अर्थान् यह जा आठ अनथ पपक मूल हैं तबतक इनका त्याग न करोगे तबतक जैन धर्मकी देशनाके पात्र न हागे।

अब आप हा शांत मस्तिष्कसे विचार कर उत्तर दीनिये यदि किमा हरित्तने क वस्तुओंका परित्याग कर दिया और धर्म मुनना चाहता है तब उसे शास्त्र सभाम न आने दागे ? बैठनेका स्थान भण्डपम ही ता हागा, या बाहर निराल दागे। धर्म तो व्यक्तिगत सम्पत्ति है। जा आत्मा मझी है, याग्य है, चाहता है, यदि आप उसे रोकोगे तब महती अज्ञानता है। प्रथम तो ऐसे मनुष्य आन सुभागम लग जाते तब यद जा अनथ पगुवव हो रहा है अनायास कम हो जायगा। तब स्वयमेव अहिंसा धर्मकी प्रचुरता ससारम होनेका सुअवसर आ सकता है। तार्किकर भगवानने यही तो उपदेश दिया—“अहिंसा परमो धर्मः” यह

धर्म सिमा जाति विशापा नही। धर्मका सम्प्रथ आभासे हे। सभी आत्माओंमें यह शक्ति रूपसे विद्यमान है परन्तु हमना पूर्ण विनाश मनुष्य पर्यायम हाता है।

( ७ ८, ९, १२। १। ५१ )

६ समाजम हरिजन समझ्याका लेख परस्परम वैमनस्य ना रहा है। मगना! संसारकी चेष्टा मद्यना आत्मीय उत्कर्षकी रहती है, यह न्तम है। परन्तु उत्कर्षके साधनोंको भी ता मंग्रद करना परमावश्यक है। लखि मनुष्य अन्यको तुच्छ गिने है तथा निसस हमारी प्रशामा न हा गेम न्तमस उत्तमके भी निदोष चारित्र हाने पर भी दोष प्रगट करनेम नही चिन्तते। मनुष्यानि अपने स्वार्थके लिये समाजकी स्थापना की और तो पुस्कार्गी हुए गहाने अपनी सत्ता कायम की और अपने कायम लिय निम मनुष्याम स्वीकारता दी ध यालानरम यही कहलाने लगे। अज्ञान चित्त लागाने घस्याका स्वच्छ किया बह धोरी और चिन्होंन मात्र बनानेना कार्य किया यह नाड कहलान लगे। इमा तरह भङ्गी चमार प्रादि अनेक चातियो हा गयी। मनुष्य समान हाने पर भी कायके भेदमे वाड तुच्छ नाड र्य हो गय। उच्चता आत्मामें पाप त्यागमे हाना है परन्तु अर जो उच्च चातिम पैदा हुआ वर अपनेको उच्च मानता है।

( २६। १। ५१ )

१० कासा कातलपर विद्या है। आपन हरिजनान विषय में दृष्टुन हुद् व्याख्यात दिया। यनों तन वर गय नि यद् म्प्रश्या म्प्रश्या रोग जैन वमम नरी, हिद्द ममम आया है। यदि जैनियाम ऐसी ही प्रवृत्ति रहा तब मुझे वन्ना पडेगा कि आप लोग नाममे नहीं तो परिणामसे हिद्द वन जायेंग। जैनधर्म अत्यंत विशाल है। इस धर्मकी यह विशालता है कि चारों गतिके जीव जो सही पञ्चेन्द्रिय हें वे अनन्त संसारक दुःखोंकी हरनेवाले

सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर सकते हैं। धर्म विसा जाति विशयका नहीं, धर्म तो अधमके अभावम होता है। अधम आमाका निवृत्तानस्थानो कहते हैं। जस तस धमका विनाश नहीं तसक मत्र आत्माँ अधम रूप ही रहतीं हैं। चाहू मादण हो, चाहू अत्रिय हा, चाहे वैश्य हा, चाहे शूद्र हो, शूद्र में भी चाहे चाण्डाल हा चाहू भङ्गा हो—सम्यग्दर्शनके होते ही यह नीच कोई जातिका हो पुण्यात्मा जाय कलाना है अत विमीका हीन मानना अनुचित है।

( १९।२।५१ )

११ काना काललकरजी ने जा कहा वह प्राय हरिजन विषयक था और मनुष्य समाजके नात जनका उपकार करना ही चाहिये। यह ता यहाँ तक कह गय कि 'चैनधर्मम घण व्यवहारकी प्रथा न था। यह तो हिन्दू सम्प्रदायमे ली हुई वस्तु है। यदि चैन जनता इमे अपनावगी तस में उक्त हिन्दू कर्हूंगा क्यानि स्पृश्या स्पृश्यता उहीं का ध्यय ह।

( २१।२।५१ )

१२ ज्ञानका आदर नहीं। जा कुछ द्रव्य लोग व्यय करत हैं मन्त्रिकी शाभाम लगात हैं। ज्ञान गुण आत्माका है उसका प्रकाशम न द्रव्य लगात हैं और न समयका सदुपयोग करते हैं। केवल मादणम मद्गममर आदिका फल तागार तथा वेदीम स्मरण आदिका चित्रकारी करार नत्राने विषयको पुष्ट करते ह। आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-ग्राह्य है उसको तृपित कर राग और द्वेषके द्वारा किसीका शत्रु और क्लिप्तानो अनिष्ट मानकर निरंतर परको अपमाने ही हु खने पात्र बनते हैं।

( २४।२।५१ )

१३ जैनधर्म विश्व धर्म है, प्राणीमात्रके कल्याणका कारक है परन्तु आवसलन मनुष्याने जे अपना धर्म समझ रजरा है।

जिसीने उच्चष्टिमे नहीं देखत । सदा तज करि जात अन्यको  
उम्हा पात्र नहीं समझते ।

( २० । ३ । ५१ )

१४ मभा मुनिवाचाने हात हुए भी तीव्र शत्रुपर नानावन-  
का कोटि माया नहीं । धनिक बग गाल सामर्षी द्वारा मुद्गर मना  
बन्में ही केरत अपना रूपया रच करनम अपनी प्रभुता मानत  
हैं । जिसीने यह परिणाम नहीं हात कि वहाँ एक विद्वान सत्राध्याय  
करनेके लिए रह । करल पत्थरादि जड़ापर उपरी चमक दमकमे  
प्राणियास मनरो माहित करनसे रूपयना उपयोग करते हैं । प्रथम  
तो इन गाय वस्तुओंके द्वारा आमाका क्रुद्ध भा कल्याण नहीं  
हाता । द्वितीय वा कल्याणका माग है 'कपायका कृशता' सा इ-  
श्याय माममीसे उसरी त्रिपरीतता दुरी जाना है । कृशत  
और पुष्टताम शत्रु है । त्रिपयास सम्बन्धमे कपाय पुष्ट हाती है  
और ज्ञानसे त्रिपयास प्रेम नहीं हाता सा न्न दानोंम मानमाध्याय  
एक रूप से श्रमाव है ।

( २० । ३ । ५१ )

१५ आनकल धर्मका मम दम्भम रह गया है । लम्बी पूजे  
जाते हैं ।

( २१ । ४ । ५१ )

१६ किसीका तुच्छ रूपम देखना धमका स्वरूप नहीं । या  
कपाय परिणतिका काय है तथा कपायोदयम जिसीने भी अल-  
कहना अन्याय है ।

( ६ । ५ । ५१ )

१७ तालवहट ( भौसी ) म एक रामस्वरूप योगी हैं  
सस्कृतने अच्छे विद्वान् हैं, साहित्यने आचार्य हैं । आप योगी  
अन ब्राह्मण लाग इनसे बद् प्रेम नहीं रखते जो सजाताय ब्राह्मणों  
रखते हैं । आप हाइस्कूलम अध्यापक हैं । सस्कृत पाठशाला प्रा-

बेट चला रहे हैं। उमम कई हरिननोंको विरारण मध्यमा तर परीक्षा उत्ताण ररा चुने हैं। यह सत्र उा घणालाको अप्रिय प्रतीत हाता है। न जाने लोगोंने इतना समीर्णता क्या अपनाई है? विद्या विभी व्यक्ति विशेषरी नहीं फिर भी इतनी समीर्णता क्यों? यह सत्र मोहका काय है जा हम ही उच्च बहलारों, चाहे कितना ही नीच बम करे।

( १२।७।५१ )

१२ जैतधम आ मयम है। लोगान उमे निन सम्पत्ति मान रक्या है। अतएव मन्दिर आदि ना धमरे आयतन हैं उनम अय लागारे आनेरा निषध करत हैं। माना, उनका बनाया ना मन्दिर है यह न्हवा है किन्तु उमम जो मूर्ति स्थापना करतें हैं वह भी नही है। फिर भी विसरी स्थापना करतें हैं यह उनका नहीं। उमम अपनी स्थापना कर ले या अपन पित्रादिकरी स्थापना कर लें तो अय का राध करनका अधिकार बध अि हो मरना ह परन्तु धीप्रान्तिनाप्रदेयरी स्थापना कर परकी रोमना सर्वथा अनुचित है। यह आत्मा निगादसे नहों एव धारमें अष्टांश नार जम हाता है निरनकर माथका पात्र हाता है फिर संनी मणुय हाकर मन्दिर जानेरा भी पात्र न हा बुद्धिम नहा आता।

( १५।१२।५१ )

१६ आनकल बेयल द्रव्य प्राप्तिके लिए ही धम काय होते हैं। निमने द्रव्य दिया उमरी प्रगसा हाने लगी।

( २१।१२।५१ )

## उच्चता और नीचता

१ ससारम सभी अपना उत्कर्ष चाहते हैं अपनेको काड



तुच्छ नहीं मानना । उसमें सिद्ध हुआ कि आत्मा स्वभावसे उच्च है वरुण तम कलाद्वारे द्वारा नीच सन्त हो रहा है ।

( ५१५१७ )

२ जितन मनुष्य हैं सब अपनेका उच्च समझत हैं । किसी तरह उतरा ऐसा समझना संगत भी है क्योंकि सारा आत्मा है । स्वभाव स्वल्प ज्ञाता दृष्ट है । उच्चता और नीचता व्यवहार मोहक का आधिपत्य भावसे होता है । जैसे मद्यपान कर मनुष्य उमन हो जाता है । उस समय उसका ज्ञान व्यर्थ हो जाता है वरुण मार्दराज निमित्तम हुई जो उमत्तना है त वृत्त है । यह मनुष्यका स्वभाव नहीं । यदि मनुष्यका स्वभाव हाता तो सदा उस व्यवहार की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती दृश्य जाता, अतः सिद्ध हुआ कि ज्ञाता ज्ञाता आत्मा स्वभावसे ही है । इसके अतिरिक्त चित्तने भाव हात हैं व सप जीपाधिपत्य है । उनसे परकृत जान ममता व वरना । अतः जो मनुष्य अपनेका उच्च माननेकी चेष्टा करती है वह भी स्वकीय परिणामोंसे गिरा हुआ है । जैसा वह वैसा यह । उक्त तो यह है कि परपदार्थोंम तत्र नित्यबुद्धि दृष्ट जाती है तत्र अनायास ही उच्चता नीचताका भाव स्वयमेव विनिर्णय हो जाता है ।

( २१२१५१ )

३ उच्च और नीच व्यवहार समकृत हैं । आत्मा न तो उच्च है, न नीच है, यह तो ज्ञाता दृष्ट है ।

‘एष वि होदि प्रमत्तो न अप्रमत्तो जाणओ दु जो भावो ।

एव भणन्ति सुद्ध णाओ जो मो उ सो चेय ॥’

४ आत्मा न तो प्रमत्त है और न अप्रमत्त है, क्योंकि जहाँ तक प्रमादना उदय है उसे प्रमत्त कहते हैं तथा प्रमादने अभावम अप्रमत्त कहते हैं ।

( ८१५१५१ )

## स्त्रियोंकी समस्याएँ

१ कन्याओंका शिक्षा देना और समाजका कोई भी ध्यान नहीं। विवाहमें समाज लायका रूपका व्यवहारी हैं परन्तु कन्या निज कर्तव्यको समझ इसका कुछ भी ध्यान नहीं।

( ५।२।५१ )

२ प्राचीन ऋषियोंने यदा तर्क लिख दिया है कि—“स्त्री-शूद्रौ नाभिधीयताम्” स्त्री और शूद्रको नहीं पढ़ाना चाहिए। यह अन्याय नही ता क्या है? स्त्रीका पूजन करनेका अर्थिकार नहीं।

उमर हाथका बना नैसर्गिक दायग, मुनिआदि सब मानन लेते हैं, प्रतिष्ठाम इन्द्राणी जनता है, परन्तु न जान इन मनुष्याने जितने प्रतिबंध लगा रखे हैं? अन्य काम छाडा, यहाँ तब आज्ञा कि एकात्म अपनी नामे भी मत जाना। 'मा' यद् उपलक्षण है। स्त्रीमात्रका ग्रहण है। परिणामोंकी मर्लानता जैसे जैसे श्रद्धिका प्राप्त हुई वैसे वैसे यह सब नियम धने।

( १२।७।५१ )

३ स्त्री समाजकी उपेक्षा न करो। स्त्री समाज उदार और सरल हार्ती है। हम ताग उत्तरी उपेक्षा करते हैं। इसका जा फल हुआ सो प्रत्यक्ष है। आप जानते हैं स्त्री समाजका नीरोग रचना ही मनुष्य समाजके हितका मायक है। यदि स्त्री समाज नीरोग न हागा तो मनुष्य समाज कभी नाराग न रहगा परन्तु इस आर हमारा अणुमात्र भी लक्ष्य नहीं। शरीरका पापन भावना है यह भोजन स्त्री जगका क्षानिकर मिलता है। मनुष्य ( पुरुष ) समाज जन मानन कर लेता है तब स्त्रीसमाज मानन करता है। विचारता तो सही, जन २ यजे तब पुरुष भावना करते रहते हैं तब बादम

उनका अक्सर आता है। प्रथम तो भोजन गूढ हो जाता है, तूमर भोजन घेता टल जाती है। वैद्य लोकाका क्ता है कि—

“याममध्येन भोक्तव्यं यामद्वयं न लभयेत् ॥”

यदि किन्नामा मनुष्यामे पहल भोजन करना पड़े तो वे याम अन्न खाता है वा अन्न खाए य मया प्राकृत रहता है। पर य भी बात है कि वा उत्तमस उत्तम वस्तु होगी यह व पुरुष यों को गिना देगी। उन कारणोंसे उनका नारागता निरस्थायिनी रह रहना। तथा पुरुष ताग मयादामे अधिक विषय सेवन करते हैं उमका फल नाना राग तथा राजयक्ष्मा आदि राग भारतपर्ये घृष्टिपर है। अतः जा मनुष्य समाजना हित चाहते हैं उह मय प्रथम सदागरी बनना चाहिये। दा या नीत सानानरे वाद मताग पैदा कानी लिप्साका त्याग देना चाहिये। ५० वपर वाद अपन जावनका आत्मबन्ध्याणम तगा देना चाहिये।

( २७, २८। ७। ११ )

## अभ्युदयका ओर

१ यह निश्चित है कि यदि भी मनुष्य किमीमे भी तिर स्कार वाक शब्द मुननरं तिय प्रमत्तुत नदी। शिष्य गुम्मे अध्ययन करता है परन्तु शिष्यता मयदा सुरक्षित रहे यह नहीं चाहता शिष्य हो कर भी निरंतर ठने की भावना करता है। जब भगवानकी पृनापर निवृत्त हाता है तब यही पाठ ता पढता है—

“तत्र पादौ मम हृदये मम हृदयं तत्र पदद्वये लीनम्  
तिष्ठतु जिनेन्द्र ताम्बु यावन्निर्वाणसम्प्राप्ति ॥

तत्र पद भेरे हियम, मम हिय तेरे पुनीत चरणोंम।

तबलों लीन रहे प्रभु जबलो न प्राप्ति मुक्तिपदकी हो ॥”

इसमें सिद्ध होता है कि कोई भी जीव अपनी जघन्य अवस्था को नहीं चाहता। देखिये मूर्खसे मूर्ख जत्र मदिदरनीम दशन करने जाता है तत्र यही तो प्रार्थना करना है कि हे भगवन् ! हम ममार वचनमे मुक्त कर दो। इसका यही अर्थ तो हुआ कि हम भगवान हो चारें। अतः जत्र आत्मा उम पदको चाहता है तिससे ऋष्ट अय पद नहीं तत्र यह कार्य करा तिसमे यह मसार वचन ही न हो। फिर तुम्हें भगवानके पास जाकर याचना करनेकी आशयकता न हागी कि—हमारा वधन काट दो, क्योंकि वधनका मूल कारण कपाय है, कपायके अभावमे वधन नहीं हाता। अतः जिन्हें भगवान हानेकी अभिलाषा है वे भगवानसे प्राचना करना त्यागकर भगवन्निष्ठ भागपर चलनेकी चेष्टा करें ता अनायास भगवान हा जावगे और यदि पत्र पर न चलकर केवल भिग्यारी जने रहेंगे तत्र भगवान जनना तो अमभव ही है भगवानका नाम भी न ल मजागे।

( २५।७।५१ )

२ ममारका कल्याण नहीं कर सकता है जो स्वयं ममारसे विरक्त हा। तिस मनुष्यन अपने ऊपर शामन नहीं किया यह अयका शामक हा यह सर्वथा असम्भव है।

आचरुल मत्र मनुष्य नता जननेके प्रयासमे हैं। जो मनुष्य आत्मीय गुणोंका विनाश करनेमे असमर्थ है, निरंतर ज्यम रहता है, तिसका कोई लक्ष्य नहीं एसा उदश्यशून्य मनुष्य क्या उपकार करेगा ? जो स्वयं दरिद्र है वह परका पोषण क्या करेगा ? जो स्वयं अधा है वह परको भाग नहीं दिया सकता। इसी तरह जो मत्रय आभज्ञानशून्य है वह परके हितका वाता क्या करेगा ?

( २६।७।५१ )

## नशा निषेध

१ मन्नाद आदि लाग मगपान बहुत परत हें, प्राय २) तकनी मदिरा पान कर नात हें शत इनके पास द्रव्य सवय नई होना । भारतराज्य, मभापति, मंत्री आदि इन्ही अनिर्म प्रयत्न शांत हें परंतु राजा द्वार कैसे हा ? इसपर श्रुति नहा । ना लोग प्रतमानम शत्रु वरतात हें केवल उनसे छूत हें कि इनस घृणा मत करा । उचित हा ह, परंतु जयतक इन लागाम मग सामधा प्रचार हें तयतक ना ता लाग इाके साथ ममानताया ययहार करम और न उनका उत्सव भा नागा । उनर साथ घृणा आदि सहनम दूर हा करता हें । प्रथम ता राज्यकी आराम मग धिनी राका जाय, क्याकि मग ( मदिरा ) पान करे मनुष्य उ मत्त हा जाना हें आर उमत्त अथस्थाम अपन स्वरूपना भूल जाता हें । इमका कारण हें कि मदिराया प्रभाव इन्द्रियादिका पर पड़ता हें । व काय ता करता हें परंतु विपरीत करन लगती हें । यहाँ तन देखा जाना हें कि उमत्त मनुष्य मानाना भाया और भाया का माना मानन लगता हें । मदिराये नशाम अनर त्रिरुद्ध चष्टाँ करन लग जाना हें । यदि उत्तर सुरम लुत्ता भा मूत्र कर दन तत्र उसे 'भधुर हें, भधुर हें' एसा कहत हुए भा लज्जाया पात्र नई हाता । इमके अनिरिक्त-गार्ता, चरम, अदिरा नियर किया जाय । भारतप्रथम कराहा रुपयका आथ मरवारका तमाकूम हाती हें । आच यह छू जाय तत्र कराहा आदमी तिराग हा सकत हें । राज्य ना चाह सा कर सरता हें । क्याकि सत्ताया वता हें । आज ना भी अधिनारी पग हें वट स्थय सिगरट पान करत हें । यहाँतर देखा कि अधिनारा मद्यादि पान भी करते हें । अय विभागके अधिनारियाया कथा छोडो, जा वातर्कना शिज्ञा देत हें व मय

सिगरेट पान करते हैं। उनके द्वारा सुबुम्बार बालन कर्हातिक शिष्टाचारका पालन करेगा अत यदि देशका श्रेय चाहते हा तब इन नशाकारक पदार्थोंका त्याग करो। तिनमे परिणामाम विवृति पैदा हो एसे पदार्थ भा त्यागो। तिन पदार्थोंके भक्षण करनेसे विशेष राग उत्पन्न हो उनका भी त्याग करो। उदरमे न्यून भानन करो, निरंतर भाननका क्या मत करा। मनका मलीनता तिनमे हा ऐसे मद्य पत्थ भी त्यागा। जो मनुष्य मिले उसे त्यागकी बात जनाओ।

( २९।३०।६। तमा ६।९।५१ )

## भयङ्कर भूल

४ लाग जिन कार्याम प्रम भानत आ रह हैं उनसे भिन्न कामाम आवश्यकता हानेपर भी एक पैसा व्यय नर्हा करना चाहते। देखा गया है कि मन्त्रिम नरान वन्धिकाका आवश्यकता नहीं फिर भी उमम वर्ग जडवा देंगे, (१०,०००) तन व्यय कर देंगे। पडौममें जाति भाइ आचाविनामे भा रहित होगा ता भी उमे १०) पूँतीका न दगे। मिद्धचक्रि गानम नरारा रुपया व्यय कर देंगे किन्तु एक विद्यार्थीका पढानेमे (१००) भा न देंगे। पञ्च कल्याणकी आवश्यकता न होनेपर भी (५०,०००) रुपया व्यय करनेमे विलम्ब न करेगे। किन्तु अपन ग्राममे हा धम शिक्षा देनेसे लिए एक अध्यापकको (५०) देनेमे इनका हृत्प्य द्रवाभूत न होगा। दशम लाग्या मनुष्य अत्रके कष्टसे पीडित होनेपर भी लाग विया हादि कार्याम लाग्या रुपया प्राप्तका तरह फूँक देनेमें मनोच न करेंगे। लाग्या रुपया शरीरका चमक दमकमे स्वाहा कर देंगे परन्तु अत्र बल्र विहीनकी रत्नाम ध्यान न देंगे। दयदर्शनादि करनेका समय नहीं मिलता ऐसा कहाना कर देंगे परन्तु मिनेमा

आदि दग्धनम आँव गगध हा जाव इमरा पररा नवरग । धिष्  
इन भात्रोंया ।

( १९ । ० । ५१ )

## ग्रामोको ओर

१ प्रामाण नर यहुत हा गरल और उदार हात हैं । इनम  
मायाचारका प्रवेश नहीं होता । तथा विषयोंके लाटूप भी नहीं हाते ।  
कारण भा एसे प्रामाण नहीं हात अतः एक सहरार निमा  
हात हैं ।

( १० । ३ । ५१ )

२ अभी तर प्रामाण मनुष्योंमें जातिग्य मवार हैं । पर  
मायमे देग्वा चार तर यह मर यत्रहार तौकिर मनुष्योंका नष्टिम  
महत्ता रगता है । शुद्रापयागरी श्यामनता इमका इच्छा है और  
न चर गगरा न्ययागी हा समता है ।

( १९ । ३ । ५१ )

३ प्राय जहों व्याख्यातोंका विषेय प्रचार है तथा यहुत  
ममुदाय नहीं निवाम करता है, अनेक धमायतन जहों हैं तथा  
विशेष विचार साधन विषय हे यों अनेक अनर्थाकी राशि देरी  
जानी है । इमका कारण यह है कि जहों पुष्कल विषयोंकी सामग्री  
पाई जाती है । यह प्राणी अनात्मि परका निज मानता है । जहों  
पर यह विषयोंकी पुष्कल सामग्री हाता है जहोंपर जाग विषयोंके  
लाटुपी हो जाते हैं और जव विषयोंका पूणता नो हाती तव जैसे  
वन पेसे पृति करता चेटा परत ह । इमके लिय अनक अनध  
करो हैं । हिंसादि पाँच पापाम प्रशुक्ति करनम अनायाम प्रयत्न  
हाने लगते हैं । आ दिनको न विषयाम न फँसता हा जहो  
शहरका निवास नहीं करना चाहिय ।



( २० । ५ । ११ )

## सूक्ति सुधा

१ ममारकी यही दशा है कि जो वस्तु श्रान निम रूपम है कल उमसा अभाव है । ममारकी यह परियननशा दल किमी भी वस्तुसा अभिमान मत करा । तुम स्वय जा श्रान हा कल नहीं रहोग । जो पदाथ श्रानर तिन तुम्हार हैं कल व मय पलट जायेंगे । तुम स्वय परियतनशील हा पलट जाश्राग ।

( १ । १ । ४७ )

२ श्रीमहावीर स्वामीकी मनोहर मूर्तिक दशनसे वीतरा गतासा अनुमिति हानी है । शाररसा मुद्रा और है । वीतरागता आत्माकी परिणति है उससा दशन नहीं होता य ना अनुभव गम्य है ।

( २ । १ । ४७ )

३ गल्पवादमे स्वपर मत्तारजनकी चेष्टा श्रकाय कारिणी है ।

( ६ । १ । ४७ )

४ मंसारम सभा मनुष्य कीर्ति पाते हैं परंतु कीर्ति दाना पुण्यके अधीन है । पुण्यसा लाभ शुभ परिणामोंके अधीन है तथा शुभ परिणाम उत्तम वायोंके बनसे हाते हैं । उत्तम कार्य यह हैं जिनसे प्राणियोंको वष्ट न पहुँचे । मत्रमे उत्तम तो यह जीव हैं जो स्वय अपना आत्मासा कष्ट नहीं दते । जो मनुष्य अपनी आत्मा को समार यातनाआमे नहीं बचा सक्ता यह परसा बचार यह असम्भव है ।

( १२ । १ । ४७ )



५. आगमना का द्वारा ही प्रायः अनक जात्र आत्मतरय की गान करते हैं। परन्तु श्री सुदुन्द महाराजका कहना यह है कि आगम, गुरुपरम्परा तथा तर्क-ज्ञान, मभीसे परे म्धीय अनुभवम प्रस्तुत निणय करा। निम पदार्थना निणय आगमसे वपमि नहीं हो पाता उसका निणय अनुभवसे मिनिर्णम हो जाता है।

( १६।१।४० )

६. भाननरी विशपता न जानामे है शुद्ध हा तथा मादा हा।

।

( ३।२।४० )

७. जल तर न मनसा वशम करनकी चेष्टा करो। भोचन नी गृनता और पर पदार्थम भमता बडा। भमताना मूग कारण अनात्मीय पदाथाम आत्मीय बुद्धिकी रल्पता है। इम अनात्मीय बुद्धि का ग विना यह भमता छूटना अति कठिन है।

( ५।३।४० )

८. जा मनुय मद्वाचशील हाता है उसका पद पन्म पतन होता है।

( २५।३।४३ )

९. यतमानम अधिक सरत हाना रौमिअ अत्रिना जात्रक है। यह समय इतना भयावह है कि मरल मनुष्याकी गणना पणुम का जाती है।

( २६।३।४७ )

१०. चित्तना स्थिरता तथा चञ्चलता दोनों ही शुभ और अशुभ हैं। मनाज्यापार चहों शुभ कार्योंम प्रगृत्ति करता है वहाँ पर चाह यह स्थिर हा चाहे चञ्चल हो शुभ हा कहुलाता है। जहाँ अशुभ कार्योंम प्रगृत्ति करता है वहाँ चाहे चञ्चल हो चाह स्थिर हो अशुभ ही है। मनरी चञ्चलता आत्मसुखकी घातक नहीं,

उमम जो कपायकी पुट्ट है वही इसको मसारमें पटकनेवाली है । चाहे वह शुभोपयोगकी साधन हो, चाहे अशुभोपयोगकी जननी हो ।

( १४।४।४७ )

११ अपने दोपारो कोई नहीं बहना चाहता, निरंतर महान धननेरा चेष्टा करता है, भन ही वाम पश्यता करे, यकी तो मूल है ।

( १५।४।४७ )

१२ लाकणकी मून्धा ही तोवम काय करनेम प्रगति कराती है । कायसे जो बचना है उमम भी यकी लाकणका कारण है । लान भयसे कोई पाप छोडना काइ माहमागका साधन नहीं । जैसे पित्त रोगक भयसे कोट उष्ण पदार्थ छोड देव तत्र वह उमरा त्यागी नहीं । इमी प्रकार नरकादि भयसे पापसे बचना लाभदायक नहीं, परमाणु मस्तुके मनन करनेमे ही आसाम होता है ।

( १६।४।४७ )

१३ मनुष्य पयायका प्रत्यव श्रण दुःख है । इसम प्रमान मन करा । शुभ परिणामोंकी परम्पराना घात मत करा । अशुभ परिणामाको आश्रय मत दा । गृन्थोंके मसगसे आमजति होता है ।

( १७।२।४७ )

१४ वास्तवम केवल पदार्थ ही रहना समारका नाशक है । जहाँ दो पदार्थोंका सम्पर्क है वही मत्र उपद्रव है । जा सृष्टि हमारे दरनेम आती है यह दा पदार्थके वितरण सम्बन्धसे उत्पन्न हुई है । दो पदार्थोंका तादात्म्य तो होता ही नहीं, बंध ही हाता है । जत्र इस प्रकारकी वस्तु भयांदा है तत्र हम उचित है कि इन पर

पदार्थों में अपना सम्बन्ध याग दें। आत्मा एक पदार्थ है, उसका लक्षण ज्ञानदर्शन है, उसमें भिन्न चित्त भी पदार्थ हैं उनमें दर्शन जानने की शक्ति नहीं, यत न ना उठ टुम बदन हाता है और न सुख ही हाता है। यह सब विकार आमद्वयम ही होते हैं। रागादिक भाव भी आत्मा हैं परन्तु प्राणित्तम म विपाकके उदयम होनेसे विवृत भाव है अतएव ह्य है। मध्या परका मानना उचित नहीं। यदि ह्य है तब अपन ही है। ह्य इससे है कि पर मिमिनेव जायमान है तथा आहुतता ननर है। क्षायिक भाव भी ता कमर अभावम हाता है, परिणामिक नहीं परन्तु ह्य नहीं। उपशमादि सम्यक्त्व भी ता कमर उपशमात्से होते हैं, उनका हेय नहीं कहा। जब क्षायिक सम्यक्त्व हाता है, यह पयाय स्वयमेव नहीं रहती। चारित्रके उदय हात ही रागादिक स्वय विलय जान है फिर भी उ हेय माता है क्योंकि रागादिक परिणाम आत्माका आहुतताके उपादक है। इस तरह उपशमादि परिणाम आहुतताके जनर नर्त। य भाव यद्यपि कमर उपशाममे हात है फिर भी इनसे उनम बड़ा अंतर है, य भाव कम बंधके कारण है, उपशाम भाव बंधन कारण नहीं। ना भाव आत्माका संसारम रुनाये व हेय है। चरणानुयागम जा त्याग वताया है उसका यही तात्पर्य है कि रागादि भाव छूटे तथा चरणानुयोगम जा विधि है उसका तात्पर्य भी मात्रा परम्परा निवृत्ति पर ही है।

( २५।५।४० )

१५. मनुष्याका उचित है कि अपनी प्रतिज्ञास च्युत न हो अथवा उनकी वाङ् प्रतिष्ठा नहीं।

( २६।२।४० )

१६. शूरता ही संसार परम्पराकी नाश करनेवाला शक्ति है।

जा कायर होते हैं व न तो लक्ष्मि प्रतिष्ठा पाते हैं और न परलोकमें ही ।

( २३ । ६ । ४७ )

१७ परमाथसे पापाका प्रायश्चित्त 'पाप करनका अभिप्राय न रहे' यही है । परका विभव देख रिपाद न हा और निच गुणका प्रकाश हा, असम अभिमान न हा । अप हाणा नुरा नहीं है ।

( २७ । ६ । ४७ )

१८ जवनक अनात्मिय पदार्थमें रुचि है तवनक यही अपद्रव्य है । सम्यग्दृष्टिके भां ता भोचनान्त्रिका यही चेष्टा रहना है । आसक्तता ही उसमें कारण है । जा उसमें आसक्त नहीं, काल पाकर एकदम विरक्त हो जायगा ।

( ३० । ६ । ४७ )

१९ समार है । यहाँ ताम्र म्पाथ दग्गते हैं । तत्त्वन्प्रिय दग्ग हाणा चाहिण । यहाँ तो निसने स्नाय माधा यही मनुष्य बधने छूट गया । परन्तु वहा तो नहीं माधा ।

( १७ । ७ । ४७ )

२० जो मानव जातिका कल्याण करनेसे इच्छुक हैं उन्हें उचित है कि मनुष्य जातिका पञ्च पापमें रक्षित करे अथवा उन्नत दिन नहीं हो सकता । जो पापाचार छोडनेमें असमर्थ हैं वह मनुष्य बधनेसे नहीं छूट सक्ते । बधका करनेवाला पाप ही नहै ।

( १३ । ५ । ४७ )

२१ प्रतिकूल कारण उपस्थित होने पर यदि निन्दने उद्योग न हो, उद्वेग ही नहीं पदावांतरमें अथवा भाव नहा तो मनमें हमारी प्रवृत्ति कुछ मरल मागरी आर जा रहा है ।

२२ भूलकी वनि तुम स्वयं हा । निन्दित दग्गों पर आरोप करना अपनको गतम पटकना है ।

( २३ । ५ । ४७ )

०३ चक्षुस्वरूप निरूपण करनेवाला यहि उक्तुव स्वरूप या न जाने तत्र निरूपण स्वयं समः ता न मरता । निमित्त मिथी भक्षण न । श्री उ मिथीरा म्याद नहा या मरता । मिथीरा म्याद मिथीम नहीं क्योंकि मित्राम घतता ता । निमित्त चेतता । म्याम पदाय चानता गामात्र है । माता ही इमरा यह मरता है कि मिथी मधुर जाती है । यह भा ताता र्ति द्रव ज्ञान घालता है । अर्थात् य ज्ञानरा विषय मिथी माटी जाता है, नीम कटुय जाता है, मिच परपरी ( निच ) जाता है य ता । य ता विविक्त्य ज्ञान है, माहानीन है । उमरा विषय क्या है यद् हमारे ज्ञानमें नहीं आता । हमारा ना ज्ञान है उमरा अनुभव हमको है । हम छद्ममय ज्ञान विषयका नहीं फल मरता । कर्त्ताक ज्ञानका क्या विषय है, क्या मरवा अगस्य है ।

( २१ । ७ । ४० )

०४ संसारम प्रयक पदाय परिणमनशील है, कृत्स्न्य ता । निमा भी पदायका नाश ता होता । केवल पदायमात्र पर अवस्थाको त्याग कर अवस्थानतरका ग्रहण करता है । जैसे मृत्तिकाका घट बनता है । अध्यात् पण्डित मिट्टी गुण पयायम स्वयं रूपसे थी, पत्रात् लुम्भसार द्वारा पानीन सम्यग्गमे गीर्वा अवस्था म हुइ । पत्रात् स्थामादि अवस्थाथा द्वारा घट रूप हा गइ ।

( २१ । ८ । ४० )

०५ बहुत मनुष्योंम मल्पवाद ही का पुरुरता रहती है । एतात्तम चित्त विलेपताक कारणोंकी प्रचुरता ता रहता । चित्तम व्यग्रताका कारण प्रतिकूल सामग्रीका मद्भाव है । जहाँ प्रतिकूल सामग्रीका मद्भाव रहता है वहाँ चित्त शुद्धताका उपत्ति नहीं होती । संकोशताका उदय होता है ।

( २१ । ९ । ४० )

२६ शरीरमें कोई राग नष्ट। वास्तवमें रोग ना आत्मामें हैं। जब आत्मामें कषाय उपज जाती है तब वह उनमें शमन करनेमें अथ नानाप्रकारके मनोरथ करता है। मनोरथ कितने ही घर परंतु भोगनेमें तिय करता स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द ही पड़े पत्त हैं।

( १३।८।४७ )

२७ संसारमें दुःखका मूल कारण परपत्न्यायके स्वामीपनमें है। जहाँ स्वामीपन है वहाँ इष्टानिष्ट कल्पना जाती है। जो इष्ट हुआ उसे अनुकूल और जो अनिष्ट हुआ उसे प्रतिकूल मान लेना ही दुःखका कारण है।

( २२।८।४७ )

२८ वास्तवमें चारित्र गुणका एक ऐसा भी विलक्षण परिणाम होता है जो आत्मपर जन्मके क्षण पर भी मरण और निवृत्तता कारण हो जाता है।

( २१।९।४७ )

२९ जो छात्र अपनी लक्ष्य पठन पाठनमें अट्ठास अथ सायम लगाता है वह गन्त मार्ग पर है। मनुष्यका एक लक्ष्य स्थिर रखना चाहिये। बिना लक्ष्य स्थिर रखे उन्नति काना कठिन है।

( २७।९।४७ )

३० संसार उपद्रवारा घर है। यह धन्य है जो संसारसे पृथक् हो गया। संसारसे प्रथम होनेका मूल मन्त्र पर पदायम मून्धारा त्याग है। परम जो निवृत्त्य बुद्धि है उसे त्यागा। कहनेमें कोई बड़ी बात नहीं परंतु करनेमें कष्ट है।

( २९।९।४७ )

३१ मनुष्यका साहस चाहिये बड़े-बड़े काय कर सक्ता है ।  
( ३० । १ । ४७ )

३२ प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना विजयका कारण है । यदि आत्मा चाहे तब समार पर विजय प्राप्त कर सकता है ।  
( ३० । १० । ४७ )

३३ वास्तवम पित्तरोगीका मिसरी नहीं स्वर्गी । एवं  
चित्तके हृदय मलिन है व धममे विमुक्त रहते हैं । पर पदार्थको  
अपना मानना ही उनका कार्य है ।  
( ११ । ११ । ४७ )

३४ क्षत्रका निमित्त पाकर परिणामोंकी निमलता हो जाती  
है । बहुत बार एमा दरसनम आया कि कालादि निमित्त पाकर  
परिणाम निमल हो जाते हैं ।  
( १८ । ११ । ४७ )

३५ बुद्धिका न्यूनतामे शक्ति हानर भी उत्तम काय करनेसे  
वञ्चित रहते हैं यह सब अज्ञानका फल है ।  
( २९ । ११ । ४७ )

३६ मूर्ख मनुष्याका रक्षायमान करना अति कठिन है ।  
उन्हें स्वपरविषय नहीं, क्योंकि उन्होंने भी शास्त्र पुस्तकोंका  
संमग नहीं किया ।  
( ८ । १२ । ४७ )

३७ आनन्दल समारम वन पुस्तुपार्थवी सुरयता है ।  
( ९ । १२ । ४७ )

३८ परमेश्वरसे सुखाभिलाषा करना सुखका साधक नहीं ।  
( १३ । १२ । ४७ )

३६ समारकी अवस्था यही है कि जिसका उदय है उसका नाश भी ।

( १६।१।४१ )

४० भ्रितव्य दुनियार है । प्राणियोंके मुर्र दुग्ग उर्मी पर अरुलम्बित है

( १७।१।४८ )

४१ कर्लपन् प्राप्तिरे लिये केवलभाक्ता परमात्रश्यकता है । रात कहनेम सुख भी नहीं लगता परन्तु तद्रूप होना कठिन है । हम लोग पर पदार्थोंम गुण दोषकी त्रिचैना करत हैं । पर ही गुणारा उत्पादक हैं, और पर हा दोषका जनक है, यही हमारी विरुद्ध वारणा है ।

( २०।१।४८ )

४२ तिम व्याख्यानरा कहकर आप स्वय उसकं करनम अशक्य हो तप उस व्याख्यानसे क्या लाभ ? अधकी लालटन मन्श है । तिमनो श्रयण कर कोइ आचरण न करे उसमे भी क्या लाभ ? मर्मा इमरा तिव्य नहीं परन्तु चलमानसे ज्ञानमात्र लाभ है ।

( २२।२।४८ )

४३ अतर्षिमे काय लो, काई तिमिना नहीं, वायदृष्टिसे रुद्र कार्य नहा होता ।

( २६।२।४८ )

४४ भावनाका फल कभा नहीं मिल मरता । भावना ता यदो तक होता है नि त्रैतोक्यसे प्राणियोका कन्याण हो परन्तु होना अशक्य है ।

( १५।३।४१ )



२१ उपरान्त कारण अर्नीण है। अर्नीणताका मूत्र कारण रमारी लाटुपता है।

( ११४।४८ )

२२ यानता निवाह कराना कठिन है। यह दना काइ तत्र नही रहता। मय सद्ग त्यागना कठिन नहीं। आमाना कटुपता गाना कठिन है।

( १०।४।४८ )

२३ जो परया उपदेश करत हो पण्डित यह विचारा रि म स्वयं म्मका पान करतें हूँ या नहीं। स्वयं पान रि पाना म्मका उमका उपदेश दना उदयारे द्वारा रि गय म्मका ये पण्डित सन्त है।

( २९।५।४८ )

२४ परत सम्प्रथमे ता भाय आत्मान हात हूँ व उम सम्प्रथम अभावम मित्र जात ह। जमे मोहन म्मम आमान मित्र्यागन हाता है यह भाय मोहनय है। निम पातम माहादय नता उम कालमें यह भाय भी नहीं। इसी तरण धारित्रमाहने उदयम ता भाय हाते हूँ जनी भायही व्यवस्था जानना। छायापशमसे भी जा भाय हाते हूँ व म्मके अभावम नहीं हात। अत वा य औदयिक, औणशमिक तथा छायापशमिक भाय ह मभी परके मद्भावम होनेसे त्यागन योग्य है। एव पारिणामिक भाय ता रि द्रव्यनी सत्ता ररत है व या क्माके अभावम हातना छाविक भाय ही निय है अत उमारी आर लच्य दा।

( २३।५।१।६।४८ )

२५ समारका मसन्न परनेनी चेष्टा करना मरुमराचिनाम जल साननका प्रयास है।

( २।६।४८ )

५० उडा कलङ्क यह है कि तुम जो कहते हो उम पर श्रमता नहीं करत ।

( १६।७।४८ )

५१ कर्मविपासना ऋण समभना चरित है । ना श्रण लिया है उसे विना तकातामे दे दना चान्दिय । तकाता होनपर दनेम आताफानी महती नीचता है ।

( २०।७।४८ )

५० मत्समागम उमे कन्त है निसरु कारण कपाय उत्पन्न न हो ।

( २२।८।४८ )

५२ गामर्गोरपना यन् अर्थ नहीं कि अपनेना पब और परवा तुच्छ समझा । अपितु अपनी आमासो वाधाणि कपासामे कलङ्कित न करो । परसी अपेक्षा न करो, यही तो समार पथनसी जड़ है । परसो दग्धर दृष्टा जने रहा । तुम्ह क्या, अधिकार है कि किमीस निमल या समल कदा ?

( २६।८।४८ )

५८ अनादि अनन्त अचान् स्वरुप चैतय ही जायना लक्षण बतलाया है । यन् लक्षण सभावस्थायापन है । इमना यन् तात्पर्य नही कि लग्न अनादि अनन्त हानेमे हम स्वरुपसे ज्युत हो गय ।

( १।९।४८ )

५५ समयसारना कर्तुवम अधिकार जानना कठिन है, फिर भी जाननेना अपेक्षा यत्रार्थ श्रद्धान हाना अति मरल नहीं तथा मरल भा है । किन्तु हम उमरुप हानेसी चेष्टा नहीं करते । आमाजा समार पथनमे निवृत्त बरना कठिन नही ।

( ७।९।४८ )

५६ चाम्त्वयम ज्ञान आत्मानं सत्तदा हा जाना है तब निर्भर  
र लिय विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नही होती, क्योंकि जो कर्म  
उत्थम आवगा उस कालमें यदि आत्मान आगामी कर्म बंधका  
कारण राग द्वेष नहीं तब निर्मोही ही ता हागा ।

आगममें उक्त निरराको मन्त्र दिया है जो सत्तदा पृथक् होती  
है । 'गाम्त्रनिरोध सत्तदा' तथा 'कर्मफलानुभवन निर्जरा'  
यहाँ पर फलानुभवन क समय यदि रागद्वेष न हो तब निररा होना  
कार्यकारिणा है ।

आत्मान मन, ज्ञान और काय व्यापार यदि राग सहित हां  
तब ज्ञानावस्थादि कर्मात्त व प्र अशक्यम्भायी है । उपयोगमें साध  
प्रति रागात्मिक नहीं है तब ज्ञान ज्ञाना अमम्भर है ।

( २१, २९ ३० । १ । ४१ )

५७ तत्प्रज्ञानमे तात्पर्य यह है कि आत्मान आत्मा और  
परवा पर जाना । इसका अर्थ तात्पर्य है कि आत्मान पर निमित्त  
जो विभाजित होत है उक्त त्यागा । ज्ञाननामात्र बंधाभावमें कोई  
प्रशस्त कारण नहीं ।

( ४ । १२ । ४१ )

५८ जिसमें अद सत्तदा हो जाता है वह आत्मा संसार  
ज्ञानसे अल्प कालमें ही मुक्त हो जाता है ।

( १ । १० । ४८ )

५९ संसारमें जो काय कारणदूटसे हाता है वह अनित्य  
हाता है । उम्भरा प्राप्तिमें लिय परिश्रम करना व्यर्थ है । जैसे  
शुभोपयागत पुण्यकी प्राप्ति हाती है और पुण्यमें उद्वृष्ट गतिना  
लाभ हाता है । वह गति आयुक्रममें श्रमभ्रममिष्ट जानी है । अत  
उसमें लिय प्रयत्न करना व्यर्थ है । यही नियम सभा कार्याम लागू  
होता है । कारणदूटमें जो काय उपपन्न होत है व नाशवान् होत

हैं, अतः उनमें लिय प्रयास करना कोई महत्त्व नहीं रखता। अतः जो वस्तु कमाने अभ्यास उत्पन्न हो रही ध्रुव है।

( २१।१०।४८ )

६० इस समय समारम मन्त्र भीतिरसादना साम्रायि ह। सत्र मनुष्योंके भाव नाम और भागम आसक्त हैं। निरंतर धन और विलासिताके अजनम अपनी शक्तिना उपयाग कर रहे हैं। चाहे उसम आमघात हा, चाहे परघात हो इसना ध्यान नग।

( २२।१०।४८ )

६१ पर पदार्थोंम जहाँ आभीय बुद्धि हो जाता है वहाँ पर आत्मा विरक्त हो जाता है। विरक्तके अभ्यास ही समार है। अतः आश्चर्यना भेदज्ञानकी मुख्यता होना चाहिये। भेदज्ञान विना शुद्धा मोपलब्धि होना अशक्य है।

( २३।१०।४८ )

६२ आत्माना पुरुषात् यही है कि प्रथम ता पारोंसे निवृत्ति करे तदनंतर निव तत्त्वना बुद्धिका प्रयास कर।

( १९।१२।४८ )

६३ चित्तवृत्ति शमन करनना आ महलाघा त्यागनेकी महता आश्चर्यना है। म्या मप्रशामार लिय ही मनुष्य प्राय ज्ञानाचन करत है, धनाचन करते हैं, पर निन्दा तथा म्या म प्रशामा करत है। पर मिलता-जुलता शुद्ध नहीं।

( २१।१२।४८ )

६४ अपना अनादर जो करना है उसमे अयका आदर नहीं हा सक्ता।

( ३१।१२।४८ )

६५ परमार्थसे सत्र द्रव्योंका सुन्दरता तभी तक है जत्र तरु यह निवम परिणमन करते हैं। परिणमन तो निवम ही होना है।

सहजारी कारण भले ही राया-पत्तिम म्नायन हा परन्तु कार्यकी उ पत्ति उपादान कारणम नो हाती है । पूव परिणाम संयुक्त द्रव्य ही उत्तर पयायुक्त द्रव्यका कारण है ।

( १९ । ३ । १३ )

६६ ना काय करा म्मम यद् भाव रक्या वि फिर म्मे न करना पव । अगुभापचागरी रजा दूर र्दा गुभापयाग कायम भी यद् भावना रक्या वि म्मना फिर करनना अयमर आय । हमारा छा यद् वि म्मम है वि भगवान्ना स्मरणपर यह भावना भावा वि ह भगवन ! आपन प्रमादम मुक्त फिर आपन द्वार न आता पव । समारम रागभाव ही ना गुणका कारण है चान् गुभ हा, यह अगुभ हा । आपना भक्तिम आगगुणका विनाश होता है अत र्णी प्रशम्न है । आपसे अंतरना ना भक्ति है यद् फरा रागादिप रर है । अत उनका भक्ति प स्नह समार बद्धक है इमी लाय याज्य भी है, क्वाकि "गुणेषु अनुरागा भक्ति" गुणम जो अनुराग है वही भक्ति है । समारा जीवाम ना अनुराग है यह राग हीना पापन है । राग ही ससार बधना कारण है । परमप्रा म जो भक्ति है वह रागवर्द्धन ना क्योकि उनर जा गुण हें व रागनाशक ह । इसम भक्ति करनेवाका रागाच्छेत् गुणम अनु राग है । गुणम अनुराग है अत वह अनुराग रागना रद्धक र्णी, क्योकि वातरागनाम जा स्नह है यह रागवा नाशक ह । राग ससारबद्धन है फिर भी वातरागनी रचि वातरागभावना हा पुष्ट करनेवाकी है ।

( २० । ३ । ५१ )

६७ 'मयथा आगमन जाननमे ही आपरण हाता है' यद् नियम र्णी । गेमे मनुष्य देय जात है चिन् आगमका अंश मात्र भी ज्ञान तदा परन्तु अर्दिस्तादि व्रतोंका सम्यक् परिपालन करते

हैं। 'प्रमत्तयोगाद् प्राणव्यपरोपण हिंसा' इस सूत्रका अर्थ नहीं सक्ते परन्तु फिर भी हिंसा अथवा अमाना रक्षित रहते हैं। इसी प्रकार 'असन्मिदानमनृतम्' इस सूत्रका पद नहीं सक्ते हैं फिर भी मिव्या भाषण कभी नहीं करत। अदत्तादान स्तयम्' इस सूत्रकी व्याख्या आदि कुछ नहीं जानते किन्तु स्त्रानम भा परा वस्तुका ग्रहण भाव नहीं है। मधुनमग्रह' अथवा आराधना नहीं जानते किन्तु स्त्राय परिणतिसे आश्रय भागका भाव नहीं है। इसी तरह 'मूर्च्छा परिग्रह' इसका भाव अर्थ नहीं जानते फिर भी परपदार्थों मूर्च्छा नहीं करत। इसमें सिद्ध है कि आगममें जो लिखा है वह आमान परिणामविशेषका ध्यानमें रम्य शक्ति रचना रूपमें लिखा गया है।

( २५।३।५१ )

६८ तत्रपट्टिसे उद्धारस्था भ्रमण योग्य नहीं। कथिपर प० दौतरामजी ने ठीक कहा है—

'अर्धमृतक मम वृद्धापनो, रुमे रूप लगे आपनो।'

अथपि विचार कर देना जो तत्र उद्धारस्था कल्याण भागम पूण संपन्न है, क्याकि युवावस्थाम प्रत्यय आदमी वाचक हाता है। कथना है—'भाइ। अमा कुछ दिन ममारके काय करा पत्रान् बीतरागका मार्ग प्रणय ररना।' अन्धिर्या भी विषय ग्रहणकी ओर ल जाता है, मन निरंतर अनाप-शनाप सन्नप विरल्पक चक्रम फैला रहता है। अन्धे विप्रांत जन अरमथा वृद्ध हा जाती है तत्र चित्त मयमेव विषयाम विरह हा जाता है।

( ३०।३।५१ )

६६ मंदिर जानेका यह प्रयोजन है कि जानराग दूवनी

स्थापना देवदत्त रीतराग भावनी प्राप्तिने लिय स्वयं द्रव्यनिनेप  
 राग। वातरागने नामना पाठ करनेसे रीतराग न हा जाओगे।  
 ज्ञान मान अत्र अभ्यन्त पर रातरागताही प्राप्ति की है अत उस  
 प्राग पर अत्र गद्य वातराग हानेना पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ  
 और नहा कर्त यदा है कि जा रागादिभ भाग तुमम हा  
 चना आत्र न करा। अने दा, क्यात्रि तुमने उहे अनन किया  
 वा। न उनमे नरुह्य रहा।

( ११।४।११ )

२० आत्माका निरा, अनायास कल्पना दुइ कि आत्र  
 नाराय प० दत्रानन्दनीने घर आहार हाता चाहिय परन्तु उनने  
 नरे कपा नद मि। जहाँमे अत्र गये तो यहाँ भी काई न  
 वा अत्र नामर पर गये तत्र दया कि जहाँ पर नक्त प० जीनी  
 धमपत्नी हा आत्र दिया ॥ इससे सिद्ध होता है कि जा कल्पना  
 पुद्ध परिणामास की जाना है उसनी सिद्धि अनायास हो  
 जाना है।

( १२।४।५१ )

३१ ससारम मनुष्योना व्यग्रार प्राय य रहता है कि  
 म उत्तम कर्तारो। यह प्राय प्रत्येकवा आशाशा रहता है और  
 यदि यह सिद्ध हो तत्र तत्र सुग्या हा तत्र परन्तु गद  
 अमम्भन है। यत्रपि आत्माना स्वभाव न तो निर्मीसे जना है  
 और न निर्मीना जनाता है फिर भा यह शुभाशुभ परिणामोका  
 जना जनता है और उत्तरे फल स्वरूप अनन्त ससारका पात्र  
 हाता है। इसना पत्र करने लिय मग मतावा अध्ययन करता  
 है, उपाय मनमे ता आत्र हें अनेना करता है।

( १२।४।५१ )

३२ स्वच्छ एव अरुधच्छ भाग हा शुभाशुभ कमरा कारण

होना है। इन दोनोंसे भिन्न जो मरना उच्छ्वेतक धारण है। ममार मन्त्रिद वासना आत्मान ही होता है।

७५ इस जगन्म दो पन्थि देवनेवाला और दूसरा ना दमनने वण, शान् । य तो इन्द्रियाक द्वारा है, करण कर्ता भिन्ना नहीं होता। जान कहो, आत्मा कहो या अनात्मे है। इह काइ मेट नहीं पदाथ है यह हमसे भिन्न है सा श्री श्रद्धा नहा। आन तो मसारना कारण यह है कि दृश्यमान शरीर शरीरका निच समभा तत्र अनत्र करने पडत हैं। भूय है। उसे चत्र निच माना तत्र काय यह करता है भिन्नासे जगन्म है इमी शरीरका महार पाप यह है नि इम अपना मानता है।

७४ घतमानमें श्रम एस काय सिग्याण जाने निकल आव ।

७५ इम भयानर ज



अथ इमं किं विदमन् पर पदार्थो अपाया । अस्मी रक्षा  
 कणा वाहते हं यह अमम्भर है । ना पदा । आत = अस्मी पर्याय  
 फल रहेगी यह हमारा अर्थात् नहीं । यदि रह भी गड तो उमसे  
 हमसे क्या लाभ ? अरु सद्भावम पुष्पार्थी ना भाना भाव है  
 वह जना रणा अत ना पदा । समताम विगिन पदे चरणायुयोग  
 की प्राप्तिनुमार उ पदा । आगत वाहिय । अथपि पर पदा  
 वरुन समता नात नहीं, अतः अतः अतः अतः ही उत  
 अपनाते हैं । यदि अतः उत अतः न रहन तिया तत्र भुगना  
 आपर प्रवल अतः माना चाहिये । क्या वह उत समामे ही  
 अतः अतः है कि जानकार भा गतम पतत है । ना ज्ञान समार  
 धी व्यग्रमना अतः प्रत्यात = अतः युक्त मन्त्राध्यायी धान  
 छादा, अपहाना भा अथपि परात पर और अवाता उनम भित्त  
 मानता ह कि भा इम द्विनिगम पदा है । जा अपनी परिणतिवा  
 अपाताम हीन पुष्पार्थी है उमरा कभी बना नडा हा सक्ता ।

( २ । ५ । ५१ )

७६ 'हम न किसीके, काड न हमारा । भडा है नगरा  
 व्यवहारा ।

एतद् समभम नर्ती आता इमसे 'नगरा व्यवहार मिथ्या है'  
 यह कहोसे आता ? हाँ, यह बात अवश्य है कि जब हम किसीका  
 अपना मान लेते हैं तब उम पदाथक प्रति प्रेम करने लग जाते हैं  
 और वह हमें अपनाता है इम व्यवहारम हम दानोंम धनिष्ठ  
 सम्प्रध हो जाता है । यहाँ तत्र प्रेम हा जाता है कि एव अमरको  
 दग्ने बिना व्याकुल हो जाते हैं । यदि जगतका व्यवहार मिथ्या  
 वा ता यह दशा हम दानावी क्यों हु ? अतः मिद्ध होता  
 है कि मिथ्या कदना यह आशय है कि परना अपना मानना  
 दुःखदाया है । तथा व्यवहारना भूठ कहनेका तापय यह है कि

जैसा पदार्थ है तुम उसे वैसा नहीं मानते। इससे तुम्हारा ज्ञान मिश्रित है इसका भी यही तात्पर्य है। ज्ञान तो तुम्हारा स्वतन्त्र है परन्तु उसमें निम्नो निम्न मानते हैं या तुम्हारा नहीं। तुम्हारा जो वह तुम्हारे पास है। उमीरों निम्न मानो। जैसे दण्डम सुख स्वतन्त्रता है या तुम्हारा नहीं है। ना तुम्हारे ज्ञानम आ रहा है यही तुम्हारा है। यह भी परिणामन मिट जाना है अतः या भी तुम्हारा नही। ना वस्तु उसके मिट जानपर रह जाती है यही तुम नो। यह वस्तु भी परिणामनान्य नहीं। परिणामना पुन ज्ञानम लाओ यही वस्तु है।

( १३। १। १ )

५७ जोध दूर करनम पुष्पाथ नहीं है, पुष्पाथ नो उमे न हान देनेम है।

( १४। १। १ )

५८ परकी प्रवृत्ति जैसा होता है उमपर हर्षे विपात्त मन करा। विमार्ग सन्नासम मन रहो, यदि रहा तत्र ज्ञानी प्रवृत्तिना ज्ञान ही मत करो।

( १४ १५। १। ११ )

५९ अच्छे कार्यक प्रारम्भ करनेके पूर यह हृद मद्बन्ध कर ला कि अनर वित्राने हानेपर भी हम या काय अपश्य ही पूण करगे।

यही काम करा जा फिर न करना पडे।

( १५। १। ५१ )

६० पात्र तीन प्रकारके होते हैं जघन्य, मध्यम, उत्तम। इनमें सम्यग्दृष्टिओ जघन्य पात्र कहते हैं, विरताविरत (दण्ड विरत) पञ्चम गुणस्थानवाता मध्यम पात्र श्रीर मन्त्रविरत (मुनि) यह उत्तम पात्र होता है। ये भेद दान देनेकी मुख्यतामे

हैं। इससे सिद्ध हुआ कि चरणानुयोगके अनुकूल जो सम्यग्चि  
है वह नवय पात्र है और जो चरणानुयोगके अनुकूल व्रत पालता  
है वह मध्यम पात्र है और जो मद्भक्त पालता है वह उत्कृष्ट  
पात्र है। इन तान्त्रिक अनुमार में अपनेका नवय पात्र  
माता है।

( २१।५।५१ )

८१ नतुन प्रयास करना अचल है यदि वर कायने अनुकूल  
हो। रायन अनुकूल प्रयास नयन साधन होता है। वरल प्रयास  
प्रयासना फल नहीं देता।

( २४।५।५१ )

८२ जगतम अनेक पदार्थाना समुदाय है, था तथा रहगा।  
हमारा पिशप मन्वध मनुष्याम है, मयोंनि हमार वर व्यापार  
उहाक मटश है। हम ना करत है नही यदि दूसरा मनुष्य भी  
करता है तत्र हमार उसमे मेल हा जाता है। यदि हम तम्ना  
पीत है तत्र हमार अनायास उसमे स्नेह हो जाता है। चाहे  
उमना तम्ना पितानेमे हमार आधिक नय भी हो तो भी हम  
उसे न गिनकर हम उममे प्रम करेंगे। यदि काइ भूया मिल जात  
तत्र उम मनुष्यको उस द्रव्यमे भोचन न देकर तम्नाकाको  
वीडा तम्ना पिलाकर हम प्रमन्न हांग। आन इस जगतम यदि  
मनुष्य इस व्यसनको त्यागकर वर द्रव्य देशके उद्धारमे लगात  
तत्र करोडा रुपयना संग्रह हो सकता है।

( २६।५।५१ )

८३ चित्तना व्यवहार है भेदमूलक है। एक तो पर पदाथम  
व्यवहार है, वह तो भद्रशभदना अपेक्षा भिन्न भिन्न द्रव्योंम  
व्यवहार हाता है। जैसे शरार वस्तु पुद्गल परमाणुओंके पुञ्जमे  
निपन्न है। आत्मा ज्ञानदशनना आशय चेतन द्रव्य है। यहाँ

पर ना यत् विकल्प होता है कि यत् शरार हमारा है यह व्यवहार द्रव्यभेदमूलक है। यत् पर शरीर और आत्माका एक श्रवणगाही जा सम्बन्ध है वही इस व्यवहारका मूल है। यह भी अतन्तलमे देखा जाये तब अनात्सिसे जो आत्माका माहभाव चला आ रहा है वही इस व्यवहारका मूल है। जब आत्मा ज्ञानदर्शनका पुञ्ज है तब यत् विभाव क्या होता है। इसका उत्तर यह है कि आत्माका विभाव नामक शक्ति है, जिसके विपरिणमनसे ये रागादि परिणाम अनात्सिसे चले आ रहे हैं और तभी यह आत्मा अपरार्थी कटलाना है और तभी अनादिमे यह परिणमन चला आता है और तब मिटना होता है तभी मिटना है परन्तु माही जाय गमा सुनकर पुरुषार्थसं वञ्चित न हो नाय अतः यह कहा जाता है कि उग्रमे हा कायसिद्धि होता है। (२।१।५१)

२) हर समय प्रमत्त रहा। हर अवस्थाम परके हितक लिए ध्यान रक्खा। भावन समय पर करनेका ध्यान रक्खा। केवल अपना प्रयोजन पुष्ट मत धरा। जिसका भावन करा उसका प्रत्युपकार करनेकी भावना न रक्खा। श्री रामचन्द्रजीसी यह गति ध्यानम रक्खा—

“मध्येन जीर्णता यातु यत्प्रयोपकृत कपे।

नर प्रत्युपकाराया विपत्तिमभिवाञ्छति ॥”

हे हनुमान ! तुमने ना हमारा उपकार किया वह हममें ही जाँच हा जाय अथान् आपका प्रत्युपकार हमका न करना पड़। जो प्रत्युपकार करना चाहते हैं वे उम आपत्तिका इच्छा करते हैं।

जिसके घर भावन करा उप धमारदश दा। याद यह धर्म-पदग न माने तब आगामी कानम उमके घर पर भावनाको मत नाआ। उपदेशकी पद्धति एसी हा जिसमे यह सुमार्ग पर आवे

जो अपव्यय होता है उसमें सुरक्षित रह। धर्म क्या हमी पढ़ा जा सरतानासे उमके हरयम प्रयश कर जात। गृहस्थके पर पर अल्प समय लगाआ। एम शंभरा प्रयाग करा ना शंभ मुनरर आगत जनता ताभ उठा मरे।

भारतीयम दापना पद्धति कमभूमिर् समयसे चली आइ है। नर कल्पत्रासा श्रभार हान लगा तय लाग चुनकरके पाम गय, उनरी उत विनय की, अपन जापन निराहरा प्याय पदा उठान यरी नरा कि तुम इम सीमा तर की कल्पश्रामे फन ल मकर हा। उठान विनय क्रिया, उठान निराहरा प्याय प्रताया। य परस्पर आदान प्रदानरूपही व्यवहार है। तत्पारसूत्रम यरी ता तिगा है—'परम्परोपग्रहो जीवानाम्।' यह व्यवहार काम होता है एवमे नरी हाना। एम ना हागा यह ममारातीन काम परिणाम हागा। जैसे जात्ताम नहो रागात्कि विगति है यहा अयना आशयता नरी। रागादि विगतिना मै यह अथ मममा कि रागात् ओदयित होने है। उनम अद्वार ममरर न हा। यद परिणाम मम्यग्शनके हाने पर ही हा मरता है।

मम्यग्शन वर शक्तिरा श्रिकाश है तिसके हानेपर य ममार अनायाम ममात्र हा जाना है। यह नित्रय है कि मम्यग्स्थके ममान न नाकार कल्याण ररनयाता है और न मि या नर ममान अय अकल्याण ररनयाता है। फिर भी तीर्थो अनात्ि काामे ऐसा श्रक्षाताधरररा मम्यग् है जो नित्र पररा श्रिक नही हाने देता। 'इम धौन है?' यहा ज्ञान नही नर कल्याण अनन्याण का बात कहासे ज्ञात हा? मरसे पहिल ता यह जाननेका आव शयता है कि हम धौन ह? उहुतसे मनुष्य मके जाननरा आनम प्रयत्न करते है, व्याकरण, याय आत्ि शास्त्राना अभ्यास करत है। उत्तमसे उत्तम पुरपात्री सद्धतिमे सम्पुण आयको अय

कर दत हैं। अनेक तीयाम जाकर धम माधनका चेष्टा करते हैं, अनेक मह-तौसी धूना लगाते हैं, सय पञ्चामि तपते हैं, गङ्गा आदि महान नदियाम अजगाहन करते हैं, समुद्रके द्वार नलमे भी स्नान करते हैं, भूभागम प्रश कर समाधि लगाते हैं परतु आमा क्या है इसका बोध नहीं होता है। (७।१।५१)

८५ समारम गेमी प्रवृत्ति मत करा जा आभ्यन्तरमे बुद्ध हा और गहम बुद्ध ग। इमने नुम स्वय अपनेको ठग रहे हा। (२३।६।५१)

८६ धमशरणकी इच्छा मगना रहता है, मभी मनायोग पुत्र मुनत है परतु उपदश क्तव्य पयम नहा आता। इमका मूल कारण यह कि घनारी आभ्यन्तर आर्द्रता नहीं है। श्रीगुणभद्र मरामान कहा है—

“जना घनाथ वाचाला सुलभास्युद्योतिथता ।

दुर्लभा ह्यन्तरार्द्राम्ते जगदम्बुजिहोर्पय ॥”

अत जा यह चाहता है कि मेर उपदशाका प्रभाव लागी पर पड तय उमे मयमे पहिले म कार्यको स्वय वरना चाहिय। मुनि चमरी दादा मुनि ही द मस्त है तथा तिम पद्धतिमे मुनिधम का निरूपण करनम समथ होत है, अरिना विद्वान उमका निरूपण नहीं कर मरता। आजका सिद्धान्तमे ज्ञाना है परतु मपर आचरण नही करत, इमसे उम उपदशाका का प्रभाव नहीं होता। पदार्थका ज्ञान हो जाना अथ वरा है और उस पदार्थ रूप हाना अथ यात है। (१।७।५१)

८७ विहार करनेम अनेक गुण हैं। प्रथम ता एव स्थान पर निवास करनेसे जो स्नेह प्राणियोंम हाना है यह नहा होता तथा दशाप्तन करनेमे अनेक मनुष्याके साथ वमचचा करनेका अवसर आता है। अनेक देशोंके घन आदि दग्नेका अवसर आता है।

चलनमे शरीर आत्स्य प्रयत्नोना मंचारता हानेन श्रधा आदि शक्ति क्षीण नहा हार्ता। अत्र की परिपक्वता सम्यक् हार्ता है, आतस्यादि दुर्गुणाम आ मा मुक्ति रहता है। अनन र्ताथादि क्षत्राणे दशनता मुग्धर मिलता है। तथा किमी ति म्यानादि विशपन न मिलनम परीपद् सदन परनरी शक्ति आ जाता है। कभी दुजन मनुष्याक समागमम क्राधादि कपायन कारणाके सद्भावम जमाता भी परिचय हा जाता है। ( ३।७।३१ )

॥ सामायिर र्मी जीवक हाता है निमर म्यपरता भद हान हा गया हा। भेदज्ञानर अभावम सामायिर हा ही नहा मरता। जगतय यह आत्मा परका निच और निचका पर मानता है तबतक इस जातर साम्यभाय न्य नहीहा सरता। मर जीव कपायके प्रेर इम संसारम प्रवृत्ति कर रह है। जैसे जैसे कपायात्य हात है उतर अनुकृत प्रयत्न कर यद् प्राणी संसारम फाल यापन कर रह है। बहुत ही प्रजातम भाग्योदय हाव ता इम नीयका जीव और अर्चाधना यथाय ज्ञान हा जाय। यथाय ज्ञान हात ही पर पदाधाम निज्जन बुद्धि नहा हार्ता। निचतर बुद्धिक अभावम न तो उस पर पदाधम राग हाता है और न द्वेष न हाता है। अत मसारक नाशका उपाय करनवालाका इम मि यातर शत्रुमे वचना चाहिय। उचनेका न्याय करन श्रिका वदाना है। इष्टिक बदलनेसे हा न्यासिद्धि हा जाती है। हम न्यय ही इम कालम फैसे है जा जगत्से मिथ्यात्वना रर करनेकी चेष्टा करत ह। यही मनुष्य है जा आत्मीय परिणतिको शुद्ध कर अगुह्यतार सम्पक्मे पृथक् हा जाता है। ( ३।७।५१ )

॥ यार्गी भा मनुष्य ही हात ह। इम कालम उत्तरा हाना प्राय असम्भवमा हो गया है। नैत सिद्धातसे ता पद्ममयालके अत तक योगी जनाका अस्तित्व रहगा एमा पता चलता है

परन्तु प्रशुक्तिम श्रवणात्ता होना भी आगमात्तुल नहीं मिलता ।

( १६।०।५१ )

६० उपदेश निरूपेण हाना चाहिये । अभिप्राय यह होना आशय्य है कि हमम जो दाप है व दूर हों, आनुमङ्गिक अय का भी भला हो जाये । केवल परमा कन्याग्रहा इसम यह अभिलाषा लुप्त है कि हमारी प्रशमा हा । परापरादको त्यागा । आत्मगत तोषाका दूर करो ।

( १६।८।५१ )

६१ जो अपन उपर शस्त्रमा प्रयाग करे । हमका उचित है कि उमे पुण्यमाला समपित करें । कायाग्निस आरगम आरर जो चक्षुवाक्का प्रहार कर, या ताडन करे, हम उमके माय श्रमा जलना प्रयोग करें । निममे उसमा नाधाग्नि शान हा जावे । ठीक ही कटा है—

“अपराधिनि चैत्क्रोध क्रोधे क्रोध कथ न हि ।

धर्मार्थकाममोक्षणा चतुर्णां परिपन्थिनि ॥”

यह पाठ हम पढत ह, श्रोताश्रमा श्रयण कराते है, तथा श्रोताश्रोक धयगा शान्ता श्रयण कर फूले नहीं ममाते । उचनारी कुशलतामे जगनमा मुग्ध करना उच्चना है, प्रशमा उम वक्तारा है ना उमपर श्रमल करता है ।

( १७।८।५१ )

६२ समयमार, समय शान्ता वाच्य आत्मा हाता है । उसम मार क्या है ? मिद्धपयाय । मिद्ध पयायसे तात्पय केवल शुद्ध पयायसे जहाँ परके निमित्तसे आत्माम विरुत परिणाम न हो, केवल आत्मपरिणामन हो ।

( २०।८।५१ )

६३ मनुष्यमात्रमा सम्पर्क अच्छा नहीं । यदि सम्पर्कने धिना निर्वाह नहीं हो मर तो कमसे कम सम्पर्क रख, क्योंकि अन्तरगरी धीनरागता नहीं, उमरे अभायम ही इन पर पदार्थाका आश्रय लेना पडना है ।

( २१।८।५१ )



६२ मेरा यह ऋद्धनम विश्वास हा गया है कि अनिर र्गने पर र्गना विलुक्ता ही पराजित कर लिया है । यदि उनका कोई बात अपनी प्रकृतिर अनुकूल न र्च तत्र व र्गाघ्र हा शास्त्रविहित पत्थायना भी अन्यथा कहलानेकी चेष्टा करते हैं । ( २० । ९ । ११ )

६१ पुण्य पाप यह दोनों काल्पनिक पर्यायें हैं मयथा मि या नर्ती, विलय जाती हैं अतएव ऋद्ध अभूताय कहते हैं । इसका यह अर्थ नहीं कि पुण्य-पाप अस्तित्पशूय हैं । इनका अस्तित्प है परन्तु र्गयी नहीं, इसम इह अभूताय कहा । इसी तरह मतिज्ञानादि चार ज्ञान हैं, य भा अस्थिर हैं । ये क्षयोपशममे हात हैं । व भाव औदायिक हैं । ये भी आत्माने ज्ञान गुणका निहार है । व वध करनेवाता ह, मतिज्ञानान्त्रिक र्धन नहीं । व आमारा आकुलता र्पान्क है, य आकुलताको अनुभव कराने हैं । यन्त्रि आत्मार अर्दर यह चैतय गुण न हाता तत्र आमा पुद्गलका तरह जड़ हा जाता । समारकी जो व्यवस्था आन र्गीय र्ही हैं र्गन इसका र्गन करता । यह जाय हैं, यह जाय नहा, ज्ञान गुण त्रिना कौन इसका वनाता । यह होनेमे ज्ञान गुणका हा मुख्य माना गया है अतएव समारम जहाँ दग्गा वहाँ ज्ञान वृद्धिकी शिक्षा ली जाता है । ( १२ । १० । ११ )

६६ जा मनम आना है वह म्वाभाविर नहीं, क्वाकि मन र्पतन्त्र द्रय नहीं । यह वस्तु नाइन्द्रियायरणके निमित्तस हाता है । बहुत मनुष्योंकी यह धारणा है कि मन न हाता तत्र म्मारर र्कलण कठिन न था परन्तु यह धारणा मिथ्या है ।

( ५ । ११ । ११ )

६७ सब जाय अपने अपने प्रयाचनका दग्गत हैं अत किसीका अपराधा मानना मूयता है । ( १७ । ११ । ११ )



घर्णी-उपदेशजलि



## वर्णी जयन्तो

लुनिका अर्थ थोड़ी चीनना बहुत जग पर जगन कर दर्ना  
 विमला का पारावार नहीं। थोड़ीमी जगना बहुत कहना ता  
 सम रन करनेना बात हा क्या है पर मान ना लमी चान है कि  
 बारन करा हा देता है। मुग्गार मा न कहा कि प्रणमा मुनवर  
 हम नाये-नीचे हा जाते है ता विचार करन य भी मनम आना है  
 कि अर य लोग भी कैसे है कि हम ता बुद्ध हैड नना और य लाग  
 गवा-वनाक कहत हैं। पर अचछा जगन दग्ना जात ता हमारा  
 दग ना भारतवर्ष है भैया। इतना जगन जग है भैया कि पत्थरम  
 कपना करके ये मोक्षमार्ग निकाल गत है। य ता भगवान पा न  
 नरदा मातको जानेवाले मगध, नरदा स्थापना करन अर ता  
 माम चल रह नही अपन लोग ? । यणु भगवानरा पत्थररा  
 प्रनिमामे आरापण करके अपना कल्याण कर ता है।

आर हमम जा गुणारा आरापण कर ता ता इनमा मनर  
 गत है हम मना करनेवाल गौन ?

हमारा जग माना तो चितन है सभी गह है नरदा आत्माक  
 अन्तर बद्द ज्ञानकी तासन सत्र याने सत्र नरदा विगमान है। हम  
 नरदा अनुभव न कर य बात दूसरों है। नरदा मना करके नरदा  
 पन कर देवे ता हम कल्याणक पात्र हा

विष क्या है—

माइका महिमा है कि यह ममार चल रहा है। नरदा माइ  
 जना गया ता 'मम इदमस्वमित्थम्' अज्ञान करन नरदा गीत गीत हाग।

अज्ञानम हम हमने ये हमारा हम इसके पहले थे अत्र ये हमारा होगा इस प्रकार अज्ञान बुद्धिसे ममारम भ्रमण कत्र तर होगा कि  
 “कम्मे शोरमम्मि य अहमिन् अहक च कम्मणोकम्म ।  
 जा ण्मा खुलु उद्धी अप्पडिअद्धो हवदि तार ॥”

जत्रतत्र कम—नोरमम हम है और हमारम कम नात्रम है तत्रतत्र यह अज्ञान है तत्र तर ममार है । यत्र ण्म घट हाता है, पुद्गलत्र परिणाम है यत्र घटादिपु पुद्गलपर्यायेपु सो

अहम् । य शरीरम रागादिव हुण, य और हमारा यह भ्रम कि हमम य नोरम अत्रि है इनम हम है तभी तत्र हम अज्ञाना है ।

वैशयोगसे विी जाना गुरुओंका समागम मिल जाय अज्ञान मिट जाय ता यत्र ण्म अत्रालामि ” दुनिया जानता है, दपणम अग्नि प्रतिगमित हाता है, अग्निनी अत्राला दपणम भासमान होती है तो उसनी ण्मता और अत्राला दपणम नहीं । यहाँ मिगनी रग्नी है उमरा प्रतिगमि ण्मणम पड़ता है पर यदि त्रिमी स्त्रीसे दाल बनानेका कदा जाय तो अत्राला दपण पर रग्नी कि मिगनीनी आग पर ता उसे भी इसका ज्ञान हाता है, इमतिण पुद्गलत्रमसे भिन्न अरूपी जो आमा है उमम जानपना है, ज्ञात्रपना है ण्मम कम और नोकम नहीं है । आप हमार ज्ञानमें आ गण एता घनात्मता यह अत्र नहीं कि आप हमम आ गए । आपका ण्म अत्र भी हमारे ज्ञानम नहीं आया । जत्र अत्र भी हमारे ज्ञानम नहीं आया तो आपसे स्ने क्या करे कैमे करे ।

पुद्गलत्र रूप रस गंध घणत्र अत्रमात्र भी हमार ज्ञानम नहीं है । अत्रर हमारी काठ भी ज्ञान उत्रम हाता तो अत्र करते ।  
 कहा है—

## “ज्ञानतादात्म्य”

”

तो ज्ञानता तादात्म्य क्या अर्थ रखते हो—ज्ञानता तादात्म्य शब्द भी अर्थ मात्र भी हम उसकी उपासना नहीं करते ।

वर्ण ग्रहण धारण लोग हैं य भा सुन लें—दूसरे क्या शब्द ।

तो जब तक हम इन पर पदार्थोंको अपना रहे हैं तब तब हमारे अनन्त समारम्भ कोई शब्द नहीं । तो अब हम व्याख्यान क्या करें पर हमारा समझ इन लोगोंने पाठन लगाने जो व्याख्यान किताबि परक लिख अपना समय छोड़ना । अर समय छाना है ना व्याख्यान क्या दे । इसमें माझम हाता है कि माह ही तो व्याख्यान मिला रहा है । पूज्यपादस्वामीन मयार्थसिद्धि जैने व्याख्यान और समाधिशनक बनाया तो वो पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

### उन्मत्तचेष्टित ।

अमरन हम समझा दिया और हमन दूसरको समझा दिया ना य प्रतिपाद्य और प्रतिपादक हुए ।

य गुरु शिष्यता जो व्यवहार है ।

पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि उन्मत्तचेष्टित य ज्ञान हमारी

उन्मत्त चेष्टा है ना उन्मत्तों की कहे पागला की कहे पागल कहते हैं ता उल्टे कानों से मो उन्मत्त हा हम कहते हैं । गुण० ग नाम भी भगवानने प्रमत्त रखा है । गुरु-शिष्यता व्यवहार ही जब प्रमत्ताकी चेष्टा है ता महाराज आप क्या लिख रहे ? तो इससे मालूम होता है कि सब मोहका चेष्टा है । मोह मन्त्र बुरी चीज है । मगर एक मोह ऐसा होता है कि समारसे हुये देता है और एक मोह ऐसा होता है कि समारसे उद्धार कर देता है । प्रातः सूर्योदयम गगनम लालिमा हाती है सार्यमानीन मूयादयम भी लालिमा होती है पर एक लालिमासे सूर्यका प्रकाश फैलनेवाला है और उस

शामकी लालिमामे प्रकाश नारा दानेयाना है ता इमी प्रकार यह ना माह है समारी उपायनाया, यह सार्यगालकी लालिमारा तरह उत्तरपालम अकारना कारण है और यह ना राग है धम गाम्ना आदिना, यह उत्तरवाग प्रारीकी लालिमारा तरह प्रकाशका कारण है। रा वा० ग अकार म्यारीन कहा है —

### नात्रगिष्यावाय

माक्षमगि ।

किमी गिष्यन नात्र पृष्ठा एमा नहा है। समार रूपी सागरम द्रुत रूप ना अनन प्राणा है व धमध्याग मत्रम गुणस्था और अपायधिरय—म द्रुत वरन मिया मागमें लग है फसे इनम य भिष्यात्य द्रुत र्मी भावनाम प्ररिन् हाकर मय कहा। ना यह गुम राग ना है य उत्तरवानमें उन प्राणियाक संसारसे द्रुतेका कारण और नर लिए भी उत्तरपालम कमनाश का कारण हुआ। हम ना य समझत है कि सम्यग्ज्ञानियारी का चेण है ना मारी चेण माह रागका विकलनकी घटा हाता है।

हम आचार्यारी बात क्या कह हम ता आप लागारी बात कहत है कि आप लागार कौन माह है। यदि आपक सम्यग्ज्ञान है ता मियाका माह य—वागमाह और समारका माह यह आपके ससारका नाशका कारण है।

किमी मनुष्यका जत्र 'र' आता है ना उम चिरायता पीना पडता है ना क्या यह दूस शौभसे पीता है कि फिर एमा उवर आय और चिरायता पीना पड। सम्यग्ज्ञान चिरायता समझता है धिषय सेवन से दुग्न हाता है पर क्या नर उम फिर पीनकी आशा क्या करगा।

हम ता प्रियाम हैं कि सम्यग्प्रति विषयको भोगकर उमे चिरायना जैमा उपचार मानता हैं मलिन मुनिपद यदि मोक्षमाग हैं तो हम भी मोक्षभागी हैं । उनके स-पलन हैं तो हमार अप्र० का याग हैं । उनरु हनारो शिष्य हा जाते हैं तो हमार ता ४- ही ६ लड़के हात हैं पचाम हुटुम्हा ह । १-४ हजार शिष्योंक रहत जत्र यो माही नहीं होत तो हम ८ के रहत जैसे माही होवें, जैमा चणार्डिन कहा था कि बद्धा ये फिल केचित् ।

भेदविज्ञान नि- मिल गया व तिर गण और जा डबे था भेदविज्ञानके थभायम हुन ।

समारक प्रकरणम आचाय कृत हैं कि हम क्यों डरें । हमारे अन्तरचिन्तारकरा ता २ प्रसारना याग हाता है एक शुभ एक अशुभ, उमका मूल कारण राग द्वेष हैं । हमारा आमा जा रागद्वेषक कारण उत्पन्नहुए रागम विद्यमान है हमींता ममाल चानेपाल है हमीं भिन्न कर सकत हैं । अपनी आत्माका अपने आत्माक द्वारा रोकर अपनी आमा लगा कर पर द्रव्यमस इच्छाका हतलें तो पर द्रव्यका समागम छूट पाय । गाना नहीं नरली ता वह बनाय जिमक व्यापार हाता हा किन्तु धधा ही जा न कर ता वह गाना नहीं क्या बनाय ।

तत्र जत्र सग रहित हा गया तो आत्माकी चीन्का आत्माक द्वारा ध्यान करता हुआ शुद्धमान स्थानमय आमाका प्राप्त करता है । मोक्षमागका प्राप्त हाता है । आप लाग जा इधर आए हा सा इतनी बात मानना कि और उद्ध छाडा चाह न छाडो, माह छाड जाओ । और चाह मारी सम्पत्ति ल जाओ पर मोह छाड जाओ । उस यही कन्याणका माग है ।



## विनोवा जयन्ती

“मात्रमागस्य नेतार भेत्तार कर्मभूताम् ।  
ज्ञातार विद्वत्त्वाना वन्द तद्गुणलब्धये ॥”

बधुवर ।

आज एक महापुरुषकी वधता है । विचार करके दया नहीं कर महापुरुषता क्या ? भूमिदान दिना दत्त हमसे डानी महापुरुषता नहीं । अर जय भूमि तुम्हारा चान ही नहीं तत्र दिलानवा प्रश्न ही नहीं आता । उठान एक पुस्तकम लिया है कि ‘भूमि तो भगवानकी है’ ता तुमारी कैसे हूड ? और जा तुम्हारी नदी उसका दान नैसा ? सबसे भारी घात ता यह है कि मैं उनके गुणोंसे माहित हूँ । मर याम य रात आई कि उठाने पंचेन्द्रिये त्रिषयोंका लात मार कर अपनी आर ध्यान दिया । यह भूमिदान ता आनुमद्विर है । क्या है—

“मुक्तिमिच्छसि चेत्तात ! त्रिषयान् त्रिषत्त त्यज ।”

ह तान् यदि मुक्ति चाहते हो ता पंचेन्द्रिये त्रिषयोंका त्रिषत्त तरह त्याग ना । त्रिगने पंचेन्द्रिये त्रिषयोंका त्रिषत्त तरह त्याग दिया, मन्चा त्याग तो उनका यह है ।

तुम तो भू हा, भूत हो, तुम्हारा ता यह चान ही नहीं । मन्चा त्याग तो उठान आत्महित किया । पंचेन्द्रिय त्रिषयोंका लात मार कर आत्महितम लग गया । यह ( भूमिदान ) ता गौण काम है । अमली काम ता यह है—

## “मोक्षो विषयवैरस्य”

मोक्ष है क्या चीज ? विचार कर दिया तो मोक्ष सब दुःखों में छूट जाना ही तो है। क्या मिल सके ? ‘मोक्षो विषयवैरस्य’ पञ्चद्रियोंके विषयोंके विरक्तताका आना ही तो मोक्ष है। भोगनेका आपको क्या है समझने अन्दर। गरावसे लेकर अमीर तक क्या चीज मिलती है यथाश्रय। मिठाई एक रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और सुगन्ध मिलता है तो यथाश्रय। भारतवर्ष में बड़े बड़े पुराणोंमें देख लो पञ्चद्रियोंके विषयोंके सिवा भोगनेका और है चीज चीज ? इनमें सिवा तुम भाग क्या सकते हो। हम भागना जिसने छाड़ दिया उसकी ताराफ है। तुम्हारी गतनी है कि हमें महापुरुषसे हमारा सम्बन्ध है। तुम लागूगलन रास्त पर हो। उनसे क्या आप ध्यान रखिये, यह काम हम करगें। हमें व्यक्तिका घर घर दीडाना क्या शोभायी बात है ? यह भारतवर्ष है जहाँ हरिश्चन्द्र जैसे पानी हुए। निहान मत्स्यका राजा पत्नी जानका प्राणप्रतिष्ठाके लिये जा जा किया सो सबका ज्ञात है। तुम क्या करते हो ? १० २५, ५०, १०० या १००० पाया जमान देना। यह क्या तुम्हारा है। तुम्हारा दायागी है ? अगर दायागी है तो ६०५ रातों चल गये एक दिनमें, क्या रह गये। हमारा दायागी चीज है ना हम जान करें ? दान करा राग माह रूपका तो समझके ना उनसे छूट जाओगे। तुम्हारी चीज पेट है उसे छाड़ो। पराट चीज है तुम पगमनेका बैठ गये हम दिलानेवाले सौन ? हमारा समझमें नहीं आता। यह महापुरुष जिसने पञ्चद्रिय विषयका लालच मार लिया उसमें हमें काम कराना इससे अधिक भारती कर्नाली और क्या होगा ? जिससे मोक्ष भाग मिलता है उन्हें समझ मार्गमें लगाओ। मैं तो समझता हूँ यह काइ चीज नहीं है। तुम्हारी यह मूर्खता त्याग कराने है, अरे

हमारा अगर काइ चाइपन मित्रा द ना इसमे वदा उपकारी और  
 यौन होगा ? तुम पढ़ा ना दिगम्बर हा नैमे माँक पन्मे पैदा  
 हुए, काई कपडा आया मायम । तुम्हार माय न ना चीन आर्ड  
 न आनी है—

“जन्मे मरे अकला चेतन मुय दुख का भोगी,  
 कमला चलत न जाय पेट मरघट नरु परिवारा ।  
 अपने अपने मुय के साथी पिता पुत्र दारा ॥”

उताओ अनादिनात यधनापाधिवगेन स्मृत्तिक मणिम काइ  
 मैल है ? पर हाँक लग नाय ना ? आत्मा म्यभायमे म्ध-अ है पर  
 मोक्षी हाँक लग ग । ‘नाह नही न मे जीयो’ गौरामा गान्य  
 यानि लिख रहा । यह भी नहीं, यह ना कमपूत विचार है । आज  
 तुम्हारी ना लायण्यता है दा चार यप पाद फाटा लिखाआ । मरी  
 चीधन गाधामें देखा और अउ देखा ना उकाग यहाँहा खब्यीम  
 आ गया ?

‘नाह दहो न मे जीयो’ न मरा दह है न मरा नाय है, फिर  
 फँसा क्यों है ? ‘अयमेव हि मे बन्ध य स्याज्जीविते स्पृहा ।’  
 उसे अपना मान रह हा उम छाड़ा । भारत सब मुग्री हा नाय  
 पर तुम तो उस प्राणोम रिपणा हा । अच्छे तागामे म्मे काम  
 रत हो सो तुम्हारी यही गति हागा ।

हुमायूँ बादशाह था मा चय घट फार गया ना गुनरान पहुँचा ।  
 घडाँक रानाने स्वागत किया । उमर मंत्रीने एफ कुर्मी भव थी ।  
 उमपर यौन बैठ ? तय उमर मंत्रीन तीन तगधारे लगा म्पर  
 कपडा डाल दिया, वहा बैठिय । म्गरी करामात देख राता बहुत  
 प्रसन्न हुआ । वोग तुम्हारे माय एसा बुद्धिमान मंत्री है तय  
 तुम्हारा राज्य क्या गया ?

जमने उत्तर दिया—‘जा रात्राय करने याग्य थ उठ घाडे खुवानेको रग दिया और जा घोड खुवाने याग्य थ उठ रात्राय म लगा दिया । हम लाग भी इतना नहीं जानत कौन क्या कर सकना है ? भारतमे एक ऋषि होय तो सैरडां कोशम मुभिश्च हो जाय । भारत ना अहिंसक था आन मामभक्षण पोपक हा गया । जहाँ दूधकी नदियां बहती थीं आन उहाँ खुनकी नदियां उठता हैं । अरे एक आदमी निमल हो जाय तो समार उलट जाय । संसारमे एक आदमा शुरू हाता है । ‘एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति’ एक ही चन्द्रमा अप्रसारना नष्ट कर देता है । गांधीना अकेले एक ही तो ये, तो गांधी होते न जाने क्या करत ? तुम क्या नहीं जनत गांधीनी, या त्रिनोबाकी ? कौन रात्रा है ? एक दिन निमल परिणाम कर ला तो तुम भा गांधी जन मरते हा, त्रिनोबा घन मरते हा । क्या त्रिनोबा अर्धीन है ? जमने अर्धीन है ? नहीं, उह ना परिणामके अधीन है । जानकी कोट आश्रयकता नहीं । हम उद्ध नही जानते पर यद् तो जानते हैं कि यद् पर है । विसने सिगला त्रिया ? हमारा आत्मा कहता है कि य हमसे पर है । आन हम निमल परिणामी जन जाय ता गांधी हा जाँय, त्रिनोबा हो जाँय ।

ह माँ !

क्या है बना ?

तेरना आनाय, पर एक शत है, उह यह कि पानी न छूता पडे ।

हम महात्मा हा जाँय पर कुछ त्याग न करना पड ।

जाता जैसे महात्मा हो नाआगे त्रिना त्याग के ? हमारी समझमे नहीं आता ।

त्रिनोबाकीमे कहो कि त्रिनोबा । अत आप बृद्ध हो गय, धम ध्यान करा । जान तो गये भूदान करना है तब मजद मज एक हा दिनभ कर डालो । एक ज्ञान और अमर हमारी कोड माने, मगर

हमारी काठ मानता तो है नहीं, मत माना। हम उद्धत किमान तो जान करते मा ठान ही हैं। हम सब लायक तो घताने हैं, तो भाग्य भाग्यर मत है व भी जान द मत है। एसा करनेमें अनेक युक्तिस्ति ही है तयि विगानय ही तयि। गान पद्मिनम तो गान ही प्रति स्वधा एव पैसा दाग दा सब भारतयगम गरीया मिष्ट तयि। एव पैसा प्रति स्वधा ही न श्रितिक नहीं। उमम का यनिक्रम नया हाना चाहिय। भाग्य भाग्यर लायगा वह भा गायगा तो पर भर, तो वह भा पर राग द मत है।

अहिंसा तो आ माम हैं। किमा पशुइम रगा है भारतयपकी शिमा ? गिरनारता तले ताय, शिवरता चन ताय मुमनमानों क मझावी चन ताय पर क्या वर्ण रगा है शिमा ? अर अहिमा आपा आ मात्र अदर है और कनी नया। आन राग रूप छाड दा अहिंमामयदा ताजा। वड उह पण्डित धमकी व्याख्या करते हैं, जम भर मुना रागद्वय छाड दा, धर्म समाजम आनाय। धम और है क्या चान ? पदा तदा, लिखा नही, भिफ रागद्वय छाड दा, जप नदा करा, सयम भा नही करा एव शमा यनी गीत है। ससारम क्षमा बड़ी चान है, क्या यनी चान है भया ? हम तो गपें ( मूठा जान ) तगता, क्याकि अगर नमा हाना तो एरु-म ना हार्ता ? पुस्तक क्या छारमागरम फेन द ? चितन चारयान दनेवा है उह क्या सत्यामहधानारी तरह चतम भन द ? काधना छाड दा क्षमा आ जाय, किनीम पूछनका चरुत नहीं। काध छाड दा शमा ही जाय। धम आनारी चान है, अहिमा की परिणतिम जा रागद्वय और काध मिल हुए है व छूट पाय तो क्षमा हा ताय।

“इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चित्,  
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित्।

विचार्य पश्यामि जगन्न मिश्रित्  
स्वात्मानसोपानधिक न मिश्रित् ॥”

यहाँ कुछ नहीं, यहाँ कुछ नहीं, जहाँ न, जहाँ हैं वहाँ भी  
कुछ नहीं । विचार कर दग्गता हूँ, ममार भा—उ नहीं, था मारु  
अपराधसे अधिक और कुछ नश है ।

क्या गांधीजी नमान काय इतनाम मिमान न मिया हागा ?  
ना क्या नहीं हुए गांधी ? अगर ममे प्रतापा २ ना म्या नडा हुए ?  
गांधी जी अगर तुम्ह अपना गांधीच न तत ना उनम क्या रहता ?  
उमम मालूम पड़ता है कि गांधीजी ना जा गुण हैं न गांधीजीम  
हा था । अगर उनका आराधनाम नाग गांधी उन जात ना कौन  
न प्रतापा ? भगवानके गुण भगवानम ह मम ना काड  
गिवालय नाता, काड विनालय नाता, ना यदि उमरा गुण हममें  
था जाय तो मिन न पायें ? प्रतीत हाता है य न मिमान मिल नहीं  
सकता है । अपने एव द्वाइनेमें ही भगवान उन सकता है । एव  
डा नो फिर दग्ग भगवान बनत वि नहीं । नम भर जपा—  
'सूर्याय नम, सूर्याय नम' पर घरमें नाता ना, फिर पहुँच  
ना जाआ दग्गान कैसे पहुँचत हा ? मृदने माग भर लिगला मिया,  
अगर चलते नाता ना नपो—“सूर्याय नम” पुत्रमे कहा नाता तुम  
भा जपा, मांम कहा तुम भी जपा, और चलो नहीं ता विना चले  
पहुँच जाआग ? पढनेमे कुछ नडा हाता, उमपर अमल करा तो  
रन्ध्याण हा जाय । कन मात्रसे कुछ नडा हाता ? उनका नापनी  
पता, मम ता लिगा है उमपर अमल करा ता तुम भा जैसे बन  
जाआग । हमारा ता मरी कदना है वि तुम मय विना नाताके गुणाका  
कुछ न कुछ अश लकर जाआ । जैसा उडान त्याग मिया वैसा  
करा । एन कगे नाता नको नाता नातर जाआ । १

1. 10/24/21  
2. 10/25/21  
3. 10/26/21

समझता है। एक मनुष्य था जो भाषण दे रहा था। वह कह रहा था भारतवर्ष में कर्नाट और आग। मैंने कहा दरम या क्या कहता है? तो वह कह रहा था व तो कर्नाट यह कि 'आप जानना नहीं दूसरी मानना नहीं' हम तरह ७० या वगैरे ७४ कर्नाट हा गद। इसलिये हमारा तो क्या कहना है कि प्रपञ्चाभा दाडा। हम कहते हैं हमारे ऊपर क्या न करा, परन्तु ऊपर भी न करा क्योंकि मरा तो यह विश्वास है कि वाइ किमा पर नहीं अपन ऊपर हा दया करना है। मैं अप। अनुभवमे क्या न कि भियन मागपर जात हुए राती मोंगता है। मैं आपसे पूछता है कि आपने उमका दुख दर करनेका राती दी क्या? नहीं उमका पानर उचना वा सुनकर अपना हा दुख दूर करनेका राती आपन दा। आपन हत्यम इतनी आच्छता हा गड कि अगर राती न दत तो कितन टा हा हाते? अत अपन हा दुख निवारणाय ना रोती दा। त्रिनाथा दा दूसरा दुखसे दुखी होकर कि यह भारतमें किमान है, गराय है, दुखा है, इससे व अपना दुख दर करनेका प्रयत्न गाल है। दा राती देनेका यह प्रयत्न करें ता जा २० हजार नावा जमान टा सो हायर इतना उडा आदमा मागे। करुणा उन्पर हुई उमीन दूरकरणाय यह भूमिदान प्रथा है। हम ता चाहते हैं एसा मद्रापुरव जा है यह आनन्दसे जाये और भारतवर्षका उद्धार करे। साथ ही हमारा आप मयसे कहना है कि त्रिनाथाका गुणोंका वाड़ा वाडा अश लेकर जाया।

भैया! हमारा म'दश भेज देना कि यह आपका चावनेको बहुत चाहते है।

(११।९।१०५३)

त्रिनाथा जयन्ती उत्सव, गया  
टाज्जहातकी आम समाम दिया गया भाषण।



## संसार चक्र

संसार—

संसारम घटन विचित्रता है, यह अस्मरणिया नहीं। इमप  
 प्रह प्रह महातुभावोन गम्भीर विचार किये किन्तु यन् मर्भनि  
 म्प्रीदार किया कि संसार न पदार्थानं मनसं निष्पन्न एक कृती  
 अथस्यासा धारण करनेवाता है। जहाँ दा पदार्थासि विलक्षण  
 संयोग होता है यहा अस्थायी प्रथमाधको धारण करती है। जैसे  
 चार आने भर सुवण और चार आने भर चोड़ी दानोंका गलाय  
 एक पिण्ड बना दाजिय म्म पिण्डम दोना पार्थ उतने ही है  
 चितने पहिल थ परन्तु जत्र वह एक पिण्ड हा मय तत्र न ता य  
 शुद्ध माना है और न शुद्ध चोँदा है। एक कृताय अस्थायी हा म  
 और उमे कोट सानेन नामसे लोग व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार  
 आत्मा और पुद्गलका अनादि कालसे सम्प्रथ चला आ रहा  
 है। उसे लोग मनुष्य, तियक्ष, दध, नारकी शास्त्रसे व्यवहार  
 करते हैं। सुवण चोँदी दानो सनातीय द्रव्य है। यहाँ विनातीय  
 दा द्रव्योंका सम्प्रथ है। एक चेतन द्रव्य है दूसरा अचेतन  
 इनके विलक्षण सम्प्रथ हीना नाम संसार है। यहाँपर ना पर्याय  
 पाता है उमीना यह जीव अपना मानने लगता है। मनुष्य पर्याय  
 म अपनको मनुष्य और इतर पर्यायम अपनको देवादि मान  
 लगता है। निस पर्यायम जाता है उसा पर्यायके अनुकूल अपनी  
 परिणति बना लेता है।



**मान—**

मान उदयम य उच्छ्रिता ज्ञाना है कि पर मेरी प्रतिष्ठा क्या  
 उन्नत माने, जैसे — जना तावम हा उमक अथ पररा नित्य  
 अपना प्रशंसा पर परम वा गुण विद्यमान हा उररा लाप फ  
 अपनेम वा गुण गरी उह अपनम वा नित्य। जेण फ  
 मानक नित्य दहन उमन उपाता नित्य धारा व्यय करान मरा  
 उरर। यदि मानरी रत्ता न हा नच यदुत दुर्गम हाता है  
 अपराग पर करनम मशोर नरी करता। यदि निर्मान जेम  
 जपरी इच्छा थी वैसा मान लिया नच पूरकर कृपा हा जाता  
 रि हमारा मान रह गया। मूर य विचार नरी करता रि  
 हमारा मान उ उ हा गया। यदि उ उ न हाता वा उ भाय य  
 रता। उमक नानरीम वा आता आरा।

**माया—**

माया कषाय भी जीवना इतन प्रपञ्चमि पैसा दता है।  
 मनम वा और है, वचनमे कुत्र पदता है, वाय अय  
 करता है। मायाचारी आत्मीय द्वारा महान महान अनय हात है  
 उपरमे वा सरल दीयता है परंतु भीतर अत्यन्त वा परिण  
 है। नसे यगुला उपरसे शनै शनै पैरा द्वारा गमन कर ॥ है अ  
 भातरसे जहां मद्दलारी आदृष्ट मुनी रि मे चाचम पर ता  
 है। मायातारके यशीभूत होकर वा न कर मा अल्प है।

**लोभ—**

लोभ यशीभूत होकर जा जा अनर्थ ससारम हात है  
 किसीसे अत्रिदित नहीं। आन वा सत्संगवि मनुष्यावा संत  
 हा रहा है लाभहीन वादीलत ता है। आन पर रात्र तुममे  
 हृदयता चाहता है वर्षासे शांति परिपद् हा री है, तागी म

करवा दहा गये परन्तु मामना प्रिद्वानोंने गंभीर विचार स्थि-  
 प्रिय निर्णीत न दान विर। हाने दता, सभी मिल जाये  
 भी बात तय न हागा। अधिनारी बग ऐसा मिला गड।  
 यह सत्र लाभमा मृष्टा करा।

### चार सत्राँ और मिथ्यान्व—

निम शिक्तास पारमाँव् अर न हो भी मकता है। हा ग्से छोड लाग अपनरा इसमा कारण अनादि कात्म जालम इतने क मन्श कठिन हैं। निम्व अपनी रक्षा कर मकता है। गया है, हमने स्वय इमका मुनिर भी होती ह, प्रमत्तगुण करत है। प्रमत्तगुणस्थान निसे वनलाहार कहते हैं इमर वा अप्रमत्त गुणस्थान है। वनलाहार छू स्थान पर्यत हाता है, लोपर हैं किन्तु पर इम जावने मा परिमहादि दोष आमा

मरत। अतः सना पञ्चद्विय मनुष्यना मरत पहिल अनत  
सत्कारका पितामह मिथ्या र त्यागना रहिये ।<sup>१</sup>

पुत्रसे मनुष्य मिथ्या पत्र पापानो हा पाप समभते है,  
मरमे प्रयत्नतम पाप ना मिथ्याशन है उसरा पाप र्ना समभते ।  
सय पापाना चनर अतादिसे आता हुश्या स्वपरभेदना बाधर य  
मिथ्या र है । मिथ्या ना चारित्रमात्मे जात है । त्र मिथ्या  
पाप गया परमात्मे ता उगी समय इमरे चक्रव निकल गया ।  
केवल दयम औत्स्यिक भाव हाता है, यह उमरा कना नना  
कना । कना न कनाम आगामा समरथ पुत्र हा जल्प हाता  
ह । उच कालम एमा परिणति इमरी हो जाती है कि सय कर्मिनी  
जना माह है उसरा चर र्ना हाता । तमे चर मिथ्याशन  
कता जाना है मिथ्या चादि मातह प्रकृतिना उध नहा होता । म  
तह क्रमसे गुणज्ञान आरोहण करता है । तिम समय शम गुण  
ज्ञान होता है उम कालम मोहनीय कम तथा आयुवा छाडकर  
ह कमवा ही उध हाता है । मरे अभावम ज्ञानारणादि  
अस्वामि रहर चरत्य गुणज्ञानम अतमुहृतम स्वयमेव नष्ट  
हा जाते है ।<sup>२</sup>

अनात्सि यह चाय शरीरका निज मान र्ना है तथा आहार,  
भय, मंथुन, परिग्रह यह ४ सनाँ माव है । निरंतर र्सी परिपाटीसे  
निकलना कठिन है । प्रथम ता आहारक अथ अनर उपाय करता  
है । भय हानपर भागनरी इच्छा करना है । वेदने म्यम गुणदाप  
देगनेरी इच्छा हाता है । निपयरी लिप्तासे जो चो अनय हात है  
यह किसीसे गुप्त र्ही । यह लिप्ता इतनी भयकर है कि यदि इमरी  
प्रति न हा तय मृत्यु तकरा पात्र हो जाता है । मना लोभी

विनया लोचन निःश्रम कहत है 'तु नमासा वरनम भी मरोच नहीं करता। यहाँ तक दया गया है कि पितासा मन्थर माना पुत्रासे हा गया। उत्तममे उत्तम रातना नीचाक मात्र ममग वरनम मकाच त्सा करती। विनने इस काम पर विनय प्राप्त कर ली र्नी महापुत्र्य है, या तो सभा उपन्न हात और मरते हैं।'

### स्वार्थी कुटुम्ब—

पुत्रना मनुष्य बहुत हा प्रमत्तिसे दरता है किन्तु ज्ञान उमर निपरीतही है। मनुष्यना मरसे अधिर प्रेम स्खीमे रहता है, इसामे उमरा नाम 'प्राणप्रिया रम्या। 'मेरी श्रौंगारा तारा' आदि नामसे उसे सम्बोधित करता है। यह इसकी आचारारिणी रहता है। पत्निले पतिना भावन बगता है तब आप भावन करना है। उमरा शयन कराने शयन करता है। इसकी पैयावृत्त करनेम किमी प्रकारका मरोच नहीं करता। पुत्र हाते हा वं ज्ञान नहीं रहती। यदि भोजनम विलम्ब हा गया तब पति कहता है 'विलम्ब क्यों हुआ?' तब यहा उत्तर ना मिलता है कि 'पुत्रना काम करे या आपना?' इत्यादि। तब तब पुत्र वृद्धिना प्राप्त हाता है और हामना प्राप्त हाता है तब ममर्ष हानपर पुत्र अथवा स्वामी बन जाता है। यह स्वामित्व म्रय मापना है, लो मँभाला अथतक हमने रक्षा का। यहाँ तक दया गया कि यदि ज्ञान दनना प्रकरण आनाने तब लागोस कहना है कि भाड। हम तो दूसरना धराहरना रक्षा कर रहे हैं। हम इसने व्यय करनेका अधिकार नहीं।<sup>१</sup> अब आप लोग स्वयं निणय कर ला पुत्र मित्र है या शत्रु? यहाँतक वृद्ध, मोहा जीवना मान्य नशेमे अपने आपना पाध नहीं हाता।

मोहनन्य अमानता—

“आचरन् ऽणुं सनात ! तानागाह्यापनश्च ।  
तथापि न तत्र स्यास्य मरुस्मिस्मरणात्न ॥”

ब्रह्म वा आन म गास्य भक्त्य कर। वाह अन्तन रास्त्राद्य  
याग्यता करा त मापि चदनक मकरा त इन अथाग तदाव  
सुग मा वत्याण मरी स्यादि आ मा सत्र पन्थाम भिन्न है । इमथा  
मर भी अंश त ता अदत्र आता है आर त अ करा अंश म्मा  
आता है । हा अयता ही अमानताम परदा अयता माना है ।  
पर पदागाम सिमीका ता दु मरा कारण मात न्न है । जैम शिव,  
कटर शत्रु पन्थाम वा टु मरा कारण मात न्नम अयानि करत  
है आर सि । म्मा पुत्रादिसौ का मुन्मका कारण मात न्नमे प्रेय  
करन गता ह । सिन्हा पन्थाम परनाकम गुमरा कारण जात  
नम म्मचिपुधर भक्ति करन लगत ह किन्तु प्रगात्रा कयन सौवित्र  
सुमका ही रहता है । म्म तरुम अनादि संगारमे म्म संगारमे  
चनुगति तारण निदर, मनुष्य तथा दयगति, भ्रमणश्च संगार  
प्रथामे मुष्क रही हात । प्रथामे मुष्क जानता कारण ता त्म भिन  
तथ वि इम संगारक वाग्याम विरक्त हा । संगारक वाग्याम कथ  
विरण हा ? तत्र वि इम ह्य ममन्, मा ता ममन् न ।

“नाह देहो न मे देहा जीवा नाहमह ढि त्तिन् ।  
अयमेव हि म बन्ध आतीद्या जीवित स्पृहा ॥”

त ता मी दह हूँ और त मर दह है । आर त म जीव हूँ मी  
ना त्तिन् स्वरूप हूँ, यदि मर जानम स्पृहा है ना यही बंध है ।

“एको दृष्टामि सर्वस्य मुक्तप्रायोजसि सवदा ।  
अयमेव हि ते बन्धो दृष्टाग पश्यसितराम् ॥”

यद्यपि आमा एव है, स्वतन्त्र है, तथा प्राय मुक्त ही है, किन्तु भ्रममे परका अपना मान रहा है। यही तेर बंधका कारण है कि आमासे अतिरिक्त पदार्थों का दृष्टा मान राना है। आमासे भिन्न यद् जा पदार्थ है वह तर नरा और न तू नरा है। उक्त अपन मानरर स्वय अपना भूलसे पैरा हुआ है, काइ अय बधानराला नहीं। जैसे हृत्ता दृषणमे अपना मुग्र दृष्ट अपनेसे भिन्न प्रतिविम्बरा दृष्टा हुआ मानरर भौरना है, और उम दृषणमे मुग्रही ठारर द आप स्वय चाटमे दुर्ग्री हाता है, काइ अय चाट दनेराला नहीं, अपना ही आर्माय वाय र दानेसे स्वयमेव दुर्ग्री पात्र हाता है। उन्ही तरह यह आमा अपन स्वरूपमा भूल स्वय पर पदार्थाम नित्य बन्धना वर दुर्ग्री पात्र हाता है—

“अपनी सुध भूल आप आप दुःख उपाया ।  
जैसे शुक नभ चाल विसर नलिनी लटकायो ॥”

मत्य यह है कि—

“उदति भयतो विश्व नाग्धेरिष उद्बुद ।  
इति ज्ञात्वैरमात्मानमेवमेव लय प्रन ॥”

य जो विश्व उदयरा प्राप्त होगा है मा आमासे ही हाता है। अथान् जा जगन दृश्यमान है यह आ मासे रागादि परिणाममे हा तो हाता है। जैसे वारिधिसे बुद्बुद् होत, उह यद्यपि वारिधिमा



स्वभाव नष्ट है फिर भी उस समुद्रम परिणमनमा शक्ति है। वायुके निमित्तका पात्र लहर उत्पन्न होता है तथा बुद्बुद् आदि अनेक प्रकारके विकार भाव सम उत्पन्न जात हैं। अतम उसी समुद्रम ताय हा जात है। एसा जानकर यह वा न्दयमान जगत है यन् तरा ही परिणमन विशेष है। अतम नुक्कीम तीन हा जाता है।

यहाँ यन् शमा हाता है कि आमा ता अमूत्ताय द्रव्य है, उमका यन् जगत विकार है, यन् समभम नष्टा थाता ? आपका रहना ठाव है, रास्वयम परमाय दृष्टिसे ता आमा अमूत्ताय है परन्तु अनात्तियात्म स्वसा सम्पन्न पुद्गलके माय हा र्था है। इन अममात जाताय द्रव्याका एसा विनयण सम्पन्न है कि पुद्गल पमन्न विपाकस आमाय रागादिन परिणाम होते हैं और व परिणाम भाव रागद्वय रूप हैं। अन्तक विनेय मिथ्यात्व, अनना नुक्की अप्रचारयान, प्रचारयान मन्त्रलन कपाय, प्रत्येक कपायम क्रोध, मान माया, लोभ चार चार ४×४ भेद हाकर १६ प्रकार रूपायके भेद हो जात हैं। तथा ६ प्रकारके अप्त कपाय हात है जिन्के हास्य रति-अरति-शोक-भय जुगुप्सा स्वाद-पु यन् नपुमक येन नाम है। नम तरहसे २६ भेद मानके हात है। इमाका परिवार मन्त्रल समार है। समारम इन भावाका छाड और बुद्ध नहा। चिन मन्त्रापुर्णोन इनपर विचय प्राप्त कर ली य नम समारम उत्तीण हा गय। मयमे प्रवल शत्रु मान है निमके मद्वायम यह जाय आप और परमा नर्त जानता। जहाँपर आत्मा और पर चिनक नहीं उहाँ अन्वरी क्या र्था ? जत्रनर हम आपका हा चिनक नहा य ई हिमादिन पापांश मुक्तिका उपाय कौन करे ?

## भेदज्ञानकी आवश्यकता—

“न हिमा नेत्र कारुण्य नोद्धृत्य न च हीनता ।  
नाश्चर्यं नैव क्षोभ शीणमसरणेतेरे ॥”

लविन् निस महापुरुषका संसार शीण हा गया हैं उसमें न तो मिमीकी हिंसा हाता है, न करुणा हाती है, न उद्धृता होता है न हानना होता है, न क्षोभ हाता है, और न आश्चर्य ही होता है । इसका तात्पर्य यह है कि तब मनुष्यक भेदज्ञान हा जाता है उस समय तब परकी पर और अपनका भिन्न जानना है । तब परका पर जाना तब उसमें निश्चयी रूपना विलीन हा जाता है । तब निश्ची रूपना भिन्न गन तब उसमें राग र द्वेष दानों विलय जाते हैं । उनके जानेपर मुक्ता दया और हिंसाक भाव विलय जाते हैं । आत्माका स्वभाव जाता दृष्टा है, जाननेवाला और दग्धनवाला है, शेष जो भाव जान है वन उपाधिचय एव विहारन है, इसके स्वभाव नहीं अत स्वयमय विलीन हा जाते हैं । जा धम आगतुस हाता है यह भयादाक राद नहीं रहता, परायें स्वाभाविक एव वैभाविक दो प्रकारका हाता है । वैभारिक पराय कारणक अभावमें नहीं रहती ।

“सर्वत्र दृश्यत स्वस्थ सर्वत्र निमलाशय ।  
समस्तवासनामुक्तो मुक्त सर्वत्र राचते ॥”

सब अरस्थाओंमें निसका आशय निमल हा गया है, स्वस्थ रहता है, समस्त वासनाओंसे ना मुक्त है वही मुक्त है । वही आत्मा सबत्र शोभायमान होता है । रज्जुका जान हो जाता है उस समय सपका जान नहीं हाता । इस जगतमें अनात्मिकसे जायका कर्माक साथ सम्बन्ध चला आया है तिसमें आत्मा मलिन हो रहा

ॐ । परन्तु तब भेदनाम ही चायगा कम नवनर कारणाया  
 प्रभाव हानेमे मुतरा कम निमतनाया प्राप्त हागा निममे मंमार  
 परिभ्रमणया यद उत्र मन्नाया नष्ट ना चायगा १ ।

## शान्ति तर्हो

### शान्तिक बाधन कारण

हमारी अपानता—

शान्तिमा मृत कारण विचारकी विचारतता है परन्तु विचलता  
 हाती नही । हमारा मृत कारण यत्र वि हमारा बुद्धि परमा अपता  
 मापता है और तत्र परमा अत्रमा माता तत्र उमर र रगना भाव  
 निरंतर रहता है । हमारा शयन हमारे अशा तर्हो, स्याति कम पर  
 पदाथरी अनेक अवस्थाएँ हाता ह । कम सिमी अवस्थाया  
 हम इष्ट और सिमाया अशिष्ट हानकी वन्पना करत ह । हमारे  
 अनुकूल ना परिणमा हो गया उमरा कम चाहते हैं, कम रयन  
 का सवन प्रयत्न करत हैं विन्तु यह परिणमा समय पात्र प्रत्य  
 रूप हो जाता है । तब हम अत्य त व्याकुल हा नात है और उमर  
 आनकी मतत रेष्टा करत ह । यही हमारी महता अपानता है ।  
 हमने यह पयत्न नहीं किया कि जा पर पत्ताय न कभा अपता हुआ  
 न या और न भविष्यम हागा ही यह निश्चित है फिर भी माहक  
 आश्रम निरंतर विपरात परिणमन करनमा प्रवृत्ति बना रगी  
 है । अथवा क्या छाड़ा ना लासण्याता शाल्यकालम मनुयक  
 विद्यमान है बुद्ध काल उपरानत उद चर्ती चाती है । तत्र इस  
 युवक कहन लगते हैं । अन तर बुद्ध हा जाता है, कम भगन हा

जाते हैं, नेत्र मन्त्र उद्योति हा जाते हैं, पग चयनमे इस्फार कर देते हैं, हाथ बाड नार्थ करनेमे अघस्तर नहा जाते । ना गालक प्रमसे गात्रम ग्रेकत हैं, ने स्पर्श कनेसा कया छाडो दग्गता भा नर्ग चान्त । यह मत्र प्रपञ्च त्र्यकर भा हम आ महितसे पाञ्चन रत्न ह, इमसा मूत्र कारण माह ह ।

### मोह मदिरा—

मोह मदिरासे नशाम विह्वल मनुष्यमा तशा मद्यपानगालक मन्त्र रहता है । एक बार में गिरिराज ( मग्मन्शिखर ) ना मत्र क पात्रभाज दमराम निग्राम करता स । एक दिन मायगाल भ्रमगाय गया । एक नवम आधा फनाङ्ग पर ही एक मद्यकी दुकान गी त्सने पाम चना गया । वहाँ नाकर दग्गा कि प्रहृतम मनुष्य मद्यसे नशाम त्मन्त हाकर नाना अयान्य शब्द तथा नाना प्रकारकी प्रेरणा कर रह है । यहाँ तक कि मुँहमे मस्त्रियाँ ना रही हैं तुरन्त शरार पर मूत्र कर रह ह । परन्तु व इमसा त्रु भी परया नर्ग व त और न इनक निवारणका कुञ्ज प्रयाम नी करत ह । तनेम नवान शरार पानवान आय और मद्य विक्रतासे कने लगे कि प्रदिया शरार देना । विक्रताने उत्तर दिया कि 'देयते नहीं, तुम्हारे दाता मामने ना ना लाट रह हैं ?

मदिरासे नशाम आत्माका दशा त्मन्त दा जानी है । यही अघस्था मोही चीकारी जाननी चाहिय ।

### स्वार्थी समाज—

जात प्कारी मोंक गभम आता है और नव माम पयत्त अयामुग्र होकर पिताता है । वहाँमे जत्र निर्गत हाता है उन दु र्गाका अनुभव वही जानना है, अय काइ ता जान ही क्या सकेगा ? जो माना त्से अपने उदरम धारण करता है उसे भी उस

जब निगत हुआ तब बाल्यायुष्याम शक्ति व्यक्त न जानने,  
 अज्ञान अनुभूत बाय न जानने जा कष्ट उभे हात हैं एक धर्मन  
 मन्त्र अथ विमारा मामन्त्र नहीं। उत वा भूमि लगा है, दुग्ध  
 पान करना चाहता है परन्तु माँ अफाम पान कराकर चुपचाप  
 चेष्टा करती है। उह माना चाहता है माँ कहता है उत। दुग्ध पान  
 करता। बन्ना ता पय य कि मय तरहसे प्रतिवृत्त बायाम ही  
 बाल्यायुष्याम बालका पूष करना चाहता है। वर्ष ५ वर्षा हुआ  
 माना पिता बालका पढ़ाना प्रयत्न करत ह। एसा विद्या अन्त  
 करात ह निमसे लौकिक उत्तमि हा यद्यपि लौकिक उत्तमि शक्ति  
 नमि मितती तथापि माता पितारा पैसा परम्पराम पढ़ति गी  
 आ रही है तदुक्त ही अन्ना वाचक प्रति भाष रहगा। निम  
 जिथामे आमाता शक्ति मित अम आर तादृश हा नहीं। गुग्गु  
 र्दग निमम तातर ग्यान पानक शाय्य द्रव्यत्वन पर सर एमी  
 ता शिखा देना।

जन् १५, १६ वर्षा हा गया माता पिताने इष्टि उदली और  
 य मन्त्र परत तागे कि 'कथ बालका विद्या हा जाव ?' इमा  
 चिन्ताम मप्र रहने लग। कर्नैक कता ताव विद्याक निय  
 लडकारी खान करत लग। जतना गता अपने तुल्य हा बालका  
 रनाकर समार प्रद्विना ही 'पदश दत्त'। इम तरह यद समार  
 चक्र चल रहा है, 'मम का' विरना हा महापुभाव गंगा ता अपने  
 बालकासे प्रबन्धारी रनाकर स्वपरक उपकारम आयु पूष करे।  
 आन्त २००० वष पहल भ्रमग मन्त्रुति ता तब बालका गण  
 मुनिगार पाम रहकर विद्याध्ययन करत थ। काउ ता मुनिगपम  
 अध्ययन करत थ, काइ प्रबन्धारी वषम हा अध्ययन करत थ,  
 काउ साधारण वषम अध्ययन करत थ। स्नातक दानक अनतर  
 कोउ ता गृहस्नायुष्याम त्यागकर मुनि हा जाते थ काइ आन्त

बह्वचारी रहते थे, कोई गृहस्थ बनकर ही अपना नाम निग्रह करते थे परन्तु अब तो गृहस्थावस्था छोड़कर काठ भी त्याग करना चाहता। सतत गुरुस्य धमम रहकर नाम गमात है।

### निरीहवृत्तिका अभाव—

कन्याणका माग तो निरीहवृत्तिम है। निराश्रिता तभी आये जत्र परपदाथोसे ममता छूट। यहाँ तो परका अपना मानना ही ध्येय बना रह गया है। मारा समार दगा, निमने सनाप न पाया उन मतोप मितनेका माग भा कठिन है, क्याकि समता ह्यम नदा। समतासे तापय य है कि इन परपदाथाम रागद्वेष कल्पना त्यागो। यहाँ जाआ निमसे प्राप्त करा, कतत फँमानना ही व्यापार है। व्ययक जल्पनादमें और मानमिफ अफन विह्वल्पाम कायक अनरक व्यापारि द्वारा यह जानन बना जाता है। कन्याण के लिये तो विशिष्ट तपका आवश्यकता है और न विशिष्ट ज्ञानकी ही आवश्यकता है। आवश्यकता है तो कवन निरीहवृत्तिकी। निराहवृत्ति उमीकी दो मकनी है जा इन परपदाथोको अपना त्याग दन।

### परमें निजकी मान्यता—

परका निज मानना ही अनपकी ज है। जैसे काठ रज्जुम सर्प मान लेवे तब मित्राय मनक और क्या लाभ ? परकी परिणति कभी आपरूप नहीं होती। समारम नितने पनाय है यह चाहे चेतन हा, चाह अचेतन हा। नैतन पदाथ चेतन दूय और चेतन गुणाम व्याप्त होकर रहग। अचेतन पनाय अचेतन दूय और गुणाम व्याप्त हाकर स्वभावे रहग। जैसे कुम्भकारक द्वारा घट बनाया जाता है किन्तु न तो घटम कुम्भकारका द्रव्य जाता है और न गुण जाता है क्याकि उन्तुकी भयाना अनानिनिजन है।

अस्य परिवर्तन नञ् एव सञ्चिता । द्रव्यान्तरक सममणने त्रिणा  
 गद एतद् अन्यका परिणमन करनत्राता नञ् एव सञ्चिता । इसी  
 तरह पुद्गलमय वा ज्ञानावरणादि कम है उनम न तो जायना  
 द्रव्य के श्रौर न गुण है, क्योंकि द्रव्यान्तर सममण वस्तुर्ही  
 मयात्म मी निषिद्ध है । अतः परमात्मने आत्मा ज्ञानावरणादि  
 का कता नञ् फिर भा एसा निमित्तानैमित्तिक सम्बन्ध अनादि  
 मे चञ्चा आ रञ्च है नि तिस समय आत्मा रागादि रूप परिणमता  
 है तस प्रालम वा उगणा कामणरूप आत्मके प्रत्येक प्रथममे  
 सम्बन्धित है यह ज्ञानावरणादि कमरूप परिणमनसे प्राप्त हो  
 जाता है तथा वा रागादि परिणाम तस परिणमनम कारण  
 है उनक निमित्तम पर कम ज्ञानांतरम तथ्यमे आकर  
 आत्मसे रागादि रूप परिणमनम निमित्त कारण हा ताते  
 है । कमका तथ्य तिस प्रकारक फलानतम समप्र होता है यहा अनु  
 भागप्र है । तस समय आत्माम त्दयानुद्भूत परिणमन होता है ।  
 त्मी समय वा कामणवर्गणाँ है व यथायोग्य ज्ञानावरणादिरूप  
 परिणमनका प्राप्त नञ् जाता है । तस रीतिसे अनादि मसार्वी य  
 परिपाटा चल रही है । अनुभवम यञ् आता है नि य रागादि  
 परिणाम होत है तनका फल न तञ् कारण होना चाहिये । यञ्  
 क्या है ? सा प्राग्रता नहीं । किन्तु एसा नियम है कि जा कार्य  
 होता है यञ् त्पागत और निमित्तसे ज्ञाना है । उपादान तो हम  
 हा है, निमित्त कारण जा है पर रागादि पाप्म कोड होना चाहिये  
 मी आदि ता नियामन नहीं ।

### आत्मज्ञानका अभाव—

जत्रतक माह रहता है तत्रतक ता स्वात्मदृष्टिका उदय ही नहीं,  
 अपने अस्त्वत्परीक्षा परिचय नञ् । कोहेकी शांति ? यह जीव  
 अनादिबासे अपनेका नहा जानता, क्योंकि वो अपनी सत्ता है

यह गद्यपि प्रिममय ज्ञानम आता है परंतु उम आर लक्ष्य नहीं। तत्र भृगु लगती है, पियास मताता ह, शीत ही हमें राध जाता है कि हम भूये ह, प्यासे ह। यही बोध तो हमारा परिचय है। इससे अधिय ज्ञान आत्माना और कौन करा नगा ? परंतु हम नम धार नष्टि नहा देत क्याकि यह प्रक्रिया प्रतिदिन रा है। यही परिचय अज्ञाना कारण हा जाता है। आ मात्रा परिचय प्राणामात्रा है परंतु उम आर लक्ष्य नहीं। आत्मनान न हो तो दुद्र भी वाय नहीं हो मरता। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चो चार मज्जाएँ निसरे हाता है वहा ता जा मा है। यद्यपि ग्रामा अमूर्त पत्ता है मृत पदाथरा परसे सम्प्रय नहा हा सना परंतु अनादिजालसे हम जायक माहना सम्प्रध है इसमे परको निच मानता है और जन परको निच माना तब परकी रगार अत्र नाना प्रकारके प्रयास करने पडत है। शरीर तिन पुण्गल द्रव्यासे रना है, उनका जन त्रुटि हान लगता है तब यत् नीय उनकी वृत्तिना प्रयास करना है। उमा तरह तत्र काधादि कपायाना दय हाता है तत्र किसारे अनिष्ट करनरा भाव होता है, निन्मामे अपनी प्रशसा चाहता है, किमी पदापना इष्ट मान ग्रहण करना चाहता है, मायाचारार वशीभूत हाकर अयथा परिणमन करना है। उमा तरह जन हास्यादि कपायना उच्य होता है तत्र हास्यादि रूप परिणमन करना है। इसी तरह नम चायकी नाना दशा हाता है। यत् मत्र जंचाल परको निच माननेम है। निस काम यह परको पर आपको आप मानकर कंचल जाना हष्टा बना रह अनायाम यह सत्र परिणमन शान्त हो जायगा।

### परसम्पर्क—

शो पत्तार्थोना सम्पर्क जनक है तत्रतत्र यह दुरवस्था है। जहां सम्पर्क छूटा कि सत्र गया। तिनना अधिय जनसम्पर्क ह्योगा



जाना है। समाप्त प्रथम श्रद्धा प्राप्त होगी। चित्तने मनुष्य मिते  
 है अपनी समस्त शक्तों जलापनर चकमे डालनेकी चेष्टा करते हैं।  
 परन्तु आवश्यक यह है कि चित्त उपयोगका स्पष्ट रचना।  
 उपयोगका स्वरूप है कि जा पदाय उमम आरगा जना दबगा।  
 प्रथम वा अस्मिन्मय है। तुम्हारे ज्ञान है। इमके द्वारा रूप-रम  
 गत्य स्पष्ट है ता तुम्हारे ज्ञानके विषय है। इमके अधिन अस्मिन्मय  
 ज्ञानका शक्ति नहीं। तुम चित्त वपायन अनुसार निर्माता इष्ट  
 प्रार निर्माता अनिष्ट होनेकी सम्पना करते हैं। इष्टर मपट और  
 अनिष्टके त्यागमे प्रयत्नशील रहते हो। इमके भा कोई नियम नहीं  
 कि इष्ट पत्ता सर्वथा इष्ट रहे। जा वस्तु पतित इष्ट है यहा वस्तु  
 कालांतरमे अनिष्ट देखी जाया है। शान्त्यन शक्तिर क्रतुमे  
 इष्ट नहीं और वना शान्तल म्पन घीष्य काम इष्ट देगा जाता  
 है। जा उनी वस्त्र शान्तनाममें सुगद देगा जाता है र्नी यस्व गर्मी  
 व दिनाम अनुगद देगा जाना है। ना रम शान्तनाममें इष्ट हाता  
 है र्नी गर्मीके दिनाम अनिष्ट देगा जाता है। जा गाली अपने  
 काममें अनिष्ट होती है यहा गाली ममुरालमें इष्ट माह्वम हाती  
 है। अन उचित है कि परना सम्पन त्याग।

( १९ म २०१११११ )

## त्यागियों और विद्वानों से

श्रुतिपञ्चमीना यद् पत्र हमका यद् शिक्षा देता है कि यदि  
 कल्याण करनेका इच्छा है तब ज्ञानाचन करा। ज्ञानाचनर विना  
 मनुष्य जन्मकी साथरता नहीं। देव और नारकियाम तीन ज्ञान

होते हैं। जो ज्ञान होते हैं उनमें विशेष वृद्धि नहीं कर सकते हैं। जैसे दवाएँ देशावधि हैं वे उमे परमावधि सत्रावधि नहीं कर सकते। हाँ, यह अर्थ है जैसे उनके मिथ्याज्ञानका उदय था तब उनका ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलायेगा। सम्यग्ज्ञानके हो जानेपर सम्यग्ज्ञान हो जायेगा। परन्तु दब पयायम समयका उदय नहीं। अतः आपर्याय रही अधिरत अरस्था रहेगी।

मनुष्य पयाय ही का त्रिलक्षण महिमा है जो ममलसयम धारण कर वह समार उपन त्रिनाश कर सकता है। यदि समारना नाश होता है तब इसी पयायमें होता है अतः इस पयायका महत्ता समयमें ही है। हम निरंतर समारना यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य जन्म पानर इसकी माधकता इसमें है कि ऐसा उपाय करो जिससे फिर समार बंधनम न रहना पड़े। इस उपदेशका तात्पर्य केवल सम्यग्ज्ञानमें नहीं, क्योंकि सम्यग्ज्ञान तो चारों गतियाम जाता है। केवल इस को प्राप्त किया तब क्या विशेषता हुई। अतः इससे उत्तर समय धारण करना ही इस पयायकी सफलता है।

आनन्दल उड़े बड़े विद्वान यह उपदेश दते हैं कि स्वाध्याय करा। यहा आमन्त्याणका भाग है। उनसे यह प्रश्न करना चाहिये महानुभाव ! भगवन् ॥ विद्वन्निद्रोमणि ॥ आपन आनन्द विगाभ्याम किया, सद्गुरुओंको उपदेश दिया, स्वाध्याय तो आपका जानन ही है, हम जो चलगे मा आपके उपदेश पर चलेंगे। परन्तु देखत ह आप स्वय स्ववाचायने करनका कुछ लाभ नहीं लत। अतः हमका ता यहा श्रद्धा है कि स्वाध्याय करनमें यही लाभ होगा कि अथका उपदेश देनेम पट्टा हा जायेग। सा प्राय तिनना बाताना उपदेश आप करते हैं हम भी कर दते हैं। प्रत्युत एक बात हम लागाम विशेष है कि हम आपके उपदेशसे दान करते हैं। अपने गानकोंको यथाशक्ति जैनधर्मका ज्ञान करानेका प्रयत्न

करा है। परंतु आपमें यह बात नहीं दृग्गी जाती। आपमें पाम चाहे पचासा हजार रुपया हा जाय परंतु आप ग्ममसे दान न करेग। अथवा कथा द्वाद्विय आप तिन विद्याया द्वारा विद्वान हुए, उनका अर्थ अभी १००) नहीं भजे होंग। तिनका मन धाडा अरु वसे यह न करेगा। हागा वि भाग। मम ता अमुक विद्यालयमे विद्वान हुए उमरी मनायता करी चानिय। तथा नगनरा उपदश मम जाननेका स्वग परंतु अपन जातोंका १०० १०० हा घनाया हागा। धर्म शिक्षाका मिडिल सी न कराया हागा। अथवा मग माम मधुन त्यागका उपदश दत्त है। आपसे का पृथे वि आपन प्रष्टमूत गुण हैं ता हँम दवेग। व्याख्यान दत्त दत्त पानाका गिताम का नार आ नार ता का रडी नान नर। हमार आता गग भा ममीम प्रसन्न ह वि १०० जान मर्भाका प्रसन्न कर लिया।

यदि यह पण्डित वग चाहे नत्र ममानका बहुत रुद्र हित कर सकता है। ता पण्डित हैं व नियम कर नैयें कि निस विद्यालय से हमने प्रारम्भम विद्यानन किया है और निसम अन्तम स्तानक हुए, अपनेरो कृतज्ञ मनने लिय २) प्रतिशत दवग। १) प्रतिशत प्रारम्भम विद्यालयन लिय तथा १) प्रतिशत अन्तिम विद्यालयका प्रतिमाम भिन्नवायेंगे। यदि २००) माम उपानन हाता हागा तत्र २॥) २॥) प्रतिमाम भिन्नवायेंगे। तत्र १) वपम १० न्नि दानो विद्यायाके अथ देवेंगे। अथवा यह १) दे मर तत्र कमसे कम जर्न नार उन विद्यायाका परिचय तो करा दव। तिनका १००) स वम आय हो यह प्रतिपर्य ५) ५) ता अपना मग्था मातश्रीका पहुँचा देव। तथा यह भी न उन तत्र संसारम गत्र यपमें कमसे कम निस प्रामक हा जहाँ रहकर लागाम धर्म प्रचार तो कर दवें।

व्यागियाका बात कौन कह ? यह तो त्यागी हैं। किमने

त्यागी हैं ? सा दृष्टि डालिये ता पता चलगा । त्यागी वर्गको यह उचित है जहाँ जायें वहाँ पर यन्त्रि विद्यालय हो तत्र ज्ञानाचन कर । केवल हल्दी, धनियाँ, जारने त्यागम ही अपना समय न प्रितारे । गृहस्थके बालक जहाँ अध्ययन करते हैं वहाँ अध्ययन करे तथा शास्त्र सभामें यदि अच्छा विद्वान् हो ता उनके द्वारा शास्त्र प्रवचन प्रणालीका शिक्षा लयें । केवल शिष्या प्रणाली ही तत्र न रह किन्तु समारंभ उपकारम अपनको लगा देयें । यह ता व्ययगर है । अपने उपकारम इतने लान हा जाय कि अन्य ज्ञान हो उपयोगम न आय ।

कन्याणका भाग पर पदार्थोंम भिन्न जा निव द्रव्य है उभाम रत हो जाना है । उमका अथ यह है ता परम रागद्वप विकल्प होते हैं । उसका मूल कारण माह है । यदि माह न हो तत्र यत् प्रस्तु मेरा है यह भाव भी न हो तत्र उमम राग हो यह सप्रथा नहीं हो सकता । प्रेम तभी हाता है जब उसम अपन अस्मित्वका कल्पना की जाय । देगा । प्राय मनुष्य कर्त हैं हमारा विश्राम अमुक धमम है । हमारी ता प्रीति म्मा धमम है । विचार कर देगा प्रथम उम धमका निवका मानना भी तो उसम प्रेम हुआ । और यदि धमको निवका न माने तब उमम अनुराग होना असम्भव है । यहा कारण है कि एक धमवाना अन्य धमसे प्रेम नडा करता । अत निवको आत्मकल्याण करना है व आत्मासे राग कर जा आमा नहीं उनपे राग न करें और न द्वप करें । आत्मा एव द्रव्य है, ज्ञानदर्शनवाना है, बलि यद् भा व्यवहार है । ज्ञान-दर्शनसे विकल्प क्षयापशम वानम हाते हैं ।

अत पत्रमी }  
वि० म० २००८ }

## द्रव्य और उसके परिणामका कारण

‘अहप्रत्ययवेद्यत्वाज्जीरम्यास्तित्त्वमन्वयात् ।

एको दरिद्र एक श्रीमानिति च कर्मणः ॥”

म सुग्री ऋग्नी हूँ, इत्यादि प्रत्ययम चीजर अमित्वका सान्ना फार हाता है न ग ज प्रयमे भा इमका प्रत्यय हाता है रि यह का दवदत्त है जिसे मेंन मधुराम दरवा था । अब यहाँ देग्य रहा है इम प्रत्ययम भा आत्माक जमित्वका निणय हाता है तथा फा ता श्रीमान दरवा जाता है, का दरिद्र दरवा जाता है, इस विभिन्नता का उ कारण जाना चाहिये । यह विषमता निर्हेतुक नहीं, जा हेतु है नामा समनाममे कहा जाता है । नामम विद्या नाना-चाहे कम कहा, अष्ट बहो, अर कहा पुदा कहा, विधाता कहा, जा आपका स्मिन्न हा परतु य अवश्य मानना कि य विभिन्नता विमूल नहीं । तथा य भी मानना पड़ेगा कि जो य इश्यमान बगल है उ कहा एव जीवना परिणाम नहीं । यदि केवल एक पदाका हा तत्र मम नानात्र कहाँमे आया ? नानात्व का नियामक द्रव्या तर होना चाहिये । कवापुद्गलम य शब्दादि पयायें नही होता । जब पुद्गल परमाणुभारा व शक्या हो जाती है तभी य पयायें हाता है । उम अस्थाम पुद्गल परमाणुआकी सत्ता द्रव्यरूपसे जगधिन रहती है । शब्दादि पयाय नत्र परमाणुआकी नहीं किंतु स्वयं पयायात परमाणुओं की है । उसी तरह जो रागादि पयायें हैं उह उदयान्नापन्न जो कम उमक मद्गायम हा रागादि पयाय जीवम हाता है । यदि एसा

न माना जाय तत्र रागादि परिणाम नीयका परिणामिभ भाव नो जाय । एसा होनेसे समारका अभाव हो जाय । यह किमानो ष्ट नहीं । किन्तु प्रत्यक्षसे रागादि भावका मद्भाव दखा जाता है । इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादिभाव औपाधिक है । जैसे स्फटिक मणि स्फुरन्त है किन्तु जरा स्फटिक मणिसे मात्र जपापुष्पका सम्प्रथ हाता है तत्र उमम लालिमा प्रतान हाती है । यद्यपि स्फटिक मणि मध्य रक्त नहीं किन्तु निमित्तका पावर रक्तिमामय प्रत्ययका विषय हाती है । इससे यत् समभम आता है कि स्फटिक मणिसे निमित्तका पावर ताल चान पडती है, जत् लालिमा मयरा अमय नहा । एसा मिद्वान्त है कि चा द्रव्य निम कावम निम रूप परिणमता है उम कालम तमय हा चाना है । श्री ॐ ॐ ॐ मन्त्राचन म्वय प्रवरनमारम लिग्या ॐ—

‘पणादि जेण दव्य तम्हाल तम्मयत्ति पण्णत्त ।

तम्हा वम्मपरिणट आदा घम्मो मुणेत्त्वो ॥”

इम सिद्धा तमे यदा तत्रापि निराला कि आमा तिम समय रागादिमय परिणमगा उम कानम नियमप उस रूप नी है तथा पयाय ष्टिम उर्दी रागादिना म कावम भाक्ता हागा, चा भाव वरगा यतमानम म्भारा अनुभव हागा जल शानत है । परतु अग्निसे सम्प्रथसे षण पयायका प्राप्त करता है । यद्यपि मम शक्ति अपेक्षा शीत हावना याग्यता है परतु वतमानम शात नना । यदि वाट म्से शीत मानर पान कर तत्र दग्ग हा हागा । इमा प्रकार यदि आ मा वतमानम रागरूप है तत्र रागा ही है । इस अवस्था म धानरागताका अनुभव हागा अममभव ही है । उस कालम आमाको रागादि रहित मानना मिथ्या है । यद्यपि रागादि परिणाम परनिमित्तक है अतएव औपाधिक है, नाशशाल है

परन्तु वतमानम ता आण्ण परिणत अय पिण्ठवा आत्मा नमय हा रहा है । अथान उन परिणामाक साय आत्माता तादा म्य हा हा है । इमीना नाम अनित्य तादा म्य है । गण अलाय कथन की । निम वागम एक मनुष्यन मशपाय त्रिया वतमानम जय यण मनुष्य मशपानक तागमे उमत्त हागा तत्र म्या वतमानम गण मनुष्य उमत्त न । ? प्रवश्य उमत्त है । किन्तु तिसीसे आप गहन कर त्रि मनुष्यहा ताग कया है ? तत्र कया यह उत्तर देने जाना यण कट सक्ता है त्रि मनुष्यका लक्षण उमत्तता है ? तर्ही । उमसे थ्याप कया यह उग त्रि उत्तर तीय उहा ? न । कह मयत, म्याकि मनुष्यकी सभा अवस्थाआमे उमत्तताया व्याप्ति नहीं । इमी तरह आत्माय रागादि भाव ह्यान पर भा आत्माया लक्षण रागादि ना हा मयता म्याकि आत्माया अनेक अवस्थाएँ हाता है । उन समय यद् रागादि भाव व्यापन रूपसे ना रहता, अत यह आत्माया लक्षण की हा मयता । तावण यह हाता है जा सभा अवस्थाआम पाया जाय । एसा लक्षण चेतना ही है । यत्रपि रागादि परिणाम तथा वेग-तज्ञानादि भाव आमा हीमें होत ह परन्तु उठ तावण न । भाता ताता, म्याकि व पयाय त्रियाव ह । व्यापन रूपमे नहा रहती । चेतना हा आत्माया एण एसा गुण है ना आत्माया सभा वशाआम व्यापन रूपसे रहता है । आत्माया दा अवस्थाएँ है—ममारी आर मुक्त । इन नानोम चेतना रहती है । इमीम अमृतचन्द्र मयमान लिग्या है—

“अनाद्यनन्तमचल स्वसम्बेद्यमिदं स्फुटम् ।

जीव स्वयं तु चेतन्यमुच्चैश्चक्रकायते ॥”

जीव नामन ना पन्थ हं उठ रयय सिद्ध है तथा पर निरपेक्ष अपन आप अतिशय कर चक्रकायमाय—प्रकाशमान हा रहा है ।

कैसा है ? अनादि है, कोई इसका उपादक नहीं, अतएव अनादि है, अतएव अकारण है, जो वस्तु अनादि अकारण है वह अनन्त भी होती है तथा अचल है । एसे अनादि अनन्त तथा अचल अर्थात् द्रव्य भी है । इसमें इसका लक्षण स्वरूप भी है यत् स्पष्ट है । जाय नामक पदार्थ अथ अर्थात् अथवा चेतना गुण ही भेद करनेवाता है । क्या गुण इसमें प्रिय है । जो सब पदार्थों की और निरन्तरी व्यवस्था कर रहा है । इस गुणका सभी मानत है परन्तु का उम गुणों उमसे सर्वथा भिन्न मानत है, और कोई गुणमें अतिरिक्त अन्य द्रव्य नहीं, गुणगुणा सर्वथा एव है एसा मानते हैं । काइ चेतना तो जीवमानते हैं परन्तु वह न्यायपर परिच्छेदमें परात्मरूप रहता है । प्रकृति और पुरुषमें सम्बन्धमें जा बुद्धि एतत् हाता है उममें चेतनाके सम्बन्धमें जानपना आता है एसा मानत है । काइ कहता है कि पदार्थ नाना नहीं एव हा अद्वैत तत्त्व है, यह जय मायावच्छिन्न होता है तत्र यत् समार हाता है । किमाना कहता है कि जाय नामक स्वरूप जीवका मत्ता नहीं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनकी विलक्षण व्यवस्था हाता है । एसी समय यत् जीव रूप अत्रम्या हो जाता है । यत् चित्तन मत है सर्वथा मिया नहीं । जैनदशानम अनन्त गुणाना जो अत्रिप्रभाव सम्बन्ध है वही तो द्रव्य है । यह गुण आत्माय आत्मीय स्वरूपकी अपेक्षा भिन्न भिन्न है परन्तु काइ एसा उपाय नहीं जा उनमसे एव भी गुण प्रथम हा मत् । जैसे पुद्गल द्रव्यम रूप-रम-गात्र स्पर्श गुण हैं, चक्षुरादि इन्द्रियामे पृथक् पृथक् ज्ञानमें आते हैं, परन्तु उनमें कोई प्रथम करना चाहता नहीं कर मत्ता । व सब अग्रण्डरूप से प्रियमान है । एन सब गुणोंका जो अभिन्न प्रदेगता है उसीका नाम द्रव्य है । अतएव प्रयत्नमारामे श्री कुन्दलदेवने लिखा है—



“वृत्ति विना परिणाम अत्यो जत्थ विणेह परिणामो ।  
दत्तगुणपञ्जयथो जयित्तणिप्पणो ।”

परिणामके विना प्रयत्न सत्ता नहीं तथा अथर्व विना परिणाम नहीं । जैसे तुरन्त रूधि की छात्र इनके विना गारम उष्ण भी सत्ता नहीं रहता । इसी तरह गारम न हा तत्र तत्र दुग्धात्किरी सत्ता भी नहीं । एवं यदि आत्मान विना ज्ञानादि गुणाका कोई अस्तित्व नहीं । विना परिणामीके परिणामका नियामक साह नहीं । यदि यह अवश्य है कि ये गुण सत्ता परिणामशील हैं किन्तु अज्ञानिमे आत्मा कमास सम्बन्धित है तब सम डमक ज्ञानादि गुणारा विनाश निमित्त करणान् सत्कारम हाता है । हाता उमीम है परन्तु जैसे घटात्पत्तिरी याग्यना मृत्तिकाम स्वीयता है । परन्तु उम्भकारक व्यापारके विना घट नही बनता बलशरी उपत्तिर अनुकूल व्यापार उम्भकारम ही हागा फिर भा मिट्टी अपने व्यापारसे घट रूप हागी । उम्भकार घटरूप न हागा । उदाहरण गुरुय माने बालाका रहना है कि उम्भकारका उपस्थित उर्हापर जत्र मिट्टीम घट पर्यायना उपत्ति हाती है, स्वयमत्रहा जाता । यद्दोपर यत्र रहना है कि घटात्पत्ति स्वयमव मिश्रमें होती है इसका क्या अर्थ है ? जिस समय मिट्टीम घट हाता है उस कालम क्या उम्भकारादि निरपेक्ष घट हाता है या सापक्ष ? यदि निरपेक्ष घटात्पत्ति हाता है तत्र ता एव भी उदाहरण वनाथा जा मृत्तिकाम उम्भकारक व्यापार विना घट दुश्चा हा, सा ता दग्धा न । चाता । सापक्ष पञ्चका अज्ञानार करणो तत्र स्वयमेव आ गया कि उम्भकारके व्यापार विना घटभी उपत्ति नहीं हाता । इसका अर्थ यह है कि उम्भकार घटात्पत्तिम सत्कारा निमित्त है । जैसे आत्मान रागादि परिणाम होत है, आत्मा हा इनका उपात्तकरना है परन्तु चास्त्रिमाहने

बिना रागादि नहीं होते। हात आमा म ही है परंतु बिना कमादयक य भाव नहीं हात। यदि निमित्तक बिना य तत्र आत्माने त्रिफला अत्राधित स्त्रभाय हा जाय मा एसे य भाव नहीं, इनका बिनाश हा जाना है अन यह मानना पडगा कि वे आत्माना निव भाव नहीं। इसका य अर्थ नहा कि य भाव आमान होत हा नहीं, होत ता है परंतु निमित्त कारणको अपेक्षासे नया हाते यदि एसा कथाग तत्र आमान मनिज्ञातादि ता चार ज्ञान उपज होत है य भा ता नैभिन्निक है, उनको भा आत्माने मन माना। यह ही हम मृष्ट, म ता यो तत्र मानने का प्रनुत है कि चायापशमिन् आत्मानिन् आपशमिन् चितने भी भाव है व आमान अस्तित्वम मरणा नया हात। उनकी क्या छोड़ो, श्वायिन् भाव भी ता क्षयम हात है व भी अत्राधित रूपसे त्रिफालम नहीं रहत अन य भी आत्मान लक्षण नया। केवल चेतना ही आमाना लक्षण है। यही अत्रस्थित त्रिफालम रचना है। एसा भावको प्रथम करनवाला एव श्वाय जष्टात्क गीतास अष्टायत्र ऋषिने लिखा है—

‘नाह देहो न मे दहो जीवो नाहमह हि चित् ।

अयमेव हि मे बन्धो मा स्याज्जीवित स्पृहा ॥’

मैं देह नहीं हूँ, और न मेरा दह है और न मैं जाय हू, मैं तो चित् हूँ, अथान् चैतन्य गुणवाला हूँ, यदि एसा चस्तुरा निव स्वरूप है तत्र आत्माना तत्र क्या जाता है ? एसा कारण हमारी इस नीयम मृष्टा है। यह चोन्द्रिय, मन प्रचन त्राय, श्वामान्दवास औरश्रायु प्राणयानपुतलम हमारा स्पृहा है यही ता तत्रका मूलकारण है। हम निव पयायम जाते हैं उसीको निव मान बैठते हैं। उसके अस्तित्वसे अपना अस्तित्व मानकर पयायतुद्धि होकर मन व्यन

हार पयायने अनुरूप प्रवृत्ति करत करत एव पयायवा पूर्णकर  
पयाया तरको प्राप्त करत है । इसमें यही तो निराला कि हम पर्याय  
चुद्धिसे ही अपना जीवन तागा पूर्ण करत है । श्रीपञ्चास्तिकायम  
ना श्री सुन्दरुद्वयन लिखा है —

गदिमधिगदम्म दहा दहादिदियाणि जायते ।

जो खुदु ममारत्थो जोरो ततो दु हादि परिणामो ॥

परिणामादा कम्म कम्मादो गदिमु हादि गदो ।

गदिमधिगदम्म देहो दहातो इदियाणि जायत ॥

तहि द विमयग्गहण ततो रागो लोभो वा ॥

जायति जीवस्मेव भावो ममारचक्खवालम्भि ।

जो ममारस रहनवाता जीव है उनमें सिंगघ परिणाम हाता  
है परिणामोंसे कम्मना बंध हाता है, कम्मस एव गतिमें अन्य  
गतिमें जीव जाता है । जहाँ जाता है वहाँ रहना ग्रहण करता है,  
विषय ग्रहणसे रागादि परिणामांका उत्पत्ति हाता है । फिर  
रागादिमें कम्म और कम्मम गति, गत्यंतर गमन फिर गत्यंतर  
गमनमे देह, देहसे इन्द्रिया, इन्द्रियोंसे विषय ग्रहण विषयमे  
स्निग्ध परिणाम, परिणामासे उर्म, कम्मम प्रही प्रक्रिया उस तरह  
यह ममार चक्र परापर चला जाता है । यन्त्रि इराका मिटाता है  
तत्र यन्त्रि प्रक्रिया है कम्मना अत करना पहगा । कम्म प्रक्रियाका  
मृत कारण स्निग्ध परिणाम है उनका अत करना ही इस मय  
चक्रम विध्वंसका मृत हतु है । कम्मना दूर धरनर क्पाय जन्मे जन्मे  
महात्माओंने पतलाण हैं । आप ममारस चित्तन आयतन प्रमेने  
दियत है । इसा चक्रसे बचाने हैं । किन्तु अतरद्ग दृष्टि डालो तथ

यत् सभी व्याय पराश्रित हैं। केवल व्यायुक्त उपाय ही व्यायुक्त समारक विघ्नशाना कारण हो सकता है। जैसे शरारत यदि अत्र गान्तर अर्जाण हा गया है तो उसमें अर करनेका व्यायुक्त व्याय यह है कि उत्तरम पर द्रव्यका आ सम्बन्ध हा गया है उसे प्रक कर दिया जाय ता अनायाम ही नारागताका लाभ हो सकता है। माक्षमागम भा यहा प्रक्रिया है। अपि तु नितने जाय है उन मरती यहा पद्धति है। यदि हम समार उपनत् मुक्त हानका अभिलाषा है तो मरसे प्रथम हम क्या है? हमारा क्या स्वरूप है? उनमान क्या है? समार क्या अनिष्ट है? जय तत्र यत् निगय न हा जाय तत्र तत्र उसके अभायका प्रयत्न करना दो हा नही सकता। जत यह आत्मा क्या है? यह हम शरम्भम हा यणत अर चुक है मरती आ अयम्था हमें मसारी यना रही है उससे मुक्त हानेकी हमारा इच्छा है तत्र कयत इच्छा करनेसे मुक्ति पाय हम नहा हा मरत। जैसे अग्निने निमित्तमे जल उष्ण ना गया है अत्र हम माला तरार चपने लग शान स्पर्शयज्वलाय नम तत्र अनल्प कालम भा जल शान न हागा। उष्ण स्पर्शका अर करनेसे ना चलका शीत स्पर्श हागा। टमी तरह हमारा आत्माय ना रागाति विभाव परिणाम है उनसे अर करनेसे अत्र श्री वीतरागाय नम यद् जाप असत्य रूप भी चपा जाय ता भी आत्माय वीतरागता न आरगी विन्तु रागाति निवृत्तिमे अनायाम रातरागता आ चावगा। वीतरागता नवान पत्रा न। यह आत्मा परपत्रा म माद करता है। मोह क्या वरनु है? निम्न उच्यमे परम निवृत्त बुद्धि होता है यहा मोह है। परना नित मानता यह अज्ञान भाय है। अथान् मिथ्याज्ञान है इसका मृत कारण मोहका उच्य है। ज्ञानावरणका श्रयापशम जानमे हाता है परन्तु विषयय हाना है उसे शुक्ति काम रचतका विभ्रम होता है।

गइ परन्तु स्व चारित्रिकादि कारणामे भ्रान्ति हा जाती है, भ्रान्ति का कारण स्वत्वादि क्षय है जैसे रामता रागा नय शङ्का स्वत्वा है तत्र पात शङ्क एसा प्रनाति करता है। यद्यपि शङ्कम पातना नहीं यह ता नत्रम रामता रोग हानेमे शङ्कम पीतत्व भङ्गमाग है। यत्र पीतता कर्ममे आया? तत्र यही कर्मा पडेगा कि नत्रम रामता रोग है तदी इम पीतत्व ज्ञानका कारण हुआ। एसा चार चामाम का रागादि हात है उनका मूला कारण माह नाय हम है। उमके ल भेद है—एत्र स्वानमा दुगरा चारित्रमाह। एम स्वानमाके उद्यमे मित्रास्त्र और चारित्रमा उद्यमे रागद्वेष हात है। उपयोग आ माना एसा है कि एमक सामने जो भी आर उसका प्रतिभाम हाता है। वैम नेत्रक समथ जा घन्नु आता है उमका ज्ञान करा दता है यदा तत्र ता काई आपत्ति नहीं परन्तु का ज्ञानम आर उम पदार्थका आत्माय मान ताता ही मिथ्या अभिप्राय है। संसारम दुगा जाता है कि का पर घन्नुका नित मानता है उसे ताग टग कहत है परन्तु यद आट्टापन छूटना सम्भ नहीं। अन्धे अन्धे चीष पररा नित माना है और एन पदार्थकी रक्षा भा करने है किन्तु अभिप्रायम यह है कि यह हमार नहीं अतएव उन्ह मग्यगानी कहते हैं। मिथ्यादृष्टि काव न्हें तिन मात अनंत समारके पात्र हाते है। समभग नहीं आता यह विपमता क्या? विपमताका मिटना सम्भ नहीं स्वयमव मिटती है या कारण कृत्सम। यति स्वयमव मिटना है तत्र उमक मिटानका जो प्रयास है वत्र व्यर्थ है। पुण्या का प्राय सभी करत है परन्तु सभी सफ मनारथ क्या तदी नाल? तत्र यही चार हागा कि तिमने यथाव प्रयास नो किया एमका प्राय सफल नहीं हुआ। फिर कीड प्रश्न कर कि अंतरङ्गम ना चाना है परन्तु प्रयास अनुत्तल नहीं गने, इनम कारण क्या है उद्य सुद्धिम नहा आना।

अततोगत्या यही उत्तर मिलता है कि जत्र जीवना कल्याण होनेका समय आता है अनायास कारण कूट जुड़ जाते हैं। वान चाहता कि हम आरुणता हा और हम टु मरे पात्र बने फिर भी वो नहीं चाहता यह होता है और जो चाहता है वह नहीं हाता। यह प्रभ हराण्व करता है, उत्तर भा लाग देते हैं कि तु अतमे अनाग्य उत्तर नहीं मिलता। अत इत मभटों चक्रम न पडकर नितनी चेष्टा करो निवृत्तिरे उपर नृष्टिपान कर करा। अयकी कथा छाडा यदि तीत्रोत्यमें मिध्यात्व रूपम कार्य क्रिय गय उनम भी यही भावना करो कि अय न करने पड। मरी ता य श्रद्धा है कि रोइ भा कार्य करा चाहे यह शुभ हा, चाह अशुभ हा, यनी भावना माना कि अय फिर न करना पडे। जैसे मद्र कपायाके न्दयम पूतनादि काय करन पडते हैं उनम यह भावना रक्खा कि ह भगवान्। अत्र कालांतरम यह न करना पडे। मिध्याज्ञानी और सम्यग्ज्ञानीम यनी ता अतर है कि मिध्याज्ञानी जत्र शुभ कायका उपादय मानता है, सम्यग्ज्ञानी ऋण वान अण करता है, यनी विषमता दोनोंम है। इस विषमताका कारण शाना कठिन है। यही कारण है कि अनन्त जम तप करत करते द्रव्यनिगसे मास्य नहीं हाता। इसका मूल अभिप्रायकी ही मलिनता ना है। इस अभिप्रायकी मलिनताको मिटानेवाला यह आ मा प्रय प्रयत्नशील हा मिट सकनी है। यन्ति यह न होता तो माक्षमाग ही न हाता। जत्र जात्थामें अचित्य शक्ति है तत्र उसका प्रयाग आत्माय यथा परिणतिके लिए क्यों न क्रिया जाय ? जो प्रामा वगतकी व्यवस्था करनेम ममथ है यह आत्मीय व्यवस्था न कर सक, सममम नहीं आता किन्तु हम उस ओर लक्ष्य नहीं देत। यहाँपर इस शङ्काका अयकाश नहीं कि नेत्र पन्थातरोको जानता है परन्तु अपनको नर्न जानता। इसका उत्तर यह है कि जत्र नेत्र अपनेका देखना चाह तत्र एव तर्पणका

समस्त रम्ये उमम जय मुग्धता प्रतिनिम्न पडता है तत्र नेत्रनी  
 आकृतिवा बोध हा जाना है। यह भी तो नेत्रन दिखाया। जन  
 ज्ञान घटाणि पत्थार्थाना दग्धता है तत्र उर्की व्यग्रस्था करना है और  
 जय स्या मुत्त हाता है तत्र यही ता निरल्प होता है कि जो घटादि  
 देखनेवाला है धना ता र्म हू। परमाधमे ज्ञान वाण घटादिनामी  
 व्यग्रस्था नहीं करता किन्तु ज्ञानम जा निरल्प हुआ उमको जानता  
 है और उसीकी व्यग्रस्था करता है अथात् ज्ञानम जा अर्थाकार  
 निरल्प हुआ ज्ञान उमा ज्ञाननी पर्यायना समदन करता है तत्र  
 इमना यहा ता अथ हुआ कि ज्ञानन अपने स्वरूप ही का उदन  
 किया। इम तरह जय और ज्ञाननी व्यग्रस्था है और यह व्यग्रस्था  
 अनादिसे चली आइ है। अनन्तराल पर त रहगी। किन्तु इस  
 न्यग्रस्थाम जा हमारा परना निच माननना पद्धति है वही पद्धति  
 रागद्वेषका उत्पादन है अत निहे अपनको ससार बधनम रगना  
 इष्ट है यह इस मायताका अपनाना चाहिय। यद्यपि निमाको  
 यह इष्ट ना कि इस जालम हम रहें परन्तु अनादिसे हमारी  
 मायता इतनी दूषित है निममे निजको जानना ही असम्भन है।  
 जैसे जिस मनुष्यने विचरनी भावनक्रिया है उससे केवल चावलका  
 म्याद पूजा तो नहीं बना करता। इसी तरह मोहके उदयम जो  
 ज्ञान हाता है उमम परका निच माननेनी ही मुग्धता रहती है।  
 यद्यपि पर निच नहा परन्तु म्या किया जाय। जा निमल नृष्टि है  
 यह माहने मन्त्रधसे ननी मलिन हो गई है कि निचनी आर  
 जाती ही नहीं। इसीसे मन्त्रधम यह दशा जीवनी हो रही है कि  
 लभत पान करनेवाली तरह अथवा प्रवृत्ति करता है। अत इस  
 चक्रसे बचनेके अर्थ परम ममता त्यागो। केवल बचनासे व्यवहार  
 करनेसे ही सतोप मत कर ला। जा मोहके साधक हैं उहें  
 त्यागो। जैसे पञ्चद्रियाने विषय त्यागनेसे ही इन्द्रिय विनयी

होगा। क्या करनेसे कुछ तत्त्व नष्टा निरवृत्ता। प्रात अमनम यह है कि हमारे इन्द्रियनय ज्ञान है, इम ज्ञानम जो पत्थे भाममान होगा ग्मा और तो हमारा लक्ष्य जायेगा। उर्म'ना मिद्धिजे लिय हम प्रयाम करेगे चाह यह अनर्थ'ना जड हो। अनर्थ'नी जड ग्राह वस्तु नहीं। बाह्य वस्तु तो अध्ययमानम प्रिय पडती है। ग्राह वस्तु पथका जनन नहा। आ हुन्नुद द'ने लिखा है—

“वत्थु पडुच ज पुण अज्झममाण द होदि जीराण।

ण हि मत्थुदो वधो अज्झममाणेण मधो दु ॥”

वस्तु का निमित्तकर अध्ययमानभाव नीराने होता है किन्तु पदात्र वधका कारण नहीं। वधका कारण तो अध्ययमानभाव है। यदि ऐसा सिद्धान्त है तो बाह्य वस्तुका परित्याग क्यों कराया जाता है? अध्ययमानन न होनेसे अथ ही ग्राह वस्तुका निषेध कराया जाता है। बाह्य वस्तुके बिना अध्ययमानभाव नहीं होता। यदि वात्र पदाथने आत्रय बिना अध्ययमानभाव होन लगे तो जैसे यह अध्ययमानभाव होता है कि मैं रणम जाकर चारमू मानाके पुत्रका मारूँगा, यह भी अध्ययमान होने लगे कि गंध्या पुत्रको मारूँगा, नहीं होता क्याकि मारण क्रियाका आश्रयभूत वध्या सुन नहीं है अत जिहें वध न करना हा बाह्य वस्तुका परित्याग कर दथ। परमाथसे अतरङ्ग मूच्छाका त्याग हा वधका निवृत्तिका कारण है। परपदाथने पावन-मरण मुख-दुखका अध्ययमान तो मरथा ही त्याग है, क्योंकि हमारे अध्ययमानके अनुरूप कार्य नहीं होता। कल्पना करा हमने यह अध्ययमान किया कि अमुक व्यक्ति वधनको प्राप्त हो और अमुक व्यक्ति समारसे मुक्त हा जाव। हमने तो वधन और मोचनका अध्ययमान किया और नितको वधन और मुक्त होना था उन्होंने यह भाव नहीं किया



निसमे बह उधन और भाचन अवस्थाका प्राप्त हा जाने । त  
 यहाँपर कारण जा आपन माना था वह ता रह गया परंतु क  
 र्नी हुआ । यह अवयव व्यभिचार हुआ तथा तुमन वरन अ  
 मोचनना अध्ययसातभाय नही प्रिया और आ जीधोने उन अध  
 यमानभावाँ परनसे उधन और भाचनना काय मग्न कर लि  
 डममे व्यातरक व्यभिचार भीहा गया । इससे यह मिद्वान निर  
 कि द्वा मि या विकल्पोको त्यागरर यथाथ घस्तु स्वरूपव निणय  
 अपनना तमय परा । अन्यथा इमी भरचकर पात्र रहाग । तु  
 विश्वना अपनाते हो, इसम मूल जड़ मोह हैं तिनके बह नही य  
 मुनि हैं । यह अध्ययमाग आदि भाव तिनके नही हैं यही म  
 मुनि हैं । यही शुभ और अशुभ कर्मम तिन नही होते । ये मिथ्या  
 अज्ञान तथा अविरत रूप जा त्रिविध भाव हैं बहा शुभागुभ क  
 बंधके निमित्त हैं, क्यानि यह स्वयं अज्ञानादिरूप हैं । य  
 दिगाने हैं । जैसे जत्र यह अध्ययसातभाय होता है 'इदं दिनस्ति'  
 यह जो अध्ययमानभाय है यह अज्ञानमयभाय है और आत्मा स्  
 है, अहेतुव है, इतिरूप एक मियावाना है ऐसा ना आत्मा  
 उसका और रागद्वपने विपाकसे जायमान हननादि कियाओं  
 विशेष भेद ज्ञान न हानमे, भिन्न आमाका ज्ञान न होनेसे अज्ञ  
 ही रहता है, भिन्न आत्मज्ञान न होनेसे मिथ्यादर्शन रहता है  
 भिन्न आत्माका चारित्र न होनेसे मिथ्याचारित्री ही का सद्ग  
 रहता है । इस तरहसे माहकर्म निमित्तमे मिथ्यादर्शन, मिथ्य  
 ज्ञान, मिथ्याचारिधरना मद्भान आत्मान है तथा इसी माह  
 उदयके साथ तत्र ज्ञानावरणना क्षयापराम रहता है 'धर्मो ज्ञान  
 जत्र यह अध्ययसात हाता है यह जो ज्ञेयभाय ज्ञानमें आते  
 इनका और महतुर ज्ञानमय आत्माका भेदज्ञान न हानेसे, अज्ञ  
 विरोप दगन न होनेसे अदर्शन, इमी तरह विशेष स्वरूपम च

न होनेसे अचारिप्रका सड़ाव रहने से नष्ट हो जावे तब आत्मा स्वतन्त्र है और वह स्वतन्त्र होना पुनर्गत द्रव्य है यह स्वतन्त्र है। अतः अनादि कालसे स्वतन्त्र है पदार्थ स्वतन्त्र है और गुणाला है और तमम यद् शक्ति है देते हैं स्वतन्त्र आत्मा है उसम भक्तता है, प्रतिभासित है। एक परिणामन तम तरहका है कि तमम स्वतन्त्र है परन्तु वह मेरम प्रतिभासित है। आभाम जा पदार्थ प्रतिभासित है कि यह पदार्थ मेर ज्ञानम आये। पदार्थको अपनानका प्रकृति मात्र अनन्त समारका कारण हाता है। कि पर पदार्थका एक अंश भी आत्मा पर उह क्यों अपनाना है ? यहा मन्त्र आत्मा है। अतः तब आत्म द्रव्यका आत्मा हा रहने के अन्तर्गत करनेका प्रयास है यही अनन्त समारका कारण है। एमा कीन बुद्धिमान हागा जो यह पर एमा कीन सक्ता ? एमा मिद्वान्त है किज किज एमा हाता है उह उसका स्प है। निसका जा म् एमा उमका म्यामा है अत यह निष्कप निष्कला कि एमा एमा नही तब अत्र द्रव्य अन्यका स्वामी नही एमा एमा आपका स्वामी नही। यहा कारण है जो ज्ञाना एमा नही करता। भी ज्ञानी है अत मे भी परका एमा। यदि मैं एमा द्रव्यका मरण करूँ तब यह अत्र न म्य हा जावे और अर्थात्का स्वामी हो जाऊँगा। अतः स्वामी अत्र होगा, उसे पडगा, एमा मैं तो हात

अतः पर द्रव्यको ग्रहण न करेगा। जय पर द्रव्य मेरा नहीं तब वह चाह दिव जावा, भिदू नावा, चादू षोड ल जात्रा अथवा निम तिस अवस्थाना प्राप्त हा नात्रा तथापि पर द्रव्यना ग्रहण न करेगा। यही कारण है कि मन्यग्नानी धम, अधम अमादान इनका नहीं चाहता। धम पदाथ पुण्यना करने हों अथान् जय इम जीवने प्रशस्त राग अनुसम्पा परिणाम और चित्तम अस्तुपना रूप परिणाम होता है उमी समय म जीवन पुण्य रथ हाता है अथान् तिरामालम अहंत, सिद्ध, माधुन गुणाम अनुराग हाता है नसीना नाम भक्ति है। अथान् उनर गुणाकी प्राप्ति हो यही ता भक्ति है। श्री गुरुपिच्छने यही तो निर्या कि—

“मोक्षमार्गस्य नेत्तार भेत्तार कर्मभृताम्।

ज्ञातार विद्वत्त्वाना वन्द तद्गुणलभये ॥”

इसम यही तो दिरयावा है कि तद्गुणना लाभ हम हो। एसा सिद्धान्त है कि जा निस गुणना अनुरागा है वह उमरो नमस्कार करना है। जैसे शम्भ विद्याना इच्छुन शम्भ विद्या वत्ताना नमस्कार करता है। इसी तरह धमम जा चेष्टा अथान् धम लाभना अनुराग यही ता हुआ तथा गुरुआन पीछे रमिन होकर गमन करना। इत्यादि नाम्योंसे यही तो निरलना है कि इन सत्र वास्याम इच्छा ही वा प्रधानता है। इच्छा परिग्रह है क्योंकि इच्छाना जनन माह कर्म है। माह्वमरु उदयसे जो भाव हात है सामान्यसे वह इच्छा रूप पडत है। मिध्यात्नने उदयम विपरात अभिप्राय नी ता होता है। वह इच्छा रूप ही है। ज्ञान कपायने उदयम परको अनिष्ट करनकी ही तो इच्छा होती है। तथा मानन उदयम अन्यना तुच्छ दिग्गाना अपनरो महान् माननेकी ही तो इच्छा रहती है। मायाके उदयनाताम अंतरङ्गम ता अय है नाहसे उसके विरुद्ध

कायम प्रवृत्ति होती है। लाभ कपायका जत्र उदय आता है तत्र परपदायको अपहरण करनेकी ही तो इच्छा होता है। इसी प्रकार हाम्य कपायक उदयम हास्यका भाव हाता है, रतिर न्ययम पर पदायक निमित्तका पात्र प्रसन्न हाता है, अरतिर न्ययम पत्नर्थो के निमित्तमे शाकानुर रहता है, भयने न्ययम भयभान परिणाम हात है, जुगुप्साक न्ययम पदार्थाक निमित्तमे ग्लानि रूप परिणपति हा जाता है। जत्र स्त्री वदका विपार आता है तत्र पुरुषमे रमण करनेकी चेष्टा हाता है, सैवान् पुरुषका सम्बन्ध न मिल तत्र भावामे पुरुषकी कल्पना कर अपनी इच्छा शान्त करनेकी चेष्टा यह जीव करता है। पुरुष वदके न्ययम खास रमण करनका इच्छा होता है निमित्त न भिन्नमे कल्पना द्वारा यह प्राणी ना जा अन्य करता है यह प्राय मत्र विदित है। इस तरह नपुंसक वत्र न्ययम उभयक रमणक भाव होते है। इनकी इच्छा प्रथम दा वदयालोभा अपथा प्रसन्न है। इस विषयम यदि काङ्क्ष लिखना चाहे तत्र उक्त लिख सकता है। इन इच्छाकामे संसार दु गयी है। इसीसे भगवानने इच्छाका परिग्रह माना है। निमक इच्छा नहा है नसे परिग्रह नही है। इच्छा जो है मा अज्ञानमय भाव है। अज्ञानमय भाव ज्ञानीसे नहीं है, ज्ञानीसे तो ज्ञानमय भाव ही हाता है। यथा कारण है कि अज्ञानमय भाव रूप इच्छाक अभावसे ज्ञानी जीव यमकी इच्छा नहीं करता। ज्ञानमय ज्ञायक भावक मद्भावमे धमना नेत्रल ज्ञाता दृष्टा है, तत्र ज्ञानी जायक धमका ही परिग्रह नही तत्र अधमका परिग्रह तो सर्वथा हा असम्भव है। इसा तरहमे न प्रशानका परिग्रह है, और न पानका परिग्रह, कयोकि इच्छा परिग्रह है। ज्ञानी जायक इच्छाका परिग्रह नहीं, ननका आदि देकर नितने त्कारके पर द्रव्यक भाव है तथा पर द्रव्यके निमित्तसे आत्माक ज्ञा भाव होते है उन मत्रको ज्ञानी जाव नहीं चाहता। इस पद्धति

अतः परद्रव्यसा ग्रहण नहीं करूँगा। जब परद्रव्य मेरा नहीं तब वह चाहे द्विद वाया, मिद जायो, चाहे षाड तो जाया अथवा तिस तिस अयस्थाना प्राप्त हा वाया तथापि परद्रव्यसा ग्रहण नहीं करूँगा। यही कारण है कि सम्यग्ज्ञानी धम, अधम अमादान इनको नहीं चाहता। धम पदाथ पुण्यसा उक्त है अथान जस इम जीवके प्रशस्त राग अनुकम्पा परिणाम और चित्तम अवलुपना रूप परिणाम हाता है उमा समय इम जीवस पुण्य घघ हाता है अथान तिममानम अहंत, सिद्ध, माधुर गुणाम अनुराग हाता है मीना नाम भक्ति है। अथान उनसे गुणार्नी प्राप्ति हो यही ता भक्ति है। श्री गृह्यपिच्छम यही ता निग्या रि—

“मोक्षमार्गस्य नेत्तार भेत्तार कर्मभूमृताम् ।

व्रातार निश्चतत्याना वन्द तद्गुणलघये ॥”

इसम यनी तो दिग्याया है कि तद्गुणसा लाभ इम हो। एसा सिद्धान्त है कि जा तिस गुणसा अनुरागा है वह उमरो नमस्कार करता है। जैसे शस्त्र विग्यासा इन्द्रुस शस्त्र विग्या वक्तारो नमस्कार करता है। एसा तरह धमम जा चेश अथान धम ताभसा अनुराग यही ता हुआ तथा गुरुथाने पीछे रमित होकर गमन करना। इत्यादि धार्योंसे यही ता निरुलता है कि इत मव वास्योंम इच्छा ही वा प्रधानता है। इच्छा परिग्रह है क्यानि इच्छासा जनस माह धम है। मोहकमस उदयसे जो भाव होत है सामान्यसे वह इच्छा रूप पढते हैं। मिथ्याहने उदयम विपरीत अभिप्राय ही ता हाता है। वह इच्छा रूप नी है। बाध कपायके उदयम पररो अनिष्ट करनेकी ही तो इच्छा हाती है। तथा मानसे उदयम अन्वयो तुच्छ दिग्याना अपनरो महान माननेकी ही ता इच्छा रहती है। मायाने उदयमानम अन्तरङ्गम तो अन्य है, बाह्यसे उसने विरद्व

कायम प्रवृत्ति होती है। लोभ कपायका जब उदय आता है तब परपदार्थको अपहरण करनेकी ही तो इच्छा हाता है। व्मा प्रकार हान्य कपायके उदयम हास्यका भाव होता है, रतिर न्यम पर पदायके निमित्तको पाकर प्रमत्त होता है, अरतिने उदयमें पदार्थों के निमित्तसे शोकानुर रहना है, भयने न्यम भयभात परिणाम हात है, जुगुप्साके उदयम पदार्थके निमित्तसे ग्लानि रूप परिणपति हा जाना है। जब स्त्री वदका विपाय आता है तब पुंस्वसे रमण करनेकी चेष्टा हाता है, दैवान पुरपका सम्बन्ध न मिला तब भायसे पुंस्वकी कल्पना कर अपनी इच्छा शांत करनेकी चेष्टा यह जाय करता है। पुंस्व वदके उदयम स्त्रीसे रमण करनेकी इच्छा हाता है निमित्त न मिलनेसे कल्पना द्वारा यह प्राणी जा जा अन्य करना है यह प्राय सर्व विदित है। इस तरह नपुंसक वदक उदयम नभयन रमणन भाव होते हैं। इनकी इच्छा प्रमत्त न वदवालोकन अपेक्षा प्रमत्त है। इस विषयम यदि षाड् लिंगना चाहे तब बहुत लिंग सनता है। इन इच्छाआम समार ८ स्त्री है। इसीमे भगवानने इच्छाको परिमह माना है। तिसर इच्छा नहीं है उसने परिमह नहीं है। इच्छा जा है सो अज्ञानमय भाव है। अज्ञानमय भाव ज्ञानीके नहीं है, ज्ञानीके तो ज्ञानमय भाव ही हाता है। यही कारण है कि अज्ञानमय भाव रूप इच्छाके अभावसे ज्ञानी जाय धर्मकी इच्छा नहीं करता। ज्ञानमय ज्ञायन भावन सद्भावसे धमका वेगल ज्ञाता दृष्टा है, जब ज्ञानी जायने धर्मका ही परिमह नहीं तब अधमका परिमह तो सर्वथा हा असम्भव है। इसी तरहमे न अज्ञानका परिमह है, और न पानका परिमह, क्योंकि इच्छा परिमह है। ज्ञानी जायने इच्छाका परिमह नहीं, इनका आदि देकर नितने प्रकारके पर द्रव्यके भाव हैं तब पर द्रव्यके निमित्तमे आमास जो भाव हाते हैं उन मन्को ज्ञानी जाय नहीं चाहता। इस पद्धति

मे निम्ने मत्र अज्ञान भावना वमन कर दिया तथा मत्र पर पदार्थक आगमना। याग दिया वेषा टका र्थीण एव ज्ञायक भावना अनुभवना करता है। पृथ कर्मर विपाकम ज्ञानीक उपभाग हाता है, हाथा किन्तु मम राग न हानमे य एव भाग परिग्रह भावसे प्राप्त ना हाता। रागादि परिणामसे यिना मन, यषन और पायके व्यापार अन्विष्ट रर है। जैसे यन् चूना आदिना क्षोप न हा तय एव समुदायम मन् नही जाता। परमाथमे विचार यिना नात्र तव वय रद्व भावका एव कालम समागम ही ना, यीन विमका रदन कर तथा वीन वरा हा। निम कालम रगभाय है मम वना करनाना भाव ना म समय है नही, वय भावके अन्तर ही हागा। तव रद्व भाव हागा म समय वेष भावना अभाव हो पायगा। तस अभाव होनपर वय भाव विमका रदन करगा? वदार्थिन् य वहा कि वय भाव अन्तर जा अय वय भाव हागा उस वना करगा ताथा वदन करवाला जो वद्व भाव है वहा नाश हो जायगा। वीन वय भावना वदन करेगा। यह कहना भी अच्छा नही कि वद्व भावके अन्तर हानेवाला जा वेद्व भाव है वद्व उमे वदन करगा। तत्र उम वीनम वेष भाव नही करगा। इम प्रकारका अनयम्या पायसत्पादिना ना हो सकती। अत म वय रद्व भावना रद्वना त्याग आभा पा निन ज्ञायक भावक उपर ही निभर रहना चाहिय। परमाथमे विचार यिना नात्र मत्र पदार्थ नियमसे परिणमाशात है। मत्र पदार्थाना परिणमन अपने अपनेम हा रहा है, यिमी पदायना अश भी यिमी दृमसे पदाथम नही जाता। यह जान ना हाता द्रष्टा घनता है, इतना हा नही यिमीका अपनाना है, यिमारी रागना विषय करता है, यिमीका द्वपका विषय करता है इस तरह पर पदाथानी व्यवस्था कर ईश्वर घननका दाया करता है, कोई

अपनेबो अविच्छिन्नकर मानकर अथको इसका कता बनाता है, कोई कहता है यह सब भ्रम है, भ्रमसे ही यह अवस्था बन रहा है। भ्रमर अभासमे समारका अभाव है अत इन जालासे उचनेके लिये अपनेरो जानना परमावश्यक है। आमा द्रव्य चैतन्य गुणका आश्रय है यद्यपि आत्मा अनंत गुणका पिण्ड है किन्तु उन गुणाम चैतन्य गुण ऐसा है जो सबका अयस्था करता है। इसालिय कहा है—

“नाह देहो न मे देहो जीवो नाहमह हि चित् ।  
अयमेव हि मे बन्धो या स्याज्जीपिते स्पृहा ॥”

मैं न तो देह हूँ, और न मेरा देह है, जान भा नहीं हूँ, किन्तु चैतन्य हूँ। मेरा जो जीवम स्पृहा है उहा अधना कारण है। परमाथ दृष्टिसे सभी द्रव्य अपने अपने स्वरूपम लीन हैं। इनम जान द्रव्य ता चैतन्य स्वरूपथाला है, पुद्गल चैतना गुणसे शून्य है किन्तु उन दानाका अनादिकालसे सम्बन्ध हा रहा है, इसमे रोना अपने अपने स्वरूपमे न्युत हाकर अथ अयस्थानो धारण कर विभ्रत हा जाते हैं। समारम जा विभ्रन परिणाम होते हैं वर परस्पर निर्मित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे होते हैं। यह परिणमन अनादिकालसे धारागाहा रूपम चला आ रहा है और जय तत्र इसकी मत्ता रहेगी आत्मा दुःखा रहगा। चिन जीर्धीको भेदज्ञान हो जाता है व इन पर पदार्थका अपनाना छोड दते हैं। अथान् परम निवत्न कल्पना नहीं हाता। यही कल्पना ससारका मूल जननी है। चिन्होंने इसका ध्वश कर दिया यही जगतके प्रपञ्चोसे छूट जाते हैं। तत्त्व चचाको तो मभा शुरू है परन्तु निवम रहनेवाये विरल ही है। महता कथा करनेको भी सभी वक्ता हूँ परन्तु यदि कोई प्रवृत्ति विरुद्ध बोले तत्र उमको निव शत्रु ममभते हैं। शत्रु



पर नहीं, आमास विभाय परिणाम ही शशु है। विभाय परिणामक जनक उपादानसे आत्मा और निमित्तसे आत्मातिरिक्त पर द्रव्य है, यह तो जरूरत रागादि नहा करता। यदि यह रागादि विभाय रूप परिणामे तत्र अय द्रव्य निमित्त हाता है। हाँ, यह नियम है कि तत्र अ यत्मान भायकी उपत्ति हागी तत्र उमम न न काई पर द्रव्य रिपय हागा। मयथा न मानना हृद बुद्धिम नहीं आता यत्नि पर द्रव्य निमित्त न हा और यह रागादि भाय आत्माने पारणागिभ भाय हा जाने तत्र जैसे पारणागिभ भाय अवाधित रिनाग भत्तायागा है एमे यह भा हो जाये। यदि शुभापयोगम परमप्राका निमित्त न माना तय अय तो कलात्र आदि पदाथ भी ज्ञानम था जाने उह त्यागन वनम जानेकी आवश्यकता नहीं अत यकी कृता पत्तगा रि शुभापयागम निमित्त जानेसे स्वगन कारण और अशुभापयागम स्त्री आदि नरनका कारण है। पर माथमे न ता अहन् स्वगने कारण हे और न बलत्रादि नरफन कारण है। अपने शुभ अशुभ कपाय स्वग नरनादिने कारण है अत मयथा एकांत मत पत्रडा। पदाथना स्वरूप ही अनेमान मय है। अरलड् स्वामीने परमात्माकी जनों भक्ति की है यह लिग्या है कि प्रमयत्नादि धर्माके द्वारा आत्मा अनेतन है औ चैतन्य धमन द्वारा चिदात्मा है। इम नरहमे परमात्मा रिदात्मा न है, और अचिदात्मा भी है। परमाथमे दग्ना तान तत्र वस्तु अनि येचनीय है। अयकी क्या छाडा जय हम घटना निरूपण करत। उम समय रूपादिका जा बाध हाता है, उस बाधम जो विप आता है वही घट है। अत यहाँ पर पूछनेवाला हमसे यह प्र कर मयता है रि तत्र य सिद्धांत है कि एव द्रव्यम पर द्रव्यम अणुमान भी नहीं आया तत्र ज्ञानने घटका क्या निरूपण किया ज्ञानम ज रिद्वय आया घटा तो कहा। परतु यह विरूप घट

निमित्तसे हुआ इमम कहते हैं यह घट है, वास्तवम घट क्या है। मृत्तिकासी पयाय विशेष है, य भी कहना व्यवहार है। परमाणुसे न तो कोई पराथ कही जाता है और न आना है, सभी पदार्थ निर निर चतुष्टयम परिणमन कर रहे हैं। य जा व्यवहार है सो निमित्त नैमित्तिक सम्प्रघसे उन रहा है। दग्गे बुम्भमार जन मिट्टी लाता है तत्र जहाँ मृत्तिका था बुम्भमारके द्वारा बुदानसे खोदी जाता है। बुम्भमारका व्यापार बुम्भमारम हाता है, उनके हाथने निमित्तिका पानर कुदालम व्यापार होता है, कुम्भारके व्यापारसे मिट्टी अपने स्थानम न्युन हाती है, उसे कुम्भारम अपने गन्ध द्वारा अपने गृन्म लाता है। पत्रान् उमने दान डाला जाता है, हाथाने द्वारा म आद्र जनाता है पत्रान् मृत्तिका पिण्डमो चान पर रखकर दण्ड द्वारा यापार हानेने चद्रनन्त करता है, पत्रान् घट बनता है। वास्तवम पितने व्यापार मृत्तिका हुण सत्र पृथक् प्रथम् हुण परन्तु एव दूसरम निमित्त मृत्तिका तरह यह प्रक्रिया अनादिसे चली आ रहा है। मिट्टीका जन्म का मोह चला जाता है उस समय यह ज्ञानाकरणिके कानमे सम्प्रचित नहीं हात। इन वमाके मन्त्रन न देल्ले आत्म गन्धादि भ्रमण नहीं करना तत्र अनायाम हा मृत्तिका अनात्म आत्माना जो स्वरूप है उसम रह जाता है। कइ मं हो कइ ज्ञानम आव कहिये। कोई कहता है — मृत्तिका है — मृत्तिका द्रव्यपययिषु कैवलस्य' अथान् मन्त्रन विद मन्त्र द्रव्य पर्याय है। कोई कहता है अनत सुन्दर है अन्तु मन्त्रन है, कोई यहा कह देता है कि मन्त्र मन्त्र अन्तु है। मन्त्र विरल्योमे मन्त्रा निरूपण करना मन्त्रा कहति है। मन्त्रा विचार विद्या जाव तत्र मन्त्र मन्त्रके अन्तु है। मन्त्रा उनके ज्ञानम जैसे हमार इन्द्रिय मन्त्रा द्वारा

हाना है—यह विकल्प उनका ज्ञानम नहीं होता। हमारा तो यह विश्वास है कि हमारा मनितानम जा पण्य आता है तथा रूपादि का निरूप भी हाना है परन्तु चिन्तक इन्द्रिय ही नहीं उनका पदाथ तो आवेगा, कल्पना रूपादिवा की न होगी। तथा हमारा ज्ञानमे रूपादिक आत है कुछ हानि नहीं परन्तु हमारा मोहात्मिक कमका मद्भाष हानम उन पदाथाम इष्टानिष्ट कल्पना हाता है यही कारण है कि हम इष्टमे राग और अनिष्टमे द्वेष कर इष्टका मद्भाष और अनिष्टका अभाव चाहत हैं। इस विरचनमे सत्यम जो ज्ञान है इसमे उच्च शांति है मा नहीं अपितु उनका इष्टानिष्ट करनेवाला माह चला गया यही उनके मद्दत्तका कारण है। ज्ञानमे न तो सुख हा हाता है और न दुःख ही होता है, ज्ञान ता कयल जाननेम सत्यम हाता है। व्यवहारमे हमारा उपरारा श्रुतज्ञान है। इसाके द्वारा हम केवलज्ञानका निष्पन्न करत हैं। यदि श्रुतज्ञान न हाता तब मा समागता निरूपण होता असम्भव हो जाता। मसारमे नितनी प्रक्रियाएँ धम और अग्रमका दृष्टिगाचर हो रही हैं यह श्रुतज्ञान हा का माहात्म्य है। भगवानका दिव्यधर्मिता दशानवाला श्रुतज्ञान ही तो है। आन मसारमे श्रुतज्ञान उठ जाये तो मोक्ष मागका ताप ही हा जाय। नव पञ्चम कालका श्रमाय हाकर छट्टम काल आवेगा उस कालमे श्रुतज्ञान ही का लाप हा जायगा, सभी व्यवहार लुप्त हो जायंगे, मनुष्योंका व्यवहार पशुवत् हो जायेंगे। अतः जिन्ह इन पदार्थोंका प्रतीति करना है उठ श्रुतज्ञानका अच्छा अध्ययन करना चाहिये। नितन मन संसारमे प्रचलित है श्रुतज्ञान के उलसे ही चल रह है। कुछकुद स्वामीने ता यहाँ तब लिखा है कि—

“आगमचम्पू साहू इदियचम्पुसि सव्वभूदाणि ।

देवादि ओहिचक्खू सिद्धा पुण मव्वदो चम्पू ॥”

अथान् आगमचतु माधु लाग हाते हैं और मंभारी मनुष्य इन्द्रियचतु हात हैं तथा दबलाग अग्रधिचतु होत हैं मिद्व भगवान् सर्पचतु हाते हैं । अथान वह सभी पदार्थोंको इन्द्रियके विना ही दग्गते हैं परन्तु विचार कर दया तत्र यह वान आगम ही ना कहता है । इमीसे देवागमम समतभद्र स्वामीने लिखा है कि—

“स्याद्वादकेवलताने सर्वतत्त्वप्रसाशने ।

भेद सात्वादसात्वाच्च ह्यस्तत्त्वन्यतम भवेत् ॥”

शुद्धाथानत्र प्राप्त श्रुतज्ञानका आवश्यक्ता है मति, अग्रधि मन पययका ना । उदरना नात्यय यह है कि निहें आत्मन्याण करनकी लालमा है य मभा विकल्पना यागकर अदृनिश आगमाभ्याम कर और उमसे अनाति कालकी ना पर पदाथाम आमाय रामना है उमका त्याग कर । कवलतानके अजनमे साड लाभ नहा । निम ज्ञानावनमे आमताभ न हा म्म ज्ञानकी परिमहम गणना की नात्र तत्र को श्रुति नहीं । तत्र परिमृत्ता त्याग इमीलिय कराया जाना है कि यह मूच्छाम कारण जाता है । इमी प्रकार यह ज्ञानका अवन है उसमे भी ना यह जभिमान हाता है कि ‘हम अचुतानी हैं, हमार महश पाइ नहीं । यह वचार पत्थार्थक ममता क्या ममके ? हम चाहें तत्र अच्छे अच्छे विद्वानों को परास्त कर मग्गते हैं ।’ उन कल्पनाआका कारण यह ज्ञान ही तो हुआ यदि म्मे परिमृद् कद् दिया जाये तत्र वॉन-मा श्रुति है । ज्ञानकी क्या त्वागो, तप इत्यादि जा अहङ्कारमे निय नाय— ‘लोकमे हमारी प्रतिष्ठा हो, मैं मजान तपस्वी हूँ, मेरे समग्र य वेचारे क्या तप कर सकत हैं ?’ इत्यादि दुर्भाषि त्त्यम यह तप हुआ तत्र इमे परिमृत्का कारण हानेम यदि परिमृद् कद् दिया जाय तत्र वॉन सी वृति है ? यही कारण है कि समतभद्र स्वामाने इनु मचको मर्गेम गिनाया है—

“नान पूना कुल जाति, बलमृद्धि तपो वपु’ ।

अष्टावाश्रित्य मानिसं मयमाहुर्गतस्मया ॥”

तात्पर्य यह कि यह मंत्र भाव उपायात्पादक हानेमे यदि इ इ परिश्रम गिना तत्र नव वा च्छति नया । अनादिम ता विचारमे दग्गे वाह्य पत्न्य हे ही । उ उतन माधर तदा चितने ये हे । उनरे द्वारा आत्मा ठगाया नहा जाता ; चित्तन इन तप ज्ञान आदिकमे नगन ठगाया जाता है । उस वाय चित्तनी जगतनी प्रश्चनता वरत हे अतना चार आदि नदी वरत । चार ता रेखा वाह्य धनरा हा हरण कर्ते हे यदि यह नियान धन दे ता आथ हानि नही वरते । य लाग धन नग ता हरण वरत हे किन्तु य द्रव्य तपस्वी आपनी धन सम्पत्तिना अपहरण कर अनन्त समारना पाव घना दत्त हे । अत आवश्यकता धनमाननी है तिससे पत्न्य तत्त्वना निणय हो जाय और हम त्रिमात्रे द्वारा ठगाये न जावे । आन मन्त्रा मत मसारम वता रह हे इन मन्त्रामूल कारण हमने श्रुतज्ञानना सम्यक् अध्ययन नही किया यही है । अत चित जीवाको इन उताभनासे अपनी रक्षा करना है यह भेदज्ञान पूरक अपनी वान परिणतिना निमल करना चाहिय । आन समारना जा पतन हो रहा है उसना मूल कारण यथाथ पदार्थाके कहनेवाल पुरुषावा अभाव है । यने तत्र शास्त्राका दुरुपयोग किया कि वक्रोंकी बलि वरके भी मरगना मार्ग ग्योत दिया, किसीने तुम्हाके नाम पर दुम्भाआका उनीनी वर स्वगना मार्ग ग्याल दिया । रास्तम उनीनी ता राग द्वेष मानकी वरनी चाहिय यहा आ मारे शत्रु हे । इस आर लक्ष्य देना चाहिय परन्तु इस ओर लक्ष्य नही । केवल पञ्चद्रियाके विषयम अनानि वागसे सलग्न हे, इनके हानेम हम अपने प्राणों तकरो विम्वन वर दत्त हे । नैसे स्पशन इन्द्रिय

के वशाभूत होकर हाथी अपनेका गतम गिरा देता है, रमनेन्द्रियके वशीभूत होकर मत्स्य अपने कण्ठका छिन्ना देता है, घ्राण इन्द्रियके वशाभूत होकर भ्रमर अपने घ्राण गमा देता है चक्षु इन्द्रियके वशीभूत होकर पतङ्ग निज घ्राणाका प्रलय कर देता है, श्रात्र इन्द्रियके वशाभूत होकर मृगगण प्रलियाने पन्ल पन् जाते हैं। यह ता रुद्ध भी नहा इन विषयान् वशीभूत होकर घ्राणाका ही घात होता है परन्तु कपायोके वशीभूत होकर बड़े बड़े महापुरुष ममारके चक्रम पड जाते हैं। आमाके अहित विषय कपाय हैं इनम विषय ता उपचारसे अहित करता है, कपाय ही मुख्यतया अहित करने वाला है अत विना आत्मनि करना है उह अपनेका स्वतन्त्र प्रानानका प्रयत्न करना चाहिये। स्वतन्त्रता ही मूल मुख्यता जननी है। मुख्य कर्ता अथर्वमे नहा आता, मुख्य आमाका स्वभाव है, उसका बाधक कारण पर है। पर क्या? हम ही ता हैं। हमन अपने स्वरूपका नहा समझा। हम ज्ञान-दर्शनके पिण्ड ह। ज्ञानका नाम अपने और परका जानना है। ज्ञानकी स्वच्छताम पदार्थ प्रतिभामित हाता ह उसे हम अपना मान लेते ह। ज्ञानके विरल्प को अपना मानना यहाँ तक तो रुद्ध हानि नहीं जा पदाय उसम मलकता है किन्तु उसे अपना मानना सरथा अनुचित है। हमारी तो यह श्रद्धा है कि ज्ञानम ज्ञेय आया यह भा नैमित्तिक है अत उसे भा निज मानना न्याय मङ्गत नहीं। रागादिन भाजोंका उत्पाद आत्माका हाता है। यह राग प्रकृतिके उदयसे होता है, उसे आमा का न मानना सर्वथा अनुचित है। यदि यह भाव आत्माका न माना जाय तत्र आमाकेवल ज्ञान स्वरूप ही हुआ फिर यह जो मसार है इसका सर्वथा अभाव हा जायगा, क्योंकि रागादिनके अभावमे धर्मण वगणाओंमे जो माहादि रूप परिणमन होता है यह न रहे।

कर्मके अभावम जो आमाके गण

यह सदा ध्वजाश रूप ही रहता । तब सत्कारम ना तरलमता देखा जाती है । तब सत्कार विनाश ही जायगा, संसार ही न होगा । सत्कारने श्रमभयम माभयना श्रमभय ही जायगा क्यकि माघ वय पृथक् होता है । अत यह मानना पड़गा कि आत्मा द्रव्य स्वयन्त्र है और परिणमताम भा म्यतत्र है । किन्तु यह विविधा मिश्रण है कि जा रागादि वाय हात हैं वयत एव द्रव्यमे नदी हात, उनर हानम एा द्रव्य ही कारण है । तबम जर्ण रागादि हात हैं वय व्याप्तन और निमर सत्कारिनासे हात है तब निमित्त कारण वदत है । ऋतमे मनुष्य यह कहत है कि रागादि रूप परिणमन ता जावम हुआ, इमम पुद्गलना कौन-मा अश आया ? जैम कुम्भारर निमित्तमे मृत्तिकाम घट उपज हुआ तबम कुम्भारर-ना कौन-मा जश आया ? तौन वदता है कुम्भाररदिका अश घटम आया ? नदी आया, परन्तु इतना बडा घट क्या कुम्भाररकी पृथ्वी त्र विना ही हागा ? नहीं हुआ तब य माना कुम्भारर ही घट पयायने उपादम मद्धारर हातेसे निमित्त हुआ । यह व्यरस्था कायमात्रम जान लनी । संसार रूप वाय इत पाणोने उपर निभर है । जहाँ पर जीव और पुद्गलना निमित्तनेमित्तिक सम्बन्ध नहीं रहता संसार न रहता । संसार उड भिन्न पदार्थ नहीं । जहाँ जीव और पुद्गल इन दानाका अयाय निमित्त नेमित्तिक सम्बन्धमे जीव रागादि रूप तना पुद्गल ज्ञाना वरणादि रूप परिणमता है इसीना नाम संसार है । वयत जीव और वयल पुद्गल तसना नाम संसार नहीं । वयत नीचने स्वरूप पर परामश विद्या जाय तत्र अद् 'अस्तित्' आदि तत्र नहीं वनते, यह सत्कार श्रपेक्षा रगत है । इन जानने सम्बन्धमे यह सत् तत्र वनते है । तब जीव रागादि भावसे रहित ही जाना है तब पुद्गल म ज्ञानावरणादि नहीं हाते । उद ज्ञानावरणादि वम अतनुदतम

क्षय हो जात है। उस समयमें आत्मा केवलज्ञानादि गुणोंका आश्रय होकर सर्वज्ञ पदसे व्यपदेश होने लगता है। पञ्चानुपूर्व वद्व जो अघातिया कम हैं व या ता स्वयमेव गिर जात हैं या आयुसे अधिक म्थितिवान हुए तत्र ममुद्घात त्रिधानसे आयु ममान स्थिति होकर स्वयमेव गिर जात हैं और आत्मा कवल शुद्ध पर्यायका पात्र हो जाता है। यद्यपि यह पर्याय कवल आत्मा म होती है परन्तु अनान्तिसे लगा हुआ जो मोह है वह इसे व्यक्त नहीं होने देता।

जैन धर्ममें दो प्रकारके पन्था माने जाते हैं एक चेतन और दूसरा अचेतन। चेतन निम्नका रहते हैं? निम्न चेतना पाई जावे। उसका स्वरूप आगममें इस प्रकार कहा है—

“चेतनालक्षणो जीवोऽजीवस्तद्विपर्यय ।”

चेतना नामकी एक शक्ति है, निम्नका काम पदाधारका जानना है। चेतना ही ऐसी शक्ति है जो स्व परमा संबन्धन करता है। परमात्मसे तो ज्ञान स्वपर्याय का को बदन करता है। ज्ञानकी निमलतामें पदार्थके निमित्तको पाकर पदार्थका तो आकार है उम रूप धारण ज्ञानमें आता है, न कि वह वस्तु ज्ञानमें आता है। ज्ञानमें तो ज्ञानकी ही पर्याय आता है। मोही जीव जो ज्ञानमें आता है उसे ही निज मान लेता है। ज्ञानमें जो आया वह ज्ञानका परिणमन है, इसमें तो काङ्क्ष निवाद नहीं किन्तु ज्ञानके परिणमनसे भिन्न जा वस्तु है उसे निज मानना मिथ्या है। ज्ञानमें जैसे बाह्य पन्थार्थ आते हैं वैसे सुगमनिष्क गुण भी आते हैं किन्तु वे अभ्यन्तर हैं। वे भी ज्ञान गुणका तरह आत्माने हैं परन्तु स्वरूप सभीके पृथक् पृथक् हैं। अपने अपने स्वरूपका लिय आत्म तत्त्वके साधक हैं। अथान् दन सप्त गुणोंका जो अत्रिष्यग्भाः



सम्बन्ध है इसका। तब द्रव्य है। द्रव्य अनन्त गुणावा पिण्ड है। इसीमें आत्मा ज्ञान भी है, दशान भी है, सुख भी है, धीर्य भी है। ज्ञान दशान भिन्न है, यत्तु दोनों ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। इसी तरह सभी गुण प्रथम प्रथम जानने। यथा पुद्गलम म्परा, रम, गन्ध, रण गुण भिन्न हैं। म्म भिन्नतारा गान्तव भिन्न इन्द्रिया द्वारा द्वारा ज्ञान होता है। भिन्न ज्ञान पर भी इतना अमितत्व प्रथम नहीं है मरना, ठमसे कश्चित् एव क्षयापगाता ठानसे एव है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे आत्मा अग्रण्ड एव द्रव्य है वैसे पुद्गल भी अग्रण्ड एव द्रव्य है। जैसे अनन्त गुणाका पिण्ड आत्मा है वैसे अनन्त गुणाका पिण्ड पुद्गल है। जैसे आत्मामें अनन्त शक्ति है वैसे पुद्गलमें भी अनन्त शक्ति है। जैसे आत्मामें अनन्त परमाणुओंके जाननकी सामर्थ्य है वैसे पुद्गलमें भी अनन्त ज्ञानका प्रकट न होने देनेकी शक्ति है। अन्तर कथन इतना ही है कि आत्मा चेतन है, पुद्गल अचेतन है। केवल द्रव्यका विचार किया जाव ता न ता बंध है और न मोक्ष ही है। और न ये शब्द, रण, इत्यादि जा पयाय पुद्गल द्रव्यम दरत पाते हैं नहीं हैं। पुद्गल और जीवके सम्बन्धसे ही यह संसार देगा जाता है। इस विह्वलावस्था ही का नाम संसार है। संसारमें जीवकी नाना प्रकारकी नाना अवस्थाएँ होती हैं। इन्हींसे जीवमें नाना प्रकारके दुखोंका व अनेक प्रकारके वैषयिक सुखोंका अनुभव होता है। परमाथमे कभी भी इस जीवको एक क्षणमात्र भी सुख नहीं। यद्यपि सब द्रव्य स्वयमिद्ध है किन्तु अनादिसे जीव और पुद्गलतारा अनादि सम्बन्ध चला आ रहा है इसमें जीवकी जो स्वाभाविक अवस्था है उससे ज्युत है तथा पुद्गल भी अपने स्वाभाविक परिणामनमें ज्युत हो रहा है। यद्यपि जीव द्रव्यका एक अंश न तो पुद्गल द्रव्य रूप हुआ है और न पुद्गलका एक

परमाणु भी जीव रूप हुआ है फिर भी मैंने उन्हें अपने स्वरूपमें न्युत हो रहे हैं। जैसे १) सुवारी और २) मत्तरी गलार १) मर एक पिण्ड हो गया एतावना १) मत्तरी मत्तरी मत्तरी भा न्यूनता ३ आडे और न एक मत्तरी मत्तरी मत्तरी यही अवस्था चोनीरी हुई फिर भी पिण्डको न मत्तरी मत्तरी और न शुद्ध चांदा ही कह सकते हैं। दानों अरु मत्तरी मत्तरी न्युत है। यही अवस्था लाव और पुद्गलका है। यही अवस्था वस्थामें जीव द्रव्यका एक अश न तो पुद्गलका मत्तरी मत्तरी और न पुद्गलका एक अश जायरूप हुआ है कि मत्तरी अपने अपने स्वरूपमें न्युत हैं। मत्तरी मत्तरी मत्तरी मत्तरी दुर्दशा हो रही है मो किमीसे गुप्त नहीं। मत्तरी मत्तरी हैं। जैसे ज्ञान कृष्णका सम्प्रथ अनाग्नि का मत्तरी है। मत्तरी नाइ वीनको मत्तरी कर देव तत्र कृष्ण नहीं है मत्तरी मत्तरी अवभासे वानात्पत्ति नहीं हो सकता। मत्तरी मत्तरी मत्तरी पुद्गलके सम्प्रथमें जा ससार सतति मत्तरी मत्तरी मत्तरी है मत्तरी मूल कारण माहादि परिणाम है। मत्तरी मत्तरी मत्तरी परिणाम त्याग देवे तो अनायास ही मत्तरी मत्तरी है। जो मत्तरी कर्म हैं वे उदयम आकर स्वयमेव कि मत्तरी। अनायास ही आत्मा इम मत्तरीसे मुक्त हो सकता है। मत्तरी मत्तरी मत्तरी मत्तरी यह जीव क्यों इस चक्रसे मुक्त नहीं है। मत्तरी मत्तरी मत्तरी मत्तरी चक्रम परिवर्तन कर रहा है। प्रतिनिधिका मत्तरी मत्तरी है, परम निव माननेमें जा जो उपद्रव होते हैं वे किमीसे गुप्त नहीं। केवल जानता ही नहीं किन्तु मत्तरी मत्तरी मत्तरी मत्तरी है। इन्हीं अर्थान होकर क्या क्या नहीं करता मत्तरी मत्तरी मत्तरी मत्तरी?

एक सेठ सा० थे, उनका दूमाकिकठ हुआ था, मेठ मत्तरी मत्तरी थे। एक मत्तरी सा० का गिराई अरु लगा।

का आज्ञा दी कि सेठानीसे कदा चन्दन घिसकर लाय और मस्तक म लगाय । दासीने आकर सेठानासे कहा कि मेठ मा० के शिरम वेदना हो रही है, शाग्रतासे चढ़ा रगडा और सेठक मस्तकको मालिश करो, अथवा जानोंकी भार खानी पड़ेगी ।

सेठानान उत्तर दिया—मुझे जरूर आ गया है, मेठ मा० से कह दा ।

जैस ही मेठ सा० न गुना, शिर वेदनाकी चिन्ता त्याग मठानी के पास आकर पूछने लग—क्या हुआ ?

मठानीन उत्तर दिया—आपकी शिर वेदना मुनकर मुझे नो जरूर आ गया ।

सेठनी न कहा—इसके दूर करनेका उपाय क्या है ?

सेठानी ने कहा—उपाय है परंतु यहाँ होना असम्भव है ।

सेठनी न पूछा—उपाय कौन-सा है ?

सेठानी ने कहा—मेरे घर पितानी चन्दरने तेलको मेरे तटामे मदन करते थे या मेरा भाई पैरको मलता था । आपसे क्या कहूँ ? न्याय मुनकर सेठजी चन्दनका तट लेकर मेठानाके पैरका मदन करने लगे । सेठानीने बहुत मना दिया पर उन्हांन मन न मानी और तलुआका मलकर अपनेको कृतकृत्य माना । कहने का तापर्य यह है कि स्नेहने यशीभूत होकर जा जो काय न हों व अल्प हैं । अथ सामान्य मनुष्योंकी कथा त्यागा, तीन गण्ड के अधिपति महाविवेकी, धमने परम अनुरागी लक्ष्मणने श्री रामचंद्रजी के स्नेहम आकर प्राणोंका उत्सर्ग ही ता कर दिया तथा श्री रामचंद्रज महाराज जो तद्वचमोक्षगामी थे स्नेहके यशीभूत होकर छह मास पर्यंत लक्ष्मणने शरीरको लिय फिर और अन्तम स्नेहको त्यागकर ही सुखके पात्र हुए । श्री सीताजा का जीव सोतह स्वर्गका प्रतीक था । जब श्री रामचंद्रजी ने गृहस्था

वस्थाको त्याग दिगम्बर पद धारण किया उस समय मीतारे जात्र प्रती द्रने यह विचार किया कि थ एक वार दवलोकम आरि पञ्चान यहाँसे च्युत हाकर हम दाना मनुष्य जम धारण कर सयम धारण करें और कर्म बधन पाट मोक्षक पात्र होयें, एमा विमल्य कर जा उपद्रव किया सो पद्मपुराणसे समीक्षा विदित है । मयसो विन्तित होने पर भी इस मोह पर विनयी हाना अति कठिन है ।

अन्धता तथा कर्होतक लिखें ? हमारी ८० वषस आयु हा ग ७ और ५० वषसे निरतर इसी प्रयत्नम तत्पर हैं कि माह शत्रुको परास्त करे परन्तु जितने वार प्रथम किया नगर अनुत्तीण होत रहे । बालकपनम तो माता पितारे स्नेहमें लुप्त जाते थे, मेरी गानी मुमपर बहुत स्नेह करता थीं । प्रात काल तानी रोटी और ताना घी गिनाता थीं और मेरा पालन पोषण करती थीं । उस समय हम उत्र जानते ही न थ । मोह दुग्दयी पदार्थ हैं प्रत्युत इसीसे सुग मानते थे और इसी प्रमादम निरतर अपनेसे धन्य सममत थे । हमारे एक मित्र श्री हरीसिंह मारया थे जो बहुत ही बुशाप्रसुद्धि थे । उनसे हमारा हात्त्रि स्नेह था, इतना स्नेह कि एक दूसरेके बिना हम लोग एक मिनट भा नहीं रह सकते थे । इसी तरह रात्रि दिन काल व्यागत करत थे । पर लानका मोडे विचार न था । जत्र कुत्र पण्डितोंका समागम हुआ तत्र कुत्र व्यनहार धमम प्रवृत्ति हुई । भगवानकी पूजा और पद्म पुराणका श्रवण कर अपनेसे धन्य समभने लगे । इसी पूजा आदि कार्याम धम मानने लगे और अपनेका धमात्मा समभने लगे । कुत्र दिन वाद त्रत करने लगे, रात्रिभोजन त्याग दिया कभी रस परित्याग करने लगे ।

इतनम पितानीने विवाह कर दिया । थोडे ही दिनोंमे माने मेरा पत्नाको ऐसे रगम रग दिया कि यह हमसे कहने लगी कि

अपनी परम्पराम अपन धमना परित्याग कर तुमने जा धम अङ्गी  
 कार किया उसमें बुद्धिमत्ता नहीं वा । हमन भी उसमें विना विचारे  
 कर दिया कि यदि तुम्हारा आत्मा हमार धमसे विमुख है तब  
 हमारा तुम्हारा व्यवहार अच्छा नहीं । उसने भी आरगम आरर  
 कहा मैं भा तुमसे सम्बन्ध नहीं चाहता । अस्तु, हम और हमारी पत्नी  
 में ३६ का सा (परस्पर विरुद्ध) सम्बन्ध हा गया । फिर हम टीरुम-  
 गण प्राप्तम चत गय और यहीं एक पाठशास्त्राम अध्यापकी परने  
 लगे । श्रवणसे जहापर श्री विरार्त्नीना नाक मिमरा गय । धम  
 मूर्ति वाङ्मनीन बहुत सात्वता दी तथा एक अपन सुदृश्य चक्रसे  
 रक्षा की । पत्नकी सम्मति दी किन्तु कहा शास्त्रता मत करो, मैं  
 सब प्रन्ध कर भेज दूँगी परन्तु मैं शीघ्रता की, कर अच्छा न  
 हुआ । अ तम अच्छा ही हुआ । अच्छे अच्छे महापुरुषों और  
 पण्डितोंका समागम हुआ, तत्त्वज्ञानके व्याख्यान मुने व्यवहार  
 वमम प्रवृत्ति हुई, तीर्थयात्रा आदि सब कार्य किय परन्तु शान्तिना  
 आस्थाद न आया । मनम यह आया कि सबसे उत्तम काम विना  
 प्रचार करना, जो जातिसे च्युत हो गये हैं उन्हें पञ्चायत द्वारा  
 जातिम मिलाना, जो दस्ते हैं उह मन्दिरोने दशन परनेम जा  
 शक्तिप्रध हैं उह हटाना तथा धार्त्नी द्वारा जो मिते उसे परोपकारम  
 द देना आदि । सब किया भी परन्तु शान्तिना अश भा नहीं  
 आया । इन्हीं दिनोंम वावा भागीरथनीका समागम हुआ, आपके  
 निमता त्यागका आत्माके उपर बहुत ही प्रभाव पड़ा । मैं भा दया  
 दया निरन्तर श्रद्ध करने लगा परन्तु कुछ सफलता नहीं मिली ।

अ तम यही उपाय सूझा ना ममम प्रतिमाके व्रत अङ्गीकार  
 किये । यद्यपि उपवासमादिककी शक्ति न थी फिर भी यद्व तद्वा  
 निराह किया । धार्त्नीने बहुत विरोध किया—'बटा ! तुम्हारी शक्ति  
 नहा परन्तु एक न मानी, फल जो हाना वा नहीं हुआ । लाग न

जाने क्यों मानते रह ? काल पाकर बाईनीका स्वगन्तम हो गया । तब मैं श्री मोतीलालका वर्णा और कमलापति सेठनीके समागमम रहने लगा । रेलकी सवारी त्याग दा । मोटरकी सवारी पहिल ही त्याग दी थी । अन्तमें यह विचार हुआ कि श्री गिरिरानका यात्रा करना चाहिये । भाग्यम बाबू गाधिदरायका गयागान आ गय । बरुआसागरसे चार आदमियाँ साथ चल दिय । दा मोल चलनेके बाद थक गये, चित्त बहुत उदाम हुआ । इतनम एक नौकर था वह बोला—

### ‘सागर दूर सिमरिया नियरी ।’

इसका अर्थ यह है कि सागरमें अभी आप दा माल आय है, उद ना दूर है, सिमरिया यद्यपि ७-० मील है परंतु उसका सम्मुख हो अन यह समीप है । कहनेका तात्पर्य यह कि गिरिरान समीप है । बरुआसागर दूर है । इस वाक्यका अर्थण किया और उम दिन १० मील माग तय किया । कुछ माह बाद शिग्रवीकी बदना की, वहाँपर कं बप वितान परंतु निम्ने शांति कहते हैं, नहीं पाई । प्राय विहार म भ्रमण भी किया । श्री वीरप्रभुके निवाण क्षेत्रमें श्री रानगृही ४ माह रह, स्वाध्याय किया, बदना की, शक्तिर अनुभूत परस्पर तत्त्वचर्चा भी की परंतु निसरी शांति कहते हैं अणुमात्र भी उसका स्वाद न आया । वहाँसे चलकर बनारस आय, अच्छे अच्छे विद्वानोंका समागम हुआ परंतु शांतिका लश भी न आया । बनारस त्यागने पर दशमी प्रतिमाका व्रत लिया परन्तु परिणामोंकी जो दशा पहिल थी नहीं रहा—शांतिका आसवाद न आया । कुछ दिनों बाद मनम आया कि कुछ हो जाआ, नटकी तरह इन उत्तम स्वागोंकी नकल की—अथात् कुछ धन गये । इस पदकी धारण किये ५ उप हा गय परंतु निस शांतिके हनु यह

उपाय वा उमका लेश भी न आया। तब यही ध्यात्म आया अभी तुम अपने पाप नहीं। किन्तु इतना जानकर भी घबराके त्यागनेका भाव नही होता। हमका कारण तो यही है अथवा जो घबराके त्याग कर देवग ना तारुम अपवाद होगा, अतः कष्ट हो तो भले ही हा परन्तु अनिच्छा जान हुए भी घबराका पालना। तब अन्तरङ्गम कषाय है वाग्य वाचरण भी अतः अनुकूल नहीं तब यह वाचरण केवल हम है।

श्री बुद्धन्द स्वामीका कहना है कि यदि अन्तरङ्ग तप नहीं तब बाह्य वप कबता दु खरे तिय है। पर यहाँ ता वाग्य भी नहीं, अन्तरङ्ग भी नहीं, तब यह वप कबता दुःखतिरा कारण है तथा अनन्त संसारका निधारक जा सम्यग्दर्शन है उमका भी घातक है। अन्तरङ्गमें तो यह विचार आता है कि इस मि या उपरो एवागा, लोकिर प्रतिष्ठाप पा तत्त्व नहीं परन्तु यह सब बढनेमात्रमें है। अन्तरङ्गमें भय है कि तोग क्या करुग ? यह विचार नहीं कि अशुभ हमका बंध होगा, उमका भाक्ता तो प्कारी तुम ही को भोगना पड़ेगा। यह भी कल्पना है। परमात्मसे परामश किया जान तब आगे क्या होगा ? मो ना शातगम्य नहीं किन्तु हम उपम वनमानम भी बुद्ध शाति नहीं, जहाँ शाति नहीं यहाँ सुख वाहना ? केवल तोगाकी दृष्टिम मायना धनी रहे इतना ही काम है।

मेरा यह विश्वास है कि अधिवाश जतना भयसे ही सदाचारका पालन करता है। जहाँ लागीरा परया नही यहाँ पापाचरणम भी भय नही दगा गया। जहाँ लाकमय गया यहाँ परताकरी कौन गणना अत जिठ आत्मकल्याण करना हा वे मनुष्य तस्याभास करे और यह दग्ग कि हम कौन हैं ? हमारा स्वरूप क्या है ? हमारा कतय क्या है ? पुण्य पापादिना मग स्वरूप है ? पुण्य पापादि परमात्मसे हैं या केवल कल्पना है ? वा यत्मानम विषय सुख

जाना है क्या उसका अतिरिक्त फाई सुख है या कल्पनामात्र है ?  
 आनन्दगतम मतोंका प्रचार हुआ है । उनमें तन्व्यासा है या सुद  
 नहीं ? इत्यादि विचारकर निणय कर अपनी प्रवृत्तियों निरन्तर  
 करनेकी चेष्टा करना उचित है, कवल गल्पनामें ही ध्यान पूर्ण न  
 कर देना चाहिये । अनादिका क्याको छोडा, वर्तमान पपायकर  
 विचार करो । तत्रमे पैदा हुए ५ या ६ वर्ष तो अशोधमें ही रहे ।  
 तत्र ६ या ७ वर्षक हुए तत्र हृष्ट पपायसे अनुकूल ज्ञानका विकस्य  
 बिना शिष्याके ही हुआ । जैसा दरया वैसा स्वयमेव हागा । ब्रह्म  
 भाषाना ज्ञान बिना किमीर सिखाये आ गया । अनन्तर पण्डितोंके  
 जानेसे श्रद्धा विना और अश्वरका आभास गुरु द्वारा होने  
 मान यपम हिन्दी या उर्दूका इतना ज्ञान हा गया जो ब्रह्म  
 याग्य हो गया । अनन्तर निम धम्मम अपने मानादि कर्म  
 बुद्धुमी जनका प्रवृत्ति देखी उसी मतम भा इच्छे कर  
 लगे । यदि माना पिता श्रारामसे उपासक हैं तब कर्म  
 उमी धर्मको मानने लागता है । जैन धमानुसारा ब्रह्म  
 तत्र चिन मदिदरम जान लगा । मुसलमान हुए तब कर्म  
 लगा । इमाइ हुए तत्र गिरनावरम जाने लगे तब कर्म  
 लिख ना परम्परासे चला आया है उसीमें कर्म इच्छे कर्मा  
 प्रत्यक्ष मतवालेको है । जा मुसलमान है तब कर्म कर्म  
 हा मान मानता है इत्यादि कर्तव्य कर्म कर्म कर्म  
 रन्याणसे भागको अपनानेकी मरदा इच्छे करे । तब कर्म  
 हात हुए भी कइ महानुभावोंन इस विधि कर्म कर्म कर्म  
 है । कोई परमेश्वर हो इमम विदुष कर्म कर्म कर्म  
 परन्तु आत्मकल्याण भाग अपन कर्म कर्म कर्म कर्म  
 यदि तत्रम ज्योति नहीं, तत्र कर्म कर्म कर्म कर्म कर्म  
 हा नाइ लाभ नहीं हा सरता । तब कर्म कर्म कर्म कर्म



परिणति मिलन है तब चाहे गङ्गास्नान करा, चाहे प्रयाग स्नान करो, चाहे मकामरीफ जा जा, चाहे मन्त्रि जाओ, चाहे हिमालयकी शीतल पहाड़ियोंपर भ्रमण करा शांति नहीं मिल सकता । अब परमात्माने विषयम विनाद करना छाडा । केवल परिणति निमल पनाओ कल्याणक मात्र हा जाओगे और यदि परिणति निमल न पनाइ तब परमात्मा किनना ही उपामना करा कुछ भी शांतिक अम्बालके पात्र न होगे ।

## उपदेशलहरी

साधु कौन है ?

जिहोंने बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर दिया वह साधु है । मधुमुचम देखा जाय तो शांतिका स्नान केवल एक निमल अस्थाम ही है । यदि त्यागा वग न हा तो आप लोगोंकी ठीक राह पर कौन लगान । कहा भी है —

‘अवानतिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशुभारुया ।

चक्षुरुन्मीलित यन तस्मै श्रीगुस्त्वे नम ॥’

समस्त ससारी प्राणा अज्ञानरूपी तिमिर ( अंधकार ) से व्याप्त है । ज्ञानरूपा अचनका शलाकास जिहोंने हमारे नजोंका खोल दिया है ऐसे श्री गुरुवरको नमस्कार है ।

जा आत्माना साधन करता है, स्वरूपम मग्न हा कमलका जलानेकी चेष्टा करता है वह साधु है । समतभद्र म्यामीने बतलाया है कि वहा तपस्वी प्रणामने योग्य है जो विषयाराम रहित है, निरारम्भी है, अपरिग्रहा है और ज्ञान ध्यान तपम आसक्त है । वह

एक समय और पर समयका महत्तामे परिचित हैं । आचार्य बुन्द बुन्दने स्वसमय और परसमयका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

‘जीवो चरित्तदसण्णणट्टित्त त द्वि ससमय जाण ।

पुग्गलकम्मपदसट्टिय च त जाण परसममय ॥’

जा आत्मा दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र्य स्थित है वही ‘स्व समय’ है और जा पुद्गलादि पर पदार्थ स्थित है उसका ‘पर समय’ कहते हैं । तथा शुद्धात्माश्रित स्वसमयो मिथ्यात्व-रागादिप्रिभाषपरिणामाश्रित परसमय इति । अर्थात् जो शुद्धात्मा श्रित है वह स्वसमय है और जो मिथ्यात्व रागादि प्रिभाष परिणामोंके आश्रित है उसे ही परसमय कहते हैं । परसमयमे हटकर स्वसमयमे स्थिर होना चाहिये । परन्तु हम क्या कह आप लोगोंकी बात ।

एक साधुके पास एक चूहा था । एक दिन एक तिल्ली आइ और वह चूहा डरकर साधु महाराजसे बोला—भगवन् ! ‘मानाराद् विभेमि’ अर्थात् मैं तिल्लीसे डरता हूँ । तब साधुने आशीर्वाद दिया ‘मानारा भय’ इससे वह चूहा तिल्ली हो गया । एक दिन बड़ा कुत्ता आया, वह तिल्ली डर गया और साधुसे बोला प्रभो ! ‘गुनो विभेमि’ अर्थात् मैं कुत्तेसे डरता हूँ । साधु महाराजने आशीर्वाद दिया ‘श्व भय’ अब वह मानार कुत्ता हो गया । एक दिन बन्द म महाराजके साथ कुत्ता जा रहा था । अचानक व्याघ्र मिल गया । कुत्ता महाराजसे बोला—‘व्याघ्राद् विभेमि’ अर्थात् मैं व्याघ्रसे डरता हूँ । तब महाराजने आशीर्वाद दिया कि ‘व्याघ्रा भय’ अब वह व्याघ्र हो गया । जब व्याघ्र उस तपोवनके मन हरिण आदि पशुआँकों का चुना तब एक दिन साधु महाराजने ही ऊपर मपटने लगा । साधु महाराजने पुन आशीर्वाद दे दिया कि ‘पुनरपि

भूपता भय' अथात् फिरमे चूँटा हा जा । तात्पर्य यह कि हमारा पुण्यान्यसे यह पर्याय प्राप्त हो गई, उत्तम हुत और उत्तम धर्म भी मिल गया अब चाहिये यह था कि किमी निचरा स्थानमें जाकर अपना आत्मकल्याण करत, परंतु यहाँ हुद्र विचार नहीं है । तनिक समारकी हवा तगा कि फिरमे त्रिपय रामनाश्रमा काचड़में जा फेंके । अब तो न्न वामनाश्रमसे मतवा मुक्त करके आत्मदिनकी आर तगाओ । शुणपर्ययवद् द्रव्यम्' जा मानी गुणपयायना जाना स्याद्वाद द्वारा पदाथार स्वरूपका जान ताना प्रत्यय प्राणि-मात्रका मत-य है ।

### ससारका सापक्ष व्यवहार

अब देखो, धर्मवृत्त्य व्यवहार भी श्रोतु धरि अपश्राम हाता है । हम बच्चा हूँ आप सब धाताआर्या अपेक्षासे । इसी तरह धाता पन भी बच्चापनेरि अपेक्षा व्यवहारम आता है । द्रव्य अनंत धमात्मक है । एक पदाथ सत्सत्तासे अस्मिन् और परमत्तार्या अपेक्षा नास्ति है । देखा जाय तो उस पदाथमें अस्मिन् नास्ति दानों धर्म उसी समय विद्यमान है । "अपरोपानानापोहनव्यवस्थामात्र हि सुलु वस्तुनो वस्तुत्त" वस्तुना वस्तुत्त भी यही है कि स्वम्परा उपादान और पररूपका अपाहन हो । यह पतित पावन शब्द है । पावन व्यवहार तभी हागा जब कोई पतित हो, पतित ही न हा तत्र पावन कौन कहलायेगा ?

इस भोक्ति वस्तु सामान्य विशेषात्मक है । सामान्यापेक्षासे वस्तुम अभेद और विशवापेक्षासे उसम भेद सिद्ध होता है । 'सर्वे जाया ममा' अथात् सब जीव ममान है यद् कहनेका तात्पर्य जाव-वगुणकी अपेक्षासे है । यही जीवत्त सिद्धावस्थाम भी

हैं और ससारी जीवों में संसारस्थान भी है परन्तु जहाँ मय मिथ्य  
अनन्त सुख का वारा है वहाँ हम समारा जीव ता नहीं हैं । हम  
टु गी हैं । यह मय नय विभागका कथन है ।

एक मानना आप किस ऋषिसे देखते हैं ता क्या अपनी  
स्त्रीका भी जमी दृष्टिसे देखेंगे ? और कदाचिन् आप मुनि हा नायें  
ता क्या फिर भी आप जसा तरहमे कटाक्ष करेंगे ? य महाराज हँ  
( आचार्य सूयसागरनीना और भरेत कर ) किमी गृहस्थने यहाँ  
नय य चयान निमित्त बात है ता श्रावण किम बुद्धिमे इह आहार  
दान देता है । और वहा श्रावण किमी बुद्धक ( एकादश प्रतिमा  
धारी श्रावण ) ता किम बुद्धिमे देता है और कदाचिन् यह श्रावण  
किमी कन्नालको आहार देव तो वह किम बुद्धिमे दगा । मुनिना  
यह श्रावण पूय बुद्धिसे आहारदान देवेगा और उस कन्नालना वह  
कन्नानुद्धिसे । कन्नाल यन्ति उमसे यह कहे कि मैं इम तरहसे आहार  
नहीं लेता । मैं ता उमा तरह नमथा भक्ति पूजक लेंगा, जिस तरह  
तुमने मुनिना लिया है ता हम आपमे पूजते हैं कि क्या हम जमी  
तरह आहार दे देंगे ? नहीं । उसमे यहाँ कहगे कि भाइ अगर तू  
भी—मुनि बन जाय और इथापथ शोधनर चलने लग ता तुमे  
भी दे सकने हैं ।

तिलकने 'गीता-रहस्य' म लिखा है कि 'गौ-ब्राह्मणकी रक्षा  
करनी चाहिये । गौ और ब्राह्मण दाना जीव है तो क्या इसका  
मनलय यह हुआ कि गौका चारा ब्राह्मणको दे दें और ब्राह्मणका  
इष्टुआ गायको डाल दधे ? द्रव्यका सन्धे अपेक्षासे कथन लिया  
जाता है । काइ वस्तु किम अपेक्षासे कही गइ यह हम समझ लये  
ना समारम कभी विसंरा ही पैदा न हा ।

यह लडका किमना है ? क्या यह अरली स्त्रीना ही है ? ननी  
ता क्या कवल पुरुषना है ? नहीं । दाना ( स्त्री पुरुष ) के संयोगा

वस्थासे लडकी उत्पन्न हुआ है । निम्न तरह यह सब कथन मापक है वसी तरह साधुता और असाधुता का कथन भी मापक है । क्योंकि वस्तु का स्वभाव अनन्त धर्मात्मक है । उनका मापक दृष्टिमें व्यवहार करने पर विरुद्धता का आभास नहीं होता किन्तु विरोध एकात्मक दृष्टिमें अपनानेसे ही होता है । एसा तना ही असाधुता है उससे आत्मा समारका ही पात्र बना रहता है ।

जीव और पुद्गलके संसारात्मकता हुआ । जीव अपन विभावरूप परिणमन पर रागी-द्वयी हुआ और पुद्गल अपने विभावरूप और इस तरह इन दोनोंका वचन एक सत्रावगाही हो गया है । इस अवस्थामें जब हम विचार करते हैं तब मालूम पड़ता है कि यह आत्मा प्रद्वम्श्र भी है और अप्रद्वम्श्र भी । कममन्त्रधरी दृष्टिमें विचार करते हैं तो यह प्रद्वम्श्र भूता है, यन्म सदेह नहीं, और तब प्रजल स्वभावकी दृष्टिमें देखते हैं तो यह अभूताय भी है । मरानरम कमलिनीके जिस पत्रका जलम्पश हो गया है इस दृष्टिमें विचार करते हैं तो यह पत्र जलम लिप्त है यन् भूताय है परन्तु जल जलम्पश छू नहीं करता है जिससे तब कमलिनीके पत्रका स्वभावकी दृष्टिमें अवलोकन करते हैं तो यह अभूताय है क्योंकि यह जलसे अलिप्त है । अतः अनन्तका अपनाण विना वस्तु स्वरूपका समझना दुश्चार है । नानापेक्षासे आत्म ज्ञान करना क्या बड़ी बात है 'ममाधित प्र' म श्रीपूज्यपाद स्वामी लिखते हैं—

'यन्मया दृश्यते रूप तन्न जानाति सर्वथा । -

जानन्न दृश्यते रूप तत् केन ब्रवीम्यहम् ॥'

अर्थात् इन्द्रियके द्वारा जो यह शरीरादिक पदार्थ दिखाई देते हैं वह अचेतन होनेसे जानते नहीं हैं । और जो पदार्थको जानने

वाला चैतन्यरूप आत्मा है वह इन्द्रियोंके द्वारा दिखाई नहीं देता, इसलिए मैं किसके साथ बात करूँ। वह पण्डित ही है, नसे हम बात करते हैं तो निससे हम बात कर रहे हैं वह तो दिखाता नहीं है और निसमे हम बात नहीं कर रहे हैं वह अचेतन होनेसे समझना नहीं है। इसलिए सब भ्रमोंसे छुटकर विभाव भाषाका परित्याग कर स्वभावम स्थिर रहनेका यह क्या ही उत्तम उपाय है। वही स्वामीजी आगे लिखते हैं—

‘यत्परं प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये ।

उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निविकल्पकं ॥’

ना प्रतिपादन करता है वह तो प्रतिपादन कहलाता है और जिसको प्रतिपादन करना चाहते हैं वह प्रतिपाद्य कहलाता है। ना कहते हैं कि यह मन माही मनुष्योंकी पागलों जैसी चेष्टा है। यदि ऐसा हा है तो हम उससे पूछते हैं—महाराज। फिर आप हा यह उपदेश, रचना चतुरा आदि कार्य क्यों करते हैं? हा इन्मत्त माहूम पड़ता है कि मोहके मद्भागम मन व्यवहार चलते हैं उन्मत्त नही, मत्त है।

यह लाख पद्द्रव्यात्मक हैं विमल सब द्रव्य परस्पर निचे हुए एक दूसरेका चुम्बन करते रहते हैं। इतना होने पर भास्य अपने अपन स्वरूपम तन्मय है। कोई द्रव्य किमी द्रव्यन निम्नता जुलता नहीं है पर फिर भा एक पर्यायसे अनन्तर उन्मत्त पत्राय उपन्न हाती है और ससारका व्यवहार चरना रन्ना है।

जन धर्ममें त्यागका क्रम—

जैनधर्मम सदैव क्रम-क्रमसे हा बयन किया गया है। पन्द्र उपदेश दिया जाता है कि अशुभापवाद छोड़ो और शुभापयोगम मनन करो और जो प्राणी दुःखारणने स्थिर है उन्मे

कन्ते हैं, भाइ यह भाव भी संसार बंधनम डालनेवाला है। अतएव इमको भी त्यागकर शुद्धापयोगम बतन कर। बुद्धबुद्धाचार्य एव जगद् बहने हे प्रतिक्रमण भी धिय है। अत नही प्रतिक्रमणको ही त्रिपरूप कह दिया वहाँ अप्रतिक्रमण—प्रतिक्रमण नहीं करनेको असृतरूप कैम बना जा सकता है। शुद्धापयोग प्राप्त करना प्राणी मात्रमा ध्येय हाता चाहिय। यह अवस्था जब तक प्राप्त नहीं हु तब तक शुभापयोगम प्रवतन करना उत्तम है। अतएव क्रम क्रमसे बढ़नका उपदेश है। तात्पर्य यही है कि यदि मनुष्य अपने भावा पर नष्टिपात कर तो संसार बंधनसे छूटना कोइ थडा बात नहीं है। एक बार भी यह प्राणी अपना ज्ञाननारा मेट देव वा यह परम सुखी हा सकता है।—अज्ञान क्या है ? ज्ञानाकरणाय कमर क्षयापशमम वा मिथ्यात्व लगा हुआ है वही अज्ञान है। उस अज्ञानका शरीर माहसे पुष्ट हाता है। और उसने प्रमासे ही यह विचित्र लीला देग्नेम आ रहा है। अत आत्म ज्ञानका वडी आवश्यकता है। चित्तने प्राप्त कर लिया वही मनुष्य धय है और उमीरा जीवन मायब एव मफल है।

### जीव और अजीवका मेद निज्ञान

यह चीवाचावाधिरार है। इस अधिकारम चीव आर अचाय दोनोंक अलग अलग लक्षणका बहकर जावने शुद्धस्वरपरान्तिखाना फतारो अभीष्ट है। काइ जीवका वनल रागद्वेषादिमय बतलाते हैं किंतु ये ता पुद्गलने सम्बन्धसे उत्पन्न विभाव भाव हैं। अत वा जा भाव परवे सम्बन्धसे हाग न क्वापि चीवक नहा कहलाये जा सकत, क्योकि यहाँ तो जीवने शुद्ध स्वरपरान्तिखाना है न। माथे पर तेल पोत तो ता यह चिकनाइ तेलका हा कहलाई जायेगी। इसी तरह समस्त राग द्वेष व माहादिन्की कलालमाणाँ पुद्गल प्रवृत्तियामे उत्पन्न हुए विभाव भाव हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है। ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 मय प्राणियोंम एक ममान पर्यं ~~इति एव एतद् भवेत्~~  
 वा भेद भाव नहीं है। वस्तु सिद्ध है कि ईश्वर का मान्यक है।

एक पगत हा रहा गी। ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 आम-याम अगल वगलमें बैठ हुआ ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 स्थितिमा मनुष्य आ वैजरा ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 इधर उधर पूडियोंका दिवा ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 गनिया पडा है। वडा काम ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 अउश्य लेनी चाहिय। पान ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 कता। अनि ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 उनसे फिर दिखाने लगता। ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 तरह दा वार हुआ, तान ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 उमने उठकर एक चौंटा ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 य तर वाप है जा धार ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 यो ही छोड जाता है ? ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 नहीं परोमता ? इतना ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 ठिमाने पर आ। ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 स्वरूप मरफा है। अपन ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 है। उसम ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~

अब यहाँ जीव और शरीर का संबंध। ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 आत्मा माननेवाल का ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 अन्य काइ तो बमसे जीव ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 और असातारे ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~  
 चाईना मत है कि जो ~~यदि ईश्वर विनाश के लक्षणों को धारण करता हुआ शुद्ध दृष्टान्त है~~



और वाइ नीय नहीं है। वाइ कहत हैं कि आठ पाठीकी जेमे ग्राह होना है, इम अलावा और ग्राह वाइ नीय नहीं है उमी तरह आठ कर्मणि संयाग ही जीय है और नीय वाइ यस्तु नहीं है। इम प्रकारक तथा अन्य प्रकारक कृतमे मा नीयनी मान्यता के त्रिपथम है परंतु इमस वाइ भी मन सत्य नहीं है। मय भ्रमम है क्यकि य सत्र जीय नहीं है। जा अध्ययनादि भाषों को ही नीय यतनात है उर प्रति आगय कहत हैं कि ये सभी भाव पाठगलित हैं। व कदापि स्वभायमय जाय द्रव्य नहीं हा मरते, इर रागादि भाषांको जा नीय आगममें धारणा है यह व्यवहारायसे है किन्तु व यस्तुन नीय नहीं है। इमा प्रकार जा यह प्रताप करते हैं कि माना और अमातास अपत्र सुग दुःखादि है धर जीय है उना कहत हैं, भाइ। सुग दुःखादिसा निमका अनुभव होता है यह जाय है। 'जो संसारम भ्रमण करता है यह जीय है एसी निसरी मान्यता है उनरे लिए कहत हैं कि इम भ्रमणरे अतिरिक्त जो मदा शाशना रहनवाला है यह जीय है। जैसे आठ पाठाके संयागमे जो ग्राह कहनाती है येम ही आठ कर्मणि संयागसे उत्पन्न जाय नहीं है किन्तु जिस प्रकार आठ पाठीसे घाी हुई ग्राह उस पर शयन धरनवाला ज्यरिक्त भिन्न है उसी तरह आठ कर्मणि अतिरिक्त जो वाइ यस्तु है धर जीय है।

जब यह सिद्ध हो चुका कि यणादिन या रागादिक भाव जाय नहीं है तब सहज ही यह प्रश्न हाता है कि जीय कौन है ? ऐसा प्रश्न होन पर आचार्य कहते हैं—

‘अनाद्यनतमचल स्वसपेद्यमिदं स्फुटम् ।

जीव स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चरुचक्रायते ॥’

यह जीय अनाद्यनत है और स्वसंज्ञ है, येवल अपनेसे ही

अपने द्वारा जानने योग्य है। निसम चैतयना विलास हो रहा है ऐसा स्वामाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शन रूप जीव है जो मय प्रकाशमय बोधरूप है।

अत जीवम रूप, रस, गन्ध, स्पर्श नहीं है। शरीर 'सस्थान' संहनन आदि भी नहीं है। राग, द्वेष, मोह, एव कर्म, नोकर्म आश्रय भी नहीं है।

जीवम न योगस्थान, बधस्थान, उदयस्थान ही है और न मागगाम्थान, स्थितिबधस्थान और सक्लेशस्थान ही है, क्योंकि ये सभा पुद्गलजनित क्रियाएँ हैं अत व कदापि जीवने नहीं हो सक्ते।

इस प्रकार यह जीव और अजीवका भेद मयथा भिन्न है इसको ज्ञानी जन स्वय स्पष्टतया अनुभव करते हैं किन्तु तिस पर भी यह अत्यन्त बड़ा हुआ मद्दामोह अज्ञानियोंको व्यथ ही अनेक प्रकारसे नाच नचाता हुआ उह शुद्धात्मानुभूतिसे बचित रगता है। आचार्य कहेते हैं कि ह मय्ये ! तू व्यथ कोलाहलसे विरक्त होकर चैतयमात्र बस्तुको देख, हृदय-सरोवरमें निरतर विहार करनेवाला ऐसा वह भगवान् आप्मा उसका यदि पण्मास पयन्त भी अनुभव करे तो तुम आत्म-तत्त्वमी अवश्य उपलब्धि हुए पिना न रहे। सुगके लिए तू अनन्त कालसे निरतर भटक रहा है पर सच्चा वास्तविक सुग तुम्हे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण क्या है ? यह ग्योचनेका प्रयास भी नहीं किया। वाम कैमे बने ? किसीने कहा अर, तेरा कान कौआ ले गया किन्तु मूरगने अपना हाथ उठाकर कान पर नहीं रग्या। कान कहीं चला गया ? इमी तरह कोई यह कह कि हमारे तो पीठ ही नहीं है परन्तु तनिक हाथ पाछे मोड़कर देगा होता। कहीं नहीं

गर्भ हैं। अपने ही पाम हैं। कबल उम तरफ लक्ष्य करनेकी आवश्यकता है।

### आत्माका प्रशान्त स्वभाव

एक 'ज्ञानमूयादय' नाटक है—उत्तम लिखा है, भैया एक सभाभवनम नट और नटी आये। नटने नटीसे कहा कि आज इन श्राताओंका का एक अपूर्व नाटक सुनाओ। अपूर्व ऐसा जा कभी इन्ताने सुना नहा। नटी जाती आय—ये संसारी प्राणा रात्रि दिवस विषयाम लीन परिमर्त्तोकी चिन्ताआसे भाराजात तथा चाहती दादसे दग्ध करना एसी अवस्थाम सुन कर्हा? तब नट बदन लगा प्रिय? एसा बात नहीं है। आत्मस्वभावोऽस्तु शान्तः केनापि कर्ममलमलङ्ककारणेन अशातो जात' अथात् आत्म स्वभावसे शान्त है किन्तु विही कर्ममल धनङ्कारणासे उह अशात हो गया है। अत इन अपद्रवोंको हटारर शान्त बन जाओ क्योंकि शान्तता (मुग्ध) उमका सहज स्वभाव है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावम रहकर ही शाभा पाता है। किन्तु हम लागा का प्रवृत्ति ही बाह्य विषयाम लीन हा रही है। विषय सुगरी प्राप्तिम सारी शक्ति लगा रह है। क्या इनम सचा मुग्ध है? यही मोहकी महिमा है। पर वस्तुआमि मुग्धकी कल्पनाकी मृगलुष्णासे अपना पिपासा शान्त करना चाहत है। सचमुचम दग्ध जाय तो सुख आत्माकी एक निमल पदाय है। वह वहीं परमेमे नहीं आती क्योंकि ऐसा निद्धात है कि जिसका जा चीन हाती है वह उसीन पाम रहती है।

( फिराजावाद मलम किया गया एक प्रवचन )

# क्षणी-प्रश्न

[ श्रीमान् प० पन्नालालजी साहिबराव ]



उत्तर

१ अतः इति नानि ननु अतः इति ननु । इति ।  
 वह भी मूलन अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 यहां चाह है अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 उत्तर इनका अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 कि न्याये ननु है इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 मित्रादे मयुर मयुर अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 है कि यह मयुर अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 इति ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।

अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 वचन वायकी अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 धम हाता । अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 है । गुप्तिन अतः ननु अतः इति ननु । इति ।  
 परन्तु अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 का वचन अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 समितिमें अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 रहता है अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 उत्तम अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 लयाह अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 है अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 मात्र, अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।

इति ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 मयुर अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।  
 कमा अतः ननु अतः इति ननु अतः इति ननु । इति ।

र बोध  
 म, अर्थ,  
 ती हैं । मैं  
 'वक्ति' ही  
 । व्याकरण  
 तुम्हारे जैसे  
 ना यी अतः  
 प उत्पन्न हो  
 कि तुम्हारे  
 । गये । बोध  
 अर्थ छूटते  
 म आत्मा म  
 कारण बोध  
 । आत्मा में

पेपरीता-  
 जाये ।  
 । दूर  
 माय  
 रे

स्वभाव ई और क्रोधादि विभाव । अग्निके सम्बन्धसे पानीना शातल स्पर्श उष्ण स्पर्श रूपसे बदल जाता है इसी प्रकार वायु कपायके सम्बन्धसे आत्माका क्षमा गुण क्रोध रूप बदल जाता है । नीचरूप परिणमन विभाव परिणमन है यह अकल्याण करने-वाला है ।

टीकमगढग एक टुलार भा नामक विद्वान् ए जो 'याय-शास्त्रक महान् विद्वान् थे । मैं भी उनसे पाम 'याय पढ़ा हूँ । पढ़े थे व्याकरण नहीं जानते थे । एक दिन इन्होंने अपने गुरुसे कहा कि जिस प्रकार 'गा वक्ति' रूप होता है वसा प्रकार 'गा त्रयाति' रूप क्यों नहीं होता । गुरुजी इनसे मूर्खतापूर्ण प्रश्नका मुनकर बहुत दुःखित हुए और उन्होंने मूर्ख पशु आदि कहकर इनका बड़ा तिरस्कार किया । गुरुकृत अपमानमे ये रष्ट होकर अपने स्थानपर चले आय और अपनेमे नीचेनी कक्षामें पढ़नेवाले एक छात्रसे बोले कि चला हम तुम्हें तुम्हारे घरपर अन्ध्या न्याय पढ़ा देंगे यहाँपर दशम क्यों पड़े हो । छात्र मजूर हो गया अतः उसे साथ लेकर उसके गाँव चल गये । उस छात्रको व्याकरण अन्ध्या आता था । इन्होंने उसे 'याय पढ़ाया और उससे परीक्षाके रूपमे व्याकरणके सूत्रोंका अर्थ पूछ पूछकर सब व्याकरण साख लिया । छ माहमें वे व्याकरणके विद्वान् हो गये । वाप तथा साहित्यका भी अन्ध्या अभ्यास कर लिया । यह कर चुकनेसे बाद अपने गुरुजीके पाम वापिस पहुँचे और बोले जाओ तुम्हारे वापका चुना दी जहाँ पढ़ना ही पूछ लो । गुरुने हँसकर शिरपर हाथ फेरते हुए कहा 'बिदा ! यही तो चाहता था । अज्ञानमूलक तुम्हारा भय निराल गया इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । पर एक बात तुम यदि कर लो—

‘अपराधिनि चेत् क्रोध. क्रोधे क्रोध कथ न हि ।  
धर्मार्थकाममोक्षाणा चतुर्णां परिन्धिनि ॥’

यदि अपराधापर क्रोध करना है तो क्रोधने ऊपर क्रोध क्या नहीं करते, क्योंकि यह क्रोध भयंकर अपराधी है । धर्म, अथ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का परिपक्वा है विरोधी है । मैंने तुमसे यही तो कहा था कि तुम मूय हो वच् धातुरा ‘वक्ति’ ही रूप होता है और व्र धातुका ‘व्रवीति ।’ पर तुम व्याकरण ज्ञानसे भयथा शून्य थे अतः विपरात प्रश्न करने लगे । तुम्हारे जैसे विद्वान्ना भाषा विषयक ज्ञान न हो यह बात मुझे खटकना थी अतः मैंने तुम्हें मूय कह दिया । किन्तु यह सुनकर तुम्हें रोष स्वप्न हो गया । तुम्हीं विचारो मैंने तुम्हारा अपराध किया कि तुम्हारे क्रोधने । गुरुने वचन सुनकर टुलारका नतमस्तक हो गये । क्रोध निकला कि आ माम शांति उपन्न हुई । अग्नि का सम्बन्ध छूटते ही पानी ठंडा हो जाता है यह कौन नहीं जानता । धर्म आत्मामें ही है सिर्फ उसका बाधक कारण दूर करना है । बाधक कारण क्रोध मान माया आदिक दुर्गुण हैं इन्हें दूर कर दिया जाय तो आत्मामें धर्म प्रकट हो जाय ।

श्री हृदहृद स्वामीने कहा है कि यदि आत्मात्त विपरीताभिप्राय निरल जाय तो आत्मामें सत्र सद्वगुण प्रकट हो जायें । जिस मुनि का विपराताभिप्राय अर्थात् मिथ्यात्व रूप परिणमन दूर नहीं हुआ वह मुनि नहीं । द्रव्यलिंगी शाखा भावलिंगी साथ हैं । जिस मुनिने द्रव्यलिंग व साथ भावलिंग नहीं हुआ उसने क्या हुआ ? हृदहृद स्वामी कहते हैं कि हमारे शत्रु भी द्रव्यलिंग न हों ।

जिस प्रकार धनरो चाहनेवाला कोई पुरुष रात्रो जानकर उसकी ग्पासना करता है इसी प्रकार आत्मार्षी पुरुष आत्मामें



जानकर उसका श्रद्धा करना है, उसकी उपासना करना है। मोक्षार्थी पुण्यका आभारी श्रद्धा करना आवश्यक है। माध्य सिद्धि कारण कृष्ण हानपर ही ता जाता है। 'पयनाऽय यद्विमान धूमन्त्या' यहाँ वहिमत माध्यका सिद्धि धूमन्त्र मायन से ही तो हुई। समारम दूरनेके लिय आवश्यक है कि यद् प्रत्यय किया जाय कि मैं मीन हूँ ? मेरा क्या स्वरूप है। एतद् स्वामीने प्रयत्नमारम वन है—

‘चागित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो ममो त्ति णिदिट्ठो ।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥’

अथा चारित्र हा धम है, ममता परिणाम हा धम है। यह माह तथा क्षोभन रत्ति आभार परिणामरूप ही है। 'स्वरूपे चरण चारित्त म्प्रसमय प्रवृत्तिरित्पर्य' । तदत्र वस्तुस्वभावात् धर्मः । स्वरूप रमग हाना सा चारित्र है। यही स्वसमयम प्रवृत्ति करना है। क्रोधादि पर समय है क्योंकि व परजय धिमार हैं। क्षमा मादन आदि म्प्रसमय ह। यही जीव द्रव्य स्वभाव होनेसे धर्म है। ममता भाव दुःखम वस्तु नहीं। मोह अथान् मिथ्यादर्शन और श्वाभ अथान् रागद्वेष इनका अभाव कर दिया जाय तो ममता भावरु प्रकृत होनम विलम्ब न लगे।

आन उत्तम क्षमा है उसेहा लकर जाश्रा। परपदाथका अपना मानना छोड़ो। पर पदाथको अपना मानते हो तभी ता क्रोध होता है। आप परको अपना मानकर उसका परिणामन अपनी इच्छानुकूल करना चाहते हा परंतु परका परिणाम परके अधीन है आपने अधीन नहीं आप व्यय हा क्रोध करते हैं। मैं दशान ज्ञानमय अत्मा हूँ। शांता दृष्टा होना ही मेरा स्वभाव है परन्तु मैं

जाता दृष्टा न रहकर रागा द्वेषी भी हो जाता हूँ । यह कार्य ही भव-  
भ्रमणसो प्रानेवाला है । इसमें वचना है ता उसा एक आत्माका  
उपासना करो । यद्यपि आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञानर साथ हा उमका  
तादात्म्य है, पर तु हम क्षणभर भी उमका उपासना नहीं करते ।  
आत्माकी ओर उपयोग न जगारर भिन्न भिन्न पन्थायानी आर  
उपयाग भर करत रहत है । कहीं एसी परिणतिमे बल्लक्षण  
होता है ?

( सागर-२५-८-५२ )

## २

आपने बल समाधमका वणन सुना था और आन मार्दव  
धमका । बल तरराथसूत्रका प्रथमाध्याय सुना था और आन  
द्वितीयाध्याय सुनेंगे । मादवने धिपयमे में क्या कहूँ, महाराजन  
मुग्गारविन्दसे मत्र श्रवण कर चुके । प्रथमाध्यायम आपने मात्र  
मार्गका वणन सुना हागा । मैं तो वारिसने कारण पहुँच नहीं सका  
इसका दु ध रहा । वारिस हमारे सत्कायम अतरायरूप हो गई ?  
भाग्यसे ही तो मत्र हाता है ।

समर्थसिद्धिकी भूमिनाम लिरा है कि सौराष्ट्र देशके एक  
नगरमें द्वैपायक नामका सेठ रहता था । उड़ा भद्र था । स्वान्याय  
की प्रतिज्ञा उमके थी । उमने एक सूत्र प्रनाकर घरर रग्भेपर  
लिख दिया 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग' अर्थात् दर्शन ज्ञान  
और चारित्र मोक्षरु मार्ग हैं । यह कहा जाहर गया था । घर पर  
एक निमय आचाय आहारके लिये आये । जत्र आहारकर जाने  
लगे तत्र उनकी दृष्टि खम्भापर लिखे 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष  
मार्ग' सूत्र पर पड़ी । उदोंने सोचा कि दर्शनपद तो सामान्यप

है अतः मिथ्यादर्शन भी माक्षमाग हो पायगा। उसरी व्यावृत्ति बरनने लिये यहाँ 'मम्यक्' पद जोड़ना चाहिये ऐसा विचारकर उन्होंने खम्भापर सूत्रके प्रारम्भम मम्यक् पद और जाड़ दिया तथा तपावनरा चले गय। जब द्वैपायन घर आया तब उनमें अपनी स्त्रीमें पूछा कि सूत्रम यह परिवर्तन किमन किया है। उनमें कदा कि आन निम य मुनि जाय य उनका यहाँ भोजन हुआ, उठाने ही य परिवर्तन किया है। द्वैपायन पता चलानर तपावनम पहुँचता है। उम द्वंपायन नामक भक्तके उणनम पूज्यपाद स्वामाने लिखा है कश्चिद् भव्य प्रत्यासननिष्ठ, प्रज्ञानान् स्मरहितमुपलिप्सु आत्ति। यह श्रुत्व त निरुट भव्य था। निरुट भव्य ही ता भद्रज्ञानी तथा आत्महितरा इच्छुरु हाता है। जा दीघसेसारी हाता है उसरी आत्महितरा और मचि ही नहीं होती। द्वैपायन जानर देगता है कि एव परम पवित्र, रमणीय एरात और भक्त जीर्थोंसे विश्राम देनेवाता तपावनम निमन्थाचाय महाराज विराजमान है। वे इतने शांत हैं कि उनकी मुद्रामे माक्षमाग प्रकट हा रहा है। व यद्यपि कचनमे कुछ नहीं धोल रहे हैं तो भी शरीरसे साभान् मोक्षमार्गका दिग्दर्शन करा रहे हैं। परहितका प्रतिपादन करना ही उनका कार्य है। बडे बडे आनर उनकी उपासना कर रह हैं। यह सब देग यह बडा प्रभाषित हुआ और नम्रतासे वाला भगवन्। आत्माके लिये हितकारी क्या वस्तु है? उदोंने कदा माय। अनादिनातसे यह जाय संभाररूपी कारागारम उद्ध है, उससे छूट जाना ही इमके लिये हितकारा है। आत्माने साथ जो कर्माका मन्वध हो रहा है उसरा छूट जाना ही माक्ष है और यह तभी संभव है जब कि बधने कारणोंका अभाव तथा सनर हो पाय। आत्मनका निरोध और सनरकी प्राप्ति हुए बिना माय नहीं हो सकता।

मुनिराजकी उक्त वाणी मुनरर द्वैपायन बहुत प्रसन्न हुआ और

घोला कि महाराज इस प्रयत्न की पूति तो आपसे हा हा सकती है। भयङ्गी प्रेरणा के मुनिराज ने तत्त्वाथसूत्रकी रचना पूर्ण की। वे मुनिराज गृहपिच्छ थे। यह दूत कथा है। अकलम स्वामी राजगार्तिके प्रारम्भमें इसका ममर्थन कर आग कहते हैं **नाम शिष्याचार्य-सम्बन्धो विवक्षित**,—यहाँ शिष्याचार्यके सम्बन्धी विवक्षा नहा है किन्तु संसारमागरम निमग्न अनरु प्राणिगणका उज्जिहापासे प्रेरित हा आचार्य महाराजने स्वय मोक्षमार्गना निरूपण किया है। आत्मासे कर्मका सम्बन्ध छूट जाव इमसे बढतर और हित क्या हो सकता है। कमना सम्बन्ध छूट जानेपर ससारी और मुक्त जीवम क्या अंतर रह जाना है। इन दोनोंके बीच जितना अंतर है वन मय कर्मकृत है और तत्त्वदृष्टिसे विचार करो तो कर्मकृत भी नहीं है, क्योंकि कर्म तो जड पदार्थ है। उनम यह इच्छा कहीं कि में इस आत्माना अहित करूँ। सय अपराधी नड तो स्वय है। स्वय रागादि विभार करता है जिनमे कर्मोना बध हाता है इसलिय आत्माना रागादि परिणतिसे बचाआ। रागके साथ द्वेष करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह तुम्हारे नहीं है परन्तु विभार है तुममे हुए है यह बात स्मरी है परन्तु तुम्हारे स्वभाव नहा है। स्वभाव होते तो कभी नष्ट नहीं होते परन्तु धीतराग अस्थाम उनका पता नहीं चलता। रागद्वेषना उदय तबतक ही रहता है जब तक यह जीव निज और परका ठान-ठीक नहीं समझ पाता है। जहाँ परपदार्थके भिन्न स्वरुद्रव्यम—अपने आत्मद्रव्यम रुचि हुई, वमना ज्ञान हुआ और उसीम स्थिर निवास हुआ कि मात्ममार्ग प्रकट हो गया फिर रागद्वेष कहाँ रहेंगे ?

युक्त्यनुशासनके अन्तम समतभद्र स्वामा लिखत हैं कि हे भगवन्! यह जा मैंने आपका स्तवन किया है वह आपके रागसे

४

आन सयधमंरा निरूपण हुआ है। जिस थाप तागान महाराजने मुद्रप भरण किया है। सयधमसे क्या क्या नहीं होता? यह जीव अनंत समारम पार हो जाता है फिर अन्य सामभारा भिला दुलभ नहीं। भ्रंशानसे ही मत्य धमका पानन हो सकता है। निरान पर पदायसे भिन्न रहनेवाल अपने गुद आत्मस्वरूपरा समक तिया य भूठ क्या योतोगा ?

मैं उदाहरण दूसरोंका क्या दूँ स्वयं अपनी बात सुनाता हूँ। जब मैं महाराज से रहता था तबकी बात है। एक बार मौजीलाल और हुआवात मौरयाम लडाइ हुई। मौजीलाल भनीना था और कुर्जीलाल चाचा। मौजीलालने हुआलालका ग्यून मारा और अपना अगूठा अपन मुँहसे काट कर रिपाट लिया दी कि कुर्जीलालने हमें मारा है। इतना ही नहीं हुआ द दिलाकर डाक्टरसे मार्टिफिकेट भी लिगवा लिया कि इसे घानक काट पढ़ेंगाइ गड है। मुन्दमा दायर हुआ। हरीसिंह मौजीलालसे भाइ वं। उन्हान हमसे कहा कि तुम हमारी थोरसे गयाइ दे दा कि हमने कुर्जीलालको मौजीलालका अगूठा काट देरगा है। मैंने बहुत कहा कि भाई अदाततम जाते हुए मुझ पर लगता है अत मेरी गयाइ न दिताथो पर वे नहीं माने। बाल एसा कह देना कि हम अपने चाचाक यहाँ लुहरा जात थे। बीचम मौजीलाल और कुर्जीलालकी लडाई हो रही था तब कुर्जीलालने मौजीलालका अगूठा मुँहसे काट लिया। मेरे मना करने पर भी उर्दानि परथा लिखकर द दिया। मुझे कचहरा जाना पड़ा। पुरुर हुई मन्निप्रेटने पूरा सच कहोगे मैं कहा, हाँ सच कहेंगे, क्या जानते हो, मन्निप्रेटन पूछा, मैं हरीसिंहने कहे अनुसार कर दिया। अतम मन्नि

पूटने पूछा कि और क्या जानत हो ? मैंने कहा और ता रुक नहीं जानता । ये हरीमींग खड हैं इन्होंने कहा था कि एमा कह देना, सा कह दिया । मामला गड़गड़ हो गया । हरीमींगने बहुत कहा कि दूसरमे पूछ लिया जाय पर मतिपूटने एन न मानी और यह कहकर मुन्दमा ग्यारिज कर लिया कि तुमने गुण अपना अंगूठा अपन मुहसे गान्कर इसपर भूठा आरोप लगाया है । भैया । मेरा ता विश्वास है कि तो मच गालता है यह कभी दु ग्या नहीं हाता । इसलिये ज्यों की त्यों बालना ही कार्यकारा है ।

यह दशलभग धम है । धम आचरण करनेसे होता है और आचरणमे हा फन मितता है । तो ज्ञान क्रियाहीन हाता है नमकी क्या कीमत ? 'इत ज्ञान क्रियाहीनम्' यह प्रमिड भा है । सत्य धर्म ही प्राणारा बन्वाण करनेवाला है । एन सत्यधममे ही जायना उद्धार हो जाता है ।

एक रानारा लडका चोरी करने लगा, पिताने बहुत समझाया पर नहा माना । बाला, पितानी बोड दूसरा बतमान राना आ जायगा तो आपरा राज्य चला जायगा और तन मुमे दु गरी होना पड़ेगा, यदि चोरी करू गा ता अपना काम ता चला लूंगा । रानाने रुट होकर उस दशसे निमाल दिया । यह दशातरमे चला गया तथा जुआ चोरी शिकार बश्यासेवन आदि पापोंम पंम गया । एन दिन यह शिकारक लिये जंगलमे गया । देगता है कि कोई मुनिरान बैठ है और सनो तरह तरहसे व्रत दे रहे हैं । चोरमे भी नहीं रहा गया । यह भी बोल उठा महाराज कोई मरलसा नियम मुमे भी दे दीजिये । चोरी, शिकार, जुआ आदि तो मैं छाड़ नहीं सफता फिर भी कुछ ऐसा नियम बताओ जिसे मैं पालन कर सट । मुनिराजने कहा भाई तू यह सन नहीं छाडना चाहता तो नहीं छोड पर एव भूठ बोलगा छाड़ दे । उसने महा

राजसूय जान मान ली और झूठ बोलना छाड़ लिया। चार छह माह हो जानपर उसने विचार किया कि दरु ता मच बोलनेसे क्या लाभ होता है ? उसने एक दिन राजपुत्र जैमी पाशाक पहिनी और रातका ६-१० बजे रातक महलम चोरी करनेके लिये प्रयाण किया। पहरदारन टाना जान हा और वर्ण जाते हा ? उसने कहा चार हैं और चारीक लिय राजमहलम जाता हूँ। पहरदारने रामभा, यत् ता हैंसावर रत्न हैं कर्नी चार भी अपन मुँइसे कस्त ह कि मैं चोर हूँ। उसने आगे चला जान लिया। इसा क्रमसे यह मत्र पहरदाराना उत्तर देता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ राजा मात व। माने समय राजान अपने सत्र कपडे तथा आभूषण उतारकर अलग रख दिए व। चारने अपने कपडे तो वहाँ छाड़ और राजाने कपड तथा आभूषण पहिन लिये। जैसा गया था वैसा ही वापिस आ गया। किसी पहरदारकी हिम्मत नहीं हुई कि इसे चार कह सत्र। सत्रने समझा कि यह कोई राजाका ग्रास मिलनवाला है मलिन राजाने हा यह मत्र इस प्रदान किये हें। अन्तम वह अश्वशालाम पहुँचा और मनुष्यसे कहा कि एक घाडा तैयार करा। वह भी रौजम आ गया। यत् अश्व तैयार करने लगा और यह पासम पडे हुए पलंगपर लट गया। रात बहुत हा गई था अत उसे नाद आ गइ। सत्रा हानेपर राजाने देखा कि आज्ञा ता मेरा पोशाक तथा आभूषण बगैरह सभी काइ ले गया है। उसने पहरदारसे कहा कि मूर्खों ! तुम इममे मन चाहा बतन पाने हो पर इतनी रक्षा नहा कर मरे। तत्र पहरदार बोल—महाराज और तो काई आया नहीं। सिफ एक भला आदमी आया था जो मुरतसे राजपुत्र जैसा लगता था और कहता था कि मैं चोर हूँ चोरी करनेके लिए राजमहलम जाता हूँ। उसी की करामान दृग्गी। उसकी तलाश हुई ता अश्वशालाने पास

पलंगपर लटा हुआ मो रहा था। पहरेंदार तथा मंत्री आदि मग बटा पटुच गये, राता भा पहुँच गया पर किसी की हिम्मत नहीं हुड कि उसे चोर न् मके। वह नागकर बोला कि मैं चार ही हूँ और रातको आपके ही घर चारी नर आया हूँ। यह सग सामान आपका ही तो है। पर य मोल नहीं, एक ममान और वस्तुएँ भी ता हुआ नरती हूँ मेरी वस्तुएँ और काइ ले गया होगा, वहीं चार अपने मुँहमे कहता है कि मैं चार हू। यह वाला नहीं नहीं में वास्तवम चोर ही ह। उसकी रातसे राता दडा प्रभावित हुआ और मोला, भाई चोर हो चाहे उद्ध हो, मेरी एक लडकी है सो उसके माव त्रिवाह कर लो और आधा राज्य ले ला। यह मोला राज्य तो मैं छोडकर आया हू मेर भी राज्य था। रही लडकीके त्रिवाहकी रात सो बिस बाबाने मुके सच मोलनेन। नियम दिया था उससे जानर पृत्र लू कि राता मुभ एक सच मोलनेने इतना फल ता मिल रहा है कि चारा करनेपर भी कोई मुके चोर नहीं समभता। अर और क्या जाडा है? मुनिने कहा कि भाइ तूने धमना नमूना तो देख लिया अर तुमे जैसा उचित प्रतीन हो सो नर। आत्माना भना चाहता है ता सग छोड और मेरे जैसा हो जा। उमे साधुकी रात जँच गई और स्वय साधु बन गया।

मय आदि धमनि जिनका आत्मा पवित्र है उनके चरण नों पहुँच जाते हैं वहाँ ताईस्थान हो जात है। जिस प्रकार अगस्त ताराक उदयम गला पानी स्वच्छ हो जाता है उमा प्रकार पत्रिवात्माथरि संसगम मलिन आत्माएँ भी निमल हा जाती हैं। हुन्दद म्नामीरा कहना है कि परपदाथोंसे छाडकर आत्माका ज्ञान करो। आत्मा सग पदाथाम भटफना है उमका मूत कारण रागद्व प है। यहा आत्माना मलिन करते हैं। भेद विज्ञानसे अपने आपको पृथक् करना है। जग गतका कीचड मिट जाना है तव वह निमल हो जाता है। इसी प्रकार जग आत्मा-



के रागद्वय भिन्न होते हैं तब आत्मा निर्मल हो जाता है । पर द्रव्यकी इच्छा छोड़नेसे ही निष्कृत अवस्था प्राप्त होती है । पुस्तक आदिकी इच्छा भी परिमल ही है और वह तुम्हारा कारण है । मेरा ज्ञानाणन हाथका लिखा हुआ मागरम पत्रालाल जी तिलीवालान्त यहाँ रखा था, मैं शाहपुरम था । उनके यहाँ चारी हो गई मुझे निश्चय हुआ कि वहाँ मेरी पुस्तक चोरी न चली गई हो । उच्च कृमरा काम नहीं था फिर भी मैं विद्याधरको सागर भेजा और वहाँ मैं सात्वना द आना और हमारा पुस्तक रोते आता । निष्परिमल अवस्थाम किसी अन्य पदार्थकी आकांक्षा नहीं रहती । मन्त्रा स्नेह छूट जाता है । रामचन्द्रना सीताके स्नेह के पाछे वन धन भटके । चन्द्रावर रावणने वश विध्वंसने कारण वने परन्तु तब सीताका राम छूट गया तब सीताके जो प्रतीकने कितने उपद्रव किये पर व रचना ही विचलित नहा हुए । भगवान् रामचन्द्रकी शुद्धध्यानम लीन रहकर अन्तर्मुखमें चली वन गये । इनसे पता चलता है कि ये रागद्वय मात्र ही सकल विपत्तिने मूल हैं । इनसे भेद ज्ञान करो—अपने आपको जुदा अनुभव करो । इस भेद ज्ञानकी महिमाम अमृतचन्द्रसूरिने लिखा है कि—

‘भेदविज्ञानत सिद्धा सिद्धा ये किल केचन् ।

तस्यैवामागतो बद्धा बद्धा ये किल केचन् ॥’

अथात् आगतक जि ने सिद्ध हुए हैं सब भेद विज्ञान से ही हुए हैं और कितने ससारम बद्ध हैं व भेदविज्ञानके अभावसे ही बद्ध हैं । इस धर्म उपदेशको क्याम न टालो, इसे सिनेमा न बनाओ । भगवान् दर्शन करो और भावना भाजो कि मैं भी आपसे ही समान हो जाऊँ । जिसने धीतरागताका अनुभवकर लिया उसे विषय वासनाम आनन्द नहीं आ सकता ।

‘तिलतेलमेव मिष्ट येन न दृष्ट घृत क्वापि ।

अग्निदितपरमानन्दा उदति त्रिपयमेव रमणीयम् ॥’

जिसने कभी घी नहीं खाया उस तिलका तल ही मीठा लगता है इसा प्रकार जिसने आ मसुरका अनुभव नहीं किया वह त्रिपय मुक्त ही रमणाय मानता है ।

‘जिस नाहीं चाखी मीसरी तिसको कचरा मिट्टे’

जिम्न मित्री नहीं खाइ उसे कचरा ही मीठा लगता है

एक मानु थे । पैदल चलन चलत उनका पैर सुरदर हा गये ।

एक बार एक गृहस्थको उनके पैर धोनका अरसर आया तो वह उह सुरदरा दर उद्ग आत्रय करने लगा । माधुन उहा अर मूर्ख तुने अर तक मिश्रोंक पैर पलोट है माधुने पैर नहीं पलोट । उनका मेवा करनका अरसर तुम्हे नहीं आया ।

समार उड़ी भयंकर चीन है इसमे उडे बड़े डर गये । देखो भगवान् आदिना भी इस संसासे डर गये । जो ही धियाँ तो उनसे थीं पर उडे छोडकर जंगलम जा ट्रिपे । अस्तु कहनेका मार यह है कि मोद एक गेमी चीन है कि अन्धों अच्युता के छम्हे छुटा देता है । अत और उद्ग न छोडो तो मोहको छोडकर जाओ ।

## ५

आन शौचधमका व्याख्यान आपने सुना । शौचधम आत्माकी पवित्रताका कर्तु है । यह पवित्रता लोभ उपायके अभावमें प्रकट होता है । लोभ बुद्धि समस्त अनर्थोंका मूल कारण है । लोभ विचित्र प्रकारका होता है । किसीको धनका लोभ है, किसीको पदका लाभ है, किसीको यशका लोभ है, पर पर असन विचार करा तो सभी लोभ छोडने योग्य हैं । मैं तो एक धान आपका सुनाता हूँ और अधिक जानता भी नहीं । व्याख्यान सिद्धान् लोग देते हैं पदार्थमें मैं उद्ग जानता नहीं सिर्फ आप लोगोंकी अवस्था मुझे बडा यत्ना रही है ।

राजमगदूम बड़गनी रूता था। उसका पति ग। रीतान छुड़  
 नी थी। और सम्पत्ति ट्रेड दो लागरफी गी। जब उसका पति  
 धीमार पडा ता मर गाग खबरन लिय आय। धीमारफी हातत  
 दग यह निरुथ हा गया कि य वचनयाले नहीं है नथ रातके  
 प्रारम्भम हा बडगनीन सत्रम नहू दिया कि आप लाग अपने  
 अपन घर जाइग अत्र रान री ममय है। इहोन औपधि घंगरहवा  
 त्याग कर दिया है पर मररा हागा तत्र दग्या जायगा। मैं रानभर  
 नरनी मत्रा बरुंगी। गह कह गाँवके मत्र तागाँको विदा कर दिया  
 और निरा अन्दरमे घन्द कर लिण। रातक नो बज पतिना मरण  
 हा गया पर वह घबड़ाई नहीं और न रोई ही। राज्यना रायना था  
 पि निमर सन्तान नहीं हाता ग उसरी सम्पत्तिपर राना वचना-  
 करतना था सिफ मोनी परवरिशक लिये कुछ देता था। बडगनी  
 ने विचार किया कि हमारा सम्पत्तिना भी यही हात होगा इस्-  
 लिण दान करा दिया जाय तो अच्छा है। एमा मोच उसन अपनी  
 सम्पत्ति निमालकर आँगणम इरुडी व। सोना चोर्दी आदि जो भी  
 था सत्र इवढा कर लिया। लगभग लाग डेड़ लागरी सम्पत्ति  
 हागी। सत्रके उपर उसने चावल हल्दी मिलानर छिड़क दी तथा  
 ग्व बख सत्रपर ढाक दिया। रात्रि शांतिसे बिताइ। प्रात राल  
 सत्रको खरर लग गइ। राज्यम भी खरर हा गइ, थानेदार तथा  
 पुलिस आदि आ गइ। बडगनीन अपने काठोंपर पुलिसक तातो  
 लगना दिथ। जब पतिना दाह संस्कार हो चुना तत्र उसने कहा  
 कि मेरी सम्पत्ति अधिक् है अत दीवान साहबना बुता लीचिये।  
 दानान साहब पहुँच गये। मरानर राठों तथा तिचारियों ताले  
 जब खाल गये तत्र छुड़ नरु निरता। पुलिसन कहा कि तुम्हारे  
 तो अधिक् सम्पत्ति थी क्या हुआ? उसन कहा कि हुआ कुछ  
 नहीं। आप लोगोका कष्ट न हा इसलिये मैंने निवालकर स्वय  
 इरुडी कर दी है इसे आप ली जाइये। जब बख उधाडपर देना

गया ता उसपर चावल और हल्दी छिड़का हुआ था। दीवानने यह देखकर पूछा कि यह सब क्या है ? तब उसने कहा कुछ नहीं भरनेके पहले हमारे पति उस सम्पत्ति का दान कर गये हैं। मरुत्पके लिये हल्दी चावल छिड़के गये हैं। आप लेना चाहें ले लीये। मेरे घरसे तो जाना ही है। दीवानने रानाके पास खर भेजा तो उत्तर आया कि दान का कुछ सम्पत्ति लेकर राना क्या करेगा। उसकी व्यवस्था रडगेनीकी इच्छानुसार कर दी जाय।

देखिये रानाकी भावनासे उसकी सब सम्पत्ति बच गइ। उसने पपीराम रडगा भारी मन्त्रि बनवाया। आप सबने देखा होगा। उसने हृदयका विगुदना इतना ही नहीं थी। जब पच कन्याएँ प्रतिष्ठा हुई तो पपीराम इतनी भीड़ हुई कि सब कुआँरा पानी समाप्त हो गया। तबमाम मेलाम पानीके त्रिना त्रिदि मच गई। प्रतिष्ठाकाय सब जपनेकी बात कहने लग। रडगेनीन कहा कि सब तो मैं जपूँगा। आप क्या जपोगे ? मुझे जगम उतार दिया जाय, तोगाने उमका आग्रह देख पडा पर पैठाकर उसे जगम उतार दिया। यहाँ जाकर उसने अच्छे हृदयसे परमात्मा स्मरण किया और कहा कि जब तक मेराके सब हुए लपानन नहीं भर जाते हैं तब तक मैं यहाँसे उठनेकी नहीं। भैया ! उमकी विगुदनाके प्रभावसे ऊँचा भर गया और उसका पाना ऊपर आ गया। यहाँ एक ऊँचा नहा मेलामे सब हुए भर गये। रान अधिन पुराना नहा है। गत कहनेका यह है कि शीच नाम परिव्रताका है और परिव्रतामे जो न हा जाय सब थोडा है।

आशा मात्र दुःखदाइ है। जगतन यागा जगन्मे कुछ पानेकी आशा रखता है यहाँ तक कि मान सम्मान पानेका भी उता रखता है तब तक वह यागी नहीं—

‘जब तक जोगी जगद् गुरु, जगसे रह उदास ।  
जब जग से आशा करे, जग गुरु जोगी दास ॥’

जब योगी जगत्से कुछ पानेकी इच्छा रखता है तो यह दास हो जाता है और जगत् गुरु हो जाता है।

लोग विद्वानोंकी आलोचना करते हैं पर जयमं वड़े आभियोंने विद्वानोंका जात्र करना छोड़ दिया तबसे समाज नष्ट भ्रष्ट हो गया। एक अक्षरका दनवाला गुरु कहलाता है। फिर जो रात दिन तुम्हें मानवान देते हैं उनसे प्रति तुम्हारा अनादर रहे यह बड़े दुखकी बात है। टीरमगढम रामयक्स सेठन यहाँ पंचबन्याणसे प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठाके लिये ५० भागचन्द्र जी बुलाय गये। जब व टीरमगढ पहुँचे तो सेठ रामयक्सने पूछा कि महाराज कैसी रमाइ बनवाई जाय बन्ची, पक्की या बन्ची पक्की? पण्डित जीने कहा न बन्ची न पक्की न बन्ची पक्की। तब सेठन कहा फिर आपका रसाई कैसी बननी है? पण्डित जीने कहा, भाई बात यह है कि हम जिसके यहाँ पञ्चबन्याणक होते हैं वहाँ यहाँ भाजन नहीं करते। पण्डितजीका उत्तर सुनकर सेठने अपने मुनीमसे कहा कि जहाँ जहाँ प्रतिष्ठाकी चिट्ठियाँ दी गई हैं यहाँ वें दूम्री चिट्ठियाँ लिखकर भेजो कि अब प्रांतिष्ठा नहीं होगी। जो पास इच्छीकी गई है वह गांधोंको रिरला दी और जो भोजन सामग्री तैयार की गई है वह भी गराघोंको बाँट दो। पण्डितजी ने कहा—कैसा क्यों? तब सेठने कहा कि जब आप गुरुजान ही हमारे यहाँ भोजन नहीं करते तब दूम्री गराय लागान क्या रिगाडा है? उनका प्रायश्चित्त कौन करगा? दूम्री अच्छा तो यही है कि मैं प्रतिष्ठा ही नहीं कराऊँ। सेठका बात सुनकर पण्डितजी चुप रह गये और बाल अन्धा रसाई बनवाओ। सेठन फिर पूरा बन्ची, पक्की या बन्ची पक्की? तब पण्डितजीने कहा भाई यह कुछ न पूछा, चाहे जैसी बनवाओ। पण्डितजीने बड़ी प्रसन्नतासे भोजन किया। प्रतिष्ठाका वायं पूरा हुआ तब सेठ पण्डितजीकी विदा करने लागे। पण्डितजी बाल रह क्या कर रहे हो? करे ता कुछ

लनेका त्याग है। सेठने कहा यदि आपने त्याग है तो इन प्रतिष्ठा ग्रन्थोंमें क्यों लिखा कि प्रतिष्ठाचार्यका सत्कार करना चाहिये। आप इन्हें पत्न दीजिये। फिर लनेका त्याग है दानका त्याग तो नहीं है? आप अपने घरकी सम्पत्तिका दानकर दीजिये पर इसे तो आपको लना ही पडेगा। पण्डित जी चुप रह गये और सेठने तथा गाँववालोंन उनका अच्छा सम्मान किया। आप लाग तो सम्मान करना दूर रहा वह उल्टा परेशानाम डालते हैं। समयकी बलिहारी है।

तत्त्वदृष्टिसे धर्म क्या है? इस ओर हम लोग विचार नहीं करते। वास्तवमें राग द्वेषकी निवृत्ति ही धर्म है। उसीसे आत्माका पवित्रता हाती है। शौच मुनियोंका धर्म है। न्द स्नान से क्या प्रयोजन? गृहस्थको प्रयोजन अत्रत्य है पर वह भी स्नानमें आ मगुद्धि नहीं मानता। बनारसके मणिराजिका घाट-पर एक बार लोभमाय तिलका व्याख्यान हा रहा था। व्याख्यानमें उनसे कह आया 'गङ्गास्नाना-मुक्ति' अथान गङ्गा स्नानसे मुक्ति होती है। पास ही म एक पडा बैठा था। बोला, महाराज इसका क्या अर्थ है। तब तिलकाजान कहा 'गङ्गास्नाना-चठारीरिकमलमुक्ति' अथान गङ्गाकीम नहानेसे शरीरका मल छूट जाता है न कि आत्माका। पडा उनकी व्याख्या सुनकर बहुत गुश हुआ। उसी मभाम एक शास्त्री विद्वान था वह बोला इस तरह तो आप शास्त्र विरुद्ध अर्थ कर रहे हैं। पडा वाचम ही बाल उठा शास्त्रीकी पहल हमसे निपट लो बादमें तिलकाजी से। इन्होंने जो अर्थ किया है त्रितुल ठीक किया है। मेरा तान पेदी गङ्गा स्नान कर चुका और मैं भा कर रहा हूँ पर आन तब मेरे मनका पाप नहीं गया। यात्रियासे नानायन पैसा रनेका लोभ न्दा। मुक्ति होना दर रहा, अत गङ्गास्नानसे शरीरका ही न कि आत्माका। विद्वान चुप रह

जैनधर्मता कहता है 'सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधानाचारिष्वनुक्ति' यथान् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमे युक्त सम्यग्चारिष्वमे ही युक्ति होती है। जब तक प्रतिपक्षी राग बैठा रहता है तब तक युक्तिही प्राप्ति असंभव है। देगा, छठवें गुणस्थानम जा मज्जिमन्ने तीत्रादयम होनेवाला राग मौजूद रहता है यही ना ज्ये प्रमत्त प्रनाये है और प्रमत्त होनेका फल ही शास्त्रादिर्षी रचना है। मैं तो भाग्या करता हूँ कि हे भगवन! मेरा आपसे ज्ञान विषयका राग भी नष्ट हो जाय ना मेरा भाग्य हो जाय। मैत्रा प्रमोद वाष्ण्यादि भावनाएँ भी तो इसी रागका फल हैं। 'दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मैत्री' दुःखकी उपत्ति नहीं हाना मैत्री है। यहाँ अभिलाषा उपायर्षी मद्दतामे हाती है जो कि संस्कारका भाग न हानर आस्तयका भाग है। ग्याली निजका संस्कारक अयिमात्र जायक हाता है परन्तु मरर परर नहीं होनेके कारण उससे लाभ नहीं। 'आस्रवनिरोध सरर' आस्रवका निरोध हो जाना सरर है। मनुष्यका कल्याण मनुष्यर्षी आत्माप ही होता है, य तो उसका निमित्तमात्र होत हैं। मनुष्य पर्याय पा लेना दुलभ नहीं परन्तु उमसे मनुष्याचिन काम ले लाता दुलभ है अत ऐसे कार्य करा निम्मे जीवन सफल हो सके।

( सागर २९-८-५२ )

६

संभ्रम धमका घणन महाराजने कर दिया और आप लागाने शांतिप सुन लिया। यथाथम समय ही आत्मरन्व्याण करनेवाला है। सब तरफसे चित्तवृत्ति खाचरर अपनेम तागना सा मयम है। मयमका तत्रण लिखत हए गाम्मत्सामग कह। ६—

'वदममिदिकमायाण दढाण तहिदियाण पचण्ह ।

धारणपालणणिग्गह्चागनओ सनमो भणिओ ॥'

अथान् अहिंसादि व्रतोंका धारण करना, सामांतर्योंका पालन

करना, कपायोंका निग्रह करना, मन रचन वायसी प्रवृत्तिका त्याग करना और पोंच इन्द्रियाका चय करना समय है ।

छद्दडालाम भा लिंगा है—

‘पटकाय जीव न हनन ते सगतिहि दरवहिंसा टरी’

रागादि भाव निवारते हिंसा न भावित अतरी।’

पटकायिक जीवकारका करना गो द्रव्य अहिंसा है और रागादि परिणामोंका अभाव जाना सा भाव अहिंसा है । जैनधम्म अहिंसाका उदा प्रिशा लक्षण कहा गया है ।

‘अप्रादुर्भाय खलु रागादीना भवत्यहिंसेति ।

तेषामेतेत्पत्तिहिंसेति जिनागमम्य सक्षेप ॥’

अर्थात् रागादि भावोंका उपन्न नहीं होना सो अहिंसा है । आन लोकम नो अहिंसा प्रचलित है । यह तो दया है अहिंसा नहीं है । जैन रागादिकी निवृत्ति है बड़ा धर्म है, दान देनेसे लोभका त्याग होता है इसलिये यम साध चारित्र है और चारित्र ही धर्म है । सम्यग्दृष्टि जीव चितनी प्रवृत्ति करना है उनका अशुभोपयोगका निवृत्तिके लिये करता है । आप लोग, अधिक् नहीं ता इतना ही नियम कर लो कि चितनी दर यों पंठे हैं उनका देरक लिये हिंसा परिणाम नहीं करगे ।

‘जिनक न लेश मृपा न’ अर्थात् जो रचमात्र भी असत्य भाषण नहीं करत है उनके समयमात्रन होता है । यथाक्रम भूठ ही क्या मंसारने मनस्व पापोंका मूल कारण रागाश ही है । एक मनुष्य स्त्रीको छोडकर साधु हा गया । स्वामे मनम विचारा कि इनकी पराश्वा तो रूँ कि ये सचमुच न साधु हुए ह या बनापटी । ऐसा विचारकर ह्वा उमरे पास पहुँची और तरह तरहके हावभाव दिखलाने लगा । भरमक प्रयत्न किया उसे विचलित करनेका पर यह विचलित नहीं हुआ । अत्र उसकी समाधि पूण हुए तो वाला



देवि । यह चीन तो स्वतन्त्र है चुना है जिसपर तुम्हारे दायभार का असर होता था ।

‘न जल मृण हू विना दीयो गह’ जो जल और मिट्टी भी विना दिय प्रद्वण नहीं करते हैं उनसे अचोय महाव्रत होता है । जब तक मनुष्य पर पदाथका अपना मानता रहता है तब तक उसका चाटुपन बढ़ा जाता है ? यह तो उसका पाम रहता है इसलिये चोरी पापमे बनना है ता परका अपना मानना छोड दो ।

‘अठदश सहस्रिधि शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रम रहें’ अठारह हजार शालक भेद हैं उठ जा धारण करते हैं उनसे ब्रह्मचय महाव्रत होता है । प्रेममात्र ब्रह्मचयका विधानक है । मनकी चचलता रागसे ब्रह्मचय व्रतकी रक्षा होता है । जिसन मनकी छुट्टा दे रखा है यह ब्रह्मचयका क्या पालन करेगा ? फलन लिखा है—

‘मनो नपुंसक ज्ञात्वा भार्यासु प्रेषित मया ।

तत्तु तत्रैव रमते हता पाणिनिना वयम् ॥’

संस्कृत व्याकरणम मनका नपुंसक लिङ्ग कहा है सा मने मनका नपुंसक समम स्त्रियोम भेना परतु यह रय हा रमण करने लगा । महवि पाणिनिन मुके चडा धाम्ना दिया । यदि वे अपनी व्याकरणम उमे नपुंसक न लिखत तो मे कैसे भेनता । मनका स्थिर रखतो और उसगतिसे वया । फिर ब्रह्मचय धारण करो सरलतासे उसका पालन हा जायेगा । ब्रह्मचयका महिमा अपरम्पार है । आभाना आभाम ल न होना सा ब्रह्मचय है । मनको यदि स्त्रियोम भेचने हा ता मन नपुंसक है और स्त्री शब्द खालिद । उनका मेल कैसे ग्यागा ? यदि पुरुषोम भेचत हा ता पुरुष शब्द पुर्विग है दानाका मेल कैसे रहगा । इसतिय मनका ब्रह्मम भेन दा गथात् ब्रह्मम लगा दो तो उनका भेत बन जायगा वयादि मन नपुंसक लिङ्ग है और ब्रह्म भी नपुंसक लिङ्ग है । समान समान दोगोका

हा प्रेम बढता है ऐसा प्राय देखा जाता है।

‘अन्तर चतुर्दश भेद बाहर सघ टशघा तें टलें’ जा चौदह प्रकारे अन्तरङ्ग और दश प्रकारक बहिरङ्ग परिग्रहमे दूर रहत हैं वहीने परिग्रहत्याग महात्रन हाता है। मसारम अनुभव करके दग्ग लो कि परिग्रहमे क्या सुग्य है? मुझे तो रचमात्र भी सुग्य नहीं मालूम होता। परिग्रह सुग्यनाया है यह लोगोंने पहचाना मात्र है। अधिय परिग्रहकी यात जाने ले एग मात्र लगोटीना परिग्रह भी दु ग्यदाया हाता है।

एग साबुके पाम लगोटी थी। उमे अकमर चूहा कतर लाया फरता या अत चूहा भगानेके लिय उमने बिह्री पाल ला। बिह्रीने लिय दृ-की आनश्यमता पडी अमलिय एग गाय रग ली। गाय थी उमना घचा था इन मररी दग्गभाल बोन करे? इसन लिये एग दामी रग ली, एग बार साधु किसी दूमरे गाँव जाने लगा। उमके मत्र पदाथ उसके माथ हा लिये। जत्र नक्षाम पहुँचा तो बर्ही दासी उमरा हाथ परडता है ता कइ बिह्री हाथ पकड़ता है और कहा गायना बड्डा पीछे लगता है। यह सत्र दग्ग साधु कतरडा गया और घोला यह मत्र दाप इम लगानीना है अत लगोटी छाड़नेम हा सुग्य है।

महाराजने सथम घमना घणन किया है। आप गृन्स्थ हो, मुनरर यों ही न रद जाथा। कममे कम मयमका इतना पालन तो अनश्य करे कि जत्र खारे पत्रम डमरा उचा आ जाय तब उसना मसग छोड दिया जाय, आनर मनुग्य कैसे निदय और दुष्ट हो गये हैं कि खीर पटम घरा आ जाता है फिर भा विपयाभोग करने जाते हैं। यही नहीं जत्रतब घचा मारना दूब पीनर पुष्ट न हो पाय तत्रतर म्नीका मसग न कए। इसप्रकार निर्णय और निजम्मा मतान पैदा कर समाज और देशना क्या भना करोगे? निम्नीना लीनर बढ रहा है, निमार्की औरें दु ग्य रहा है, थोड मुग्गामे मूल

रहा है फिर भा मतान पैना क्रिय हा जात हा । मिहनीके एक उवा हाता है, उमास व मुगस माता है और गर्धीके अनेव वच होते है पर चिन्गी भर उमे भार ही टोना पडता है । हम कपड़ेवाले हैं । हमारी ज्ञान न माना पर महाराज तो दिगम्बर ई उनका प्रभाव तो दूसरा ही हाता ॥ अत इ र्नी ज्ञान मान जाओ ।

यह पाँच महाप्रवक्ता धर्मे हमने आपसो बतलाया । सा महापता हा देव हो सकत र्नी मो ज्ञान नर्नी । अत्रना लाग मयमी भा ही न रहलाय पर मरनर देव तो हा मरते है । जैनधर्मके अनुमार अव्रता भी देवायुना बंध करत है । जय यहाँ शांति सागर महाराजका संत आया था, तत्र मैं भा उनके पास गया वा । महाराजन मुझमे कहा कि मुनि हा ना । मैंन कहा महाराज मैं चार बार पानी पीनेजाता दा जार भाजन करनेवाता निजल व्यक्ति र्नी स महान् भारवा कैसे धारण कर सकता हूँ ? तत्र उहाने कहा अभ्यासमे सत्र हा जायेगा । मैंन र्ना महाराज ! आज कलके मुनि मरकर कहाँ जावगे ? उहोंने कहा म्यग जावगे । फिर मैंने कहा एताक तुल्लक ब्रह्मचारी तथा अन्य श्रावक कहाँ जावगे ? उहोंने कहा स्वर्ग जावगे । फिर मैंने पूछा और महाराज य अत्रित सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ जावगे ? उहाने कहा य भा स्वर्ग जावगे । मैंन कहा ता महाराज ! फाकटम उष्ट क्या सत्र ? म्यग ता कैसे हा मिल जावगा ( हँसी ) मुनर महाराज हँस गय ।

कहनेका मतलाय यह है कि अत्रनी भा र्ना पर अथाय न ररो ।

( सागर ३०-८-५२ )

७

आनतप धमरा वणन है । 'इच्छानिरोधस्तप' उसका लक्षण है । तिमने अपनी उदता हुई इच्छायानो राफ लिया वही तपस्त्री

वर्ण प्रवचन

हैं। अष्टादश...

हा सो दा पर उपाय

विश्व...

कामरूपी रतु... इन दोनोंवा... है उसका सारनका।

। जहाँमे यो जनना ॥ने बडा ६ स्त्रियों चिपयमें ॥ दी ।

अथ काम श्री...

आवश्यकता नहीं। आज तक किमीका कहा कि अथमे-सग हा जाय फिर भा किमारा वृत्ति भाग करत हुए फलका प्राप्ति जाता है। इसमें मुग्य प्राप्तिके साधन प्राप्त करनेके लिये

। वह । एफ ई थी न यही देमा लाग आग ते हैं । , और न रुन्द न जुदी अध्यय ने होने र कैसे प है, सुख और

येन दृष्ट पर

ना परन... हैं एमा चित्तवन अतर क्या है? घन कम रहिन हैं। कालिमादिसे सहित दिन भगवान् भगवान् मममते ।

चि तयेत्' अतरे भी अतर न अपनम और इस कम सहित आर पय मोग



तो भगवान् है। निश्चित हजार रात दिन क्या माचत रहते हो ? सबसे हठकर अपने आपका दूखो। हम मुक्त जायें तो सब मुलट जाय। अपने आपका मुक्ताना ही सबसे बड़ा कठिन काय है। जो सब मुलट जाना है उसका तो प्रभाव ही विनाश ही जाता है। वह सब शब्दाम उद्र न कह तो भी उसका शरीरकी शांत मुद्राका दगकर स्मर ताग मुलट जात है।

लोभ और कपाय ( विषय और कपाय ) संसारको बढ़ानेवाले हैं। दृढ़ छाडकर संसारका बढ़ानेवाला और कोई नहीं। लोभ और कपायका रास लिया मो हा तप है। अनशा, ऊनोदर, वृत्तिपरि संख्यान, रमपरिहाग आदि तपके भेद हैं। इन्हें कोई भी कर पर कपायका अभाव न हा ता इतका करना व्यर्थ है। शुभध्यानकी प्राप्ति कपायके अभावमें ही होती है। प्रथम चरित्तरीधर नामक प्रथम पायक अवश्य कपायका सद्भाव रहता है पर मन्त्रलनका अत्यंत मद उदय रहता है। इसमें ध्यानमें बाधा पड़ती। द्वितीयादि भेदमें किसी भी कपायका सम्भाव नहीं है। ध्यान कपायके अभावमें होता है और कपायका अभाव चारित्र्य कहलाना है इसीलिये ध्यानको चारित्र्यका पथाय कहते हैं न कि ज्ञानकी। जिन्हें तप करना है व इतसे न डर निहम उपवास करना पता है। देखा, भरतका क्या उपवास करना पडा। दीक्षा लेनेके बाद अत मुहूर्तमें ही बेचला हा गया। भगवान् आदिनाथका एक वर्ष तक अनशन करना पडा। छ माहका बुद्धि पूयव अनशन था और छ माहका आहार न मिलनेमे हो गया। एक हचार वष तक तपस्या इन्हें करनी पडा तप रेवली हो सके परन्तु भरत अतमुहूर्तके भीतर बेचली बन गया। इसका यहा ता अर्थ है कि भरतके कपायका अभाव जल्दी हो गया और भगवान् आदिनाथके बाधम हुआ। इतना निश्चित समझो कि जब भा कल्याण होगा तब कपायके अभावसे ही होगा। आप लोग परिशदी जायें सो मैं

किमीका परिग्रह नहीं छुड़ाना। आप एक पाग जूने हा नें नें  
गंध लो और एक अंगूठी पहने हो सा गे पहिन लो प्रखण्ड  
छोड़ दो।

टीसमगतरा किस्मा है एक स्याका पति बट्टा ।  
लौकत बत्त बह सोना लाया। स्त्रीने बहा समझा बन्दूकें बन्द  
दो। पुरुषने स्याका अक्यानुमार बरनुरियाँ बनका नें। बने  
शौकमे अपनी सुताम पहिन ली। उसका रूखा वा किस्कि  
इह देखकर मेरी प्रशामा करें पर किसा खाने मन नके किसे  
कुछ पूछा भी न। पर दिन उमने अपने घरमें द्रा लाई।  
लोग बुभानेरा आये स्त्रियों भी ममबदनाइ किं बट्टे।  
बरनुरियाँ गता हाथ चलानी हुई सकक माय बत बत ग।  
स्त्रान न्सी भीड भागम पूछ लिया कि व दनुर्गुं ब न न के  
बडी अच्छी है। उनकर बह स्त्री वाला था ६ मिन्ट पूरे रंग  
वान पूछ लेती तो मैं घरम आग क्यों लाता (हैने)। नेने  
अपनी कपायमे ही ता उमने घरमें आग लाता। आप लोग  
भी तो इसी प्रकार अपने घरम अपनी बत्तने रत नि द्रा  
लगाय रहते हैं और न्से सतापमें रत नि द्रा बने रतने है।

रूप, रस, गंध, स्पर्श, धर्म, अर्थ, काल, और  
अध्यवसान भाव इनसे अपनेरा मित्र मन्त्रों। मन्त्रमारमें  
हुन्द स्वामान लिया है कि शास्त्र जुग रूई और ज्ञान हुदा  
चीज है शब्द जुदी चीज है और ज्ञान हुग नीत्र है। अर्थ  
मान भाव तुम्हारा नहीं है क्योंकि उ बरक निमित्तसे हुंने  
वाला एक प्रकाररा विचार हो तो है। विचारका ज्ञानस्वरु है  
समझा जा सकता है।

‘जीव एव एक ज्ञानम्’ अर्थात् यह एक ज्ञान  
क्याकि ज्ञानके साथ जीवरा अरि नद मन्त्र है।  
और वीथ भी आत्मासे अर्थात् कि ज्ञान है। परते

निजसे अभिन स्वस्वरूपका वा ध्यान करता है उमाने प्रव्रज्या मिद्ध होती है। प्रव्रज्या सन्ध्यासना कहत है और निजसे प्रव्रज्या जाती है वर परब्रानक कहलाता है। 'परितः सर्वांस्त्यक्त्वा यत्र जति स परित्रानक' अथान जो मन्त्रो छोड़कर आमाना ध्यान करता है वह परित्रानक है। क्षमा आदि दशों धर्म परस्परम एक दूसरम सम्बद्ध हैं इनम शमा धम प्रकट हुआ कि मादव प्राप्ति को धम अपन आप प्रकट हा जात है।

सुन्दर स्वामीन प्रव्रजनमारम 'कृता करण कर्म और ज्ञान य चार वात बतलाइ है मा सभा आत्मान परिणमनको लिय हुए हैं अत आभरूप हैं।

एक बात है जिसे आप सागरमालासे कहना चाहता है मनम हा करना, नहीं, छोड़ देना। जान यह है कि आपने यहाँ जितना रुपया मासिर खर्च होता है, उतने पैसा दानम दे दो। इससे आपकी सत्र संस्थाएँ बल मन्त्रा हैं बहो भाई। मंजूर है।

(-६-५२

८

ममय हा गया है। पडितजी न ( पं० दयाचन्दना ने ) आपक मामने अच्छा प्रियचन कर दिया और समगौरयार्जी न भी सत्रका सत्र उडेल लिया है। हम क्या कह ? हम दानक विषयम अपनी दुर्गी वान कहत हैं। वास्तवम जैतधमम त्यागक सिवाय दूसरा उपदेश ही नहीं है। सत्र प्रथम मिथ्यात्वक त्यागका उपदेश है फिर हिंसा आदि पापा, पचेन्द्रियार विषयों और क्रांति कपाया के त्यागका उपदेश है। त्याग पर पदावना हा ता हाता है। स्व घस्तुका वा क्या त्याग करगा ? पडित ठाकुरप्रसादजी व निजके पास में पढता था। व्याकरण और यदात दो विषयके आचार्य

थे। उनकी प्रथम पत्ना का दहात हा गया था जत ४० वर्षकी उमरम उनका दूसरा विवाह हुआ। उनकी यह स्त्री बड़ी उदार और शान्त प्रकृतिकी थी। उस समय पण्डितना आगरा कालनम प्रोफसर थे। वहाँमे ५०) मासिक उह मिलना था। व नम से अपनी स्त्रीको १०) मासिक देते थ। स्त्राये हाथम ( ) आये कि उमने पूरा पडोसम जो गरीब हुआ उसे बोट लिये। पण्डितनी का फिर १००) मासिक मिलने लगा तो व उसे २०) मासिक देने लगे। उह भी यह पहलकी तरह गरीबों का एक दिनम राट देती री। पण्डितना उससे कहते कि यह रुपये ता मैं तुम्हें देता हूँ तुम हमरानो बोट देती हा? पण्डितनी की बात सुनकर वह रहता कि आप आगिर मुझे दते हैं न? म जो चाहँ सो करँ। यदि आप न देना चाहँ ता न देय। पण्डितनी चुप रह जाते। कुछ समय बाद व जोधपुर महाराजने यहाँ चल गय और वहाँ (ह ५००) मासिक मिलने लगा। उनमसे व स्त्रीको १००) मासिक दन लगे पर वह पत्नीकी भाँति तो चार दिनम बोटकर रातम कर देता। एक दिन पण्डितनी २००) की बनारसी माड़ी लाय। स्त्रीन कहा यह किमके लिये लाये हो। पण्डितनाने क्या तुम्हार लिये लाया हूँ। तउ स्त्राने कहा यह मुझे शाभा नहों देना। यह किसा महारानीको शाभा देगी अथवा बश्याका। मैं ता एउ ब्राह्मणका लडका हूँ। २) की दुकड़ी ही मुझे शब्दा लागता है। पण्डितनाने कहा कि अब तो आ चुकी। इमका क्या होगा? उसने कहा, होगा क्या? किसाको ने तो। यह कन्कर उमन अपना नौरानीका ब्यापार दे ता। उह लेनेसे सचार्च ता इमन कहा सचानकी क्या जान है? इसे पण्डितना नना। पण्डितनीस कहा कि जाओ इमे १०) क राटम यापिम कर आओ। पण्डितनी यापिम कर आये। जनतर उसने उन रुपयोसे नौरानीको एक जमीन लुवा दी जिससे उसकी सता होने लागी।



घारे घीरे पण्डितनारी आयु ५० वर्षी हो गई और उमरी २६ वर्षी। उस बीचम उसने एक लड़का और एक लड़की उपन हुए। एक दिन पण्डितनी बैठे थे, उमने जाकर कहा। कहो पण्डितनी! क्या मना लना। आप तो पदात्तक आचार्य हैं, आपसे क्या कहें? आप ५० वर्ष हो गये। २ सतान पैदा हो गई अथ ता विषय सम्पन्न छाडा। पण्डितनी निम्नतर हा गय, उनसे कुछ कहते नहीं मना। उह जाकर पण्डितनारी गार्हम जा बैठा और वाली आप छाडा चाहे न छोडा, मैं तो धाड चुकी, आप पिता हैं और मैं पुत्री हूँ। पण्डितनाने प्रभावित हारर स्मरक पैर पकड़ लिय और कहने लगे—मां तुमने मरी अर्धे गाल दी। तुम धर्य हो। उम समयमे दानां ब्रह्मचर्यसे रहने लगे। २६ वर्षी भ्रान इतना त्याग हाना आश्चर्यम डालनेवाला है।

वास्तवम जा विषय कपाय छोड देता है वह मसारका कन्याम सर देता है। पर पदाथरु क्या छाड़ना? वह तो छूट हुए ही हैं। माचा त्याग अपन विपर्याया छोड़ना है। धन और ज्ञान दोनों एक समान हैं। धन पाकर जिसने दान नहीं किया उमका वन निरखन है और ज्ञान पाकर जिसने दूसरोंका ज्ञान नष्ट नहीं किया उसका ज्ञान निरथक है। इस वाम्ते इन पण्डितोंने जो व्याख्यान दिया उसे शरणकर विषयाभिगापारा छाडा, परिग्रहनी समता नूर करा। अनर पाप हैं लकिन सभसे बडा पाप परिग्रह ही है। यह मरने मन चंचल बना देता है। नसरी दशा गुड़ने समान है। एक घर गुडने माचा वि जा दग्रा उठी मुक्त मना जाता है यदि सूत्रा होता हूँ तो डलीम डली लाग मना जाते हैं, यदि बुद्ध गीता हा पाता हूँ तो पक्वान बनाकर लोग सरा लेते हैं और वहीं अधिय पतला हा गया—राय वनकर बहने लगा तो तमारु पीनेवाते गुडाख बनाकर पी जाते हैं इस प्रकार

तो मंसारमे जीना बडा बट्टवा है । एम्मा विचाररर रह परमेश्वरर सामने गया श्रीर वाला—भगवर आप ना मधरी रथा करन वा है । मैं भी मधम से एर ह अत मेरी भी रथा बरा, ना देखा घड़ी मुभ बट कर जाता है । गुडरी प्रायना मुनरर परमेश्वर चुप हा रह । पाँच मिनट रा गुडन फिर पूरा महाराज क्या आशा हाता है, रा परमेश्वरन पना जा भाग ना, तुह दग मेर मुँड में भी पानी आ गया (हँसी) । सा भैया परिप्र एमी ही चान है । मधम मनरो लुभा लेना है । अत एसा अभ्याम करा निमसे उमसे तुम्हारा सम्बध छूटे ।

त्याग करनेसे पाछे तुम्ही हाता पडे यह बात नहीं है । य ना बुन्दनानत मुतलागा है ? इनरा लङ्गीने एव बार नेनागिर नीम अचन्द्रा आग्यान दिया । मेरे पास और ता कुछ था नहीं एव चहर आठे ना बनी उतारकर उसे दे ली । शीतलातीसी रात्रिरा समय था । यह वाली यह क्या करत ह ? शीतका समय है आपरी रात कैम बटगा ? मैंने कहा कर जायगी आप तोंगे । यह कहकर मैंने चहर उसे दे दा । अब क्या होगा ? यह बिकल्प मेरे मनम नों आया । मैं धमशालाका अटारापर ठहरा था, ज्यों ही सभा स्थानमे अपने ठरनेर स्थानपर पहुँचा कि अयोध्याप्रसाज्जी दहलाम आरर बहत हैं घर्णीनी मैं आपके पासमे य चहर लाया हूँ । मैंने लेते हुए कहा कि जानका फल तुरंत मिल गया । इम हाथ दे उम हाथ ल । इसलिये देनेवालोंको य विकल्प नहा करना चाहिये कि देनेर बाद हमारे पास क्या बच रहगा । मैं नहीं रहता कि तुम लोग परिप्रहका त्याग कर दा । तुम लाग ता एव एरने उदल दो दो लपेट लो पर मैं कहता हूँ कि उनम जा मूच्छाभाय है—ममेद भाव है उसे छोड दो । यह ममेद भाव ही सचा परिप्रह है और उमने त्यागसे ही आत्माका सन्ध बन्ध्याण है ।

६

आग्निचय धमका रगत ना आपन मुन लिया । इहान  
 जनताया कि सप्रद्रव्य अग्निचन है । इमम यही सिद्ध हुना कि वां  
 निमा ना नहा है । न में आपका हू और न आप मेरे है । सप्र पत्र  
 अपन अपन स्वरूपम अवस्थित ह, सप्रचतुष्टयको छोड़कर कोड न  
 द्रव्य पर चतुष्टयम प्रवेश नहा करना । आग्निचय धमकी क  
 मदिमा है । विपापकार स्तात्र ना आग्निनाय स्तोत्र है उसमें धनरा  
 मठ कहते हैं—

‘तुङ्गात्फल यत्तदग्निश्चनाच्च प्राप्य समृद्धान्न धनेश्वराद् ।  
 निरम्भमोऽप्युच्यतमादिवादेर्नकाऽपि निर्याति धुनी पयोद ॥’

तुङ्गका अथ ऊँचा हाता है और पत्र भा होता है सा  
 प्रकृति धारक अग्निचन मनुष्यमे वा प्राप्त हो सकता है ।  
 सम्पत्तिशाला धनरामे उचर आग्नि प्राप्त नहीं हा म  
 दग्मो पद्मान ऊँचा है यद्यपि मरु पाम पानीरा अश भ  
 न्निपाई देना ता भा उसमे निम प्रसर नदियां निरुलता है  
 प्रकार समुद्रमे मरु भा नदी नहीं निरुलती । मतलब य  
 मनुष्यको उचर प्रकृतिना जनता चाहिये ।

है ? वा परना अपना मानना छोड़ है,

पर संगी और जा परनी अपना

छोडन चला । परना अपना ।

न तो यहाँ तक गिया है कि

मानता है यह

१७

पर्यन्त नों

। गय

निया । कल

२०

मात्र-भाषा

आदिये या किं हुद्र सस्थाओंके विषयमें करते। आप लोगोंका भी इनका विचार करना चाहिये या मालम चागाम परामहनार रूप्यों का रख है। उसे आप लोगो नो ही ता पूरा करना है। मोंगनेने लिये किमीना गहर भेजना य<sup>न</sup> तो मुझे पम<sup>न</sup> नहीं। अपना गौरव आपका रखना चाहिये। यहाँ पाँच हजार जैन हो। यन्ति एव एव आत्मा एक एव रोटी प्रतिष्ठित न न ता १०० विद्याप्रियोंका गल्याण हा जाये।

‘आत्मनश्चरुचक्रायमानत्वेन ज्ञान ही स्वरूप है। आत्मा म अय पनाशका समावेश नहीं है। उस और नाकमम नथ तर आत्माय बुद्धि है तत्रतर हमारा गल्याण नहीं हो सकता। हम पहिले किमीने थे, अब किमीने हैं और फिर किमीके होंगे यह कल्पना माहचनित है। माहच सद्भावम ही ऐसा कल्पना उत्पन्न होती है। जिस प्रकार स्पणनी स्पन्दता ही उसका निजका स्वरूप है उसा प्रकार ज्ञान गुणकी स्पन्दता ही उसका सय हुड है। मयूरादिनि निमित्तसे दपण मयूरादिनि आकार परिणमन करता है पर यह परचय दानेसे पररूप कहलता है उसा प्रकार आत्माकी स्पन्दता हा आत्माकी गिजकी चान है। उसका ना घण्टादि पना प्रतियोगित हाते हैं व पर हैं।

१०

महाराजका यारयान तद्वचयपर हुआ आपने श्रवण किया। मैं भी इसपर एक बात कहता हूँ। भद्रहरिने एक श्लोक लिखा है।

‘मत्तोभक्तुम्भदलने भुवि मन्ति शूरा’

केचित्प्रचण्डमृगराजगर्धेऽपि दक्षा ।

किन्तु व्रगीमि बलिना पुरत प्रसत्त

कदर्पदर्पदलने विरला मनुष्या ॥’

अथान् मदीन्मत्त हाथियोंक गण्डस्थल विदारण करनेम शुरू कर कितने हा मनुष्य हम प्रथित्रीपर हूँ । और कितने ही मनुष्य प्रचण्ड सिटके बधम दक्ष हूँ-समथ हूँ, विन्तु मैं बलवान् पुरुर्गोंके सामने चार दरकर यह कहता हूँ कि उदपके दपका नष्ट करनेम धरल ही मनुष्य शुरू हूँ । जिसन कर्पका दप दल दिया यह आगामी भयम पैदा नहीं होता । यह बठिन घात रहा है अभ्यासके सत्र समथ है । बतारान मनुष्य ही ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है, निजल मनुष्य इसका क्या पालन करगा ?

आपने क्षत्रशाहारा जीवनचरित्र नहीं पढ़ा । वह बड़ा मुन्दर था । उसे दरकर एक स्त्री उसपर गारित हो गई पर वह कैसे ? एक दिन क्षत्रशाल बन विहारर लिय गया था स्त्री भी वहाँ थी । अघमर दम स्त्रीन कहा कि मर इन्दा है कि आप जैसा पुत्र उत्पन्न करें । क्षत्रशाल उसके भावका समझ गया और भटसे घुटन टन उमक चुचुन थपन मुहमे देकर बढने लगा मेरा जैसा क्या ? मैं ही तरा पुत्र हूँ । स्त्रीका भाव उल गया ।

मेरा तो विश्वास है यदि ब्रह्मचर्य व्रत न हाता तो ममार ही दूज जाता । ब्रह्मचर्यका रत्नास ही समार त्वा हुआ है । समत-भद्राचारन गृहस्थोंके लिये रवदारसतोष व्रतका उपदेश दिया है । इसीका पालन कराते कराते सप्तम प्रतिमाम स्त्रीमात्रका भी त्याग करा दिया है । देखा, ब्रह्मचर्य की सात्वान् मूर्ति ग्यरूप महाराज आपने सामने बैठ गए हैं । नम्र मुद्राके धारक हैं । बालनके समान निधिनार हैं । आज ब्रह्मचर्यका दिन है अतः सत्रोंके स्वदार मनोप व्रत राना चाहिये ।

बाली भोक्षगामा पुरुष हुआ है । अपन वहाँ उमर का वृसर प्रकार है पर रामायणम क्या है कि जिनके अपन भाई सुमीरकी खाना अपहरण किया था अतः सुमीरके बहनेसे रामचन्द्रजीने

उसे युद्धम मारा था। रामचन्द्रजी प्रहारसे घायल होकर वाली कहता है कि, 'मैं तो सुग्रीवका घेरी हूँ आपने मुझे किस कारण मारा।' तब रामचन्द्रजीने कहा कि तुमने अपने अनुचरी बधूका अपहरण किया है इसलिये तुम आततायी हो और इसीलिये तुम्हारे मारनेम पाप नहीं है। कहनेका मतलब यह है कि परस्त्री सेवन महान् पाप है। वे समारम आतनाया बदलाते हैं।

ब्रह्मचर्यसे क्या नर्दा हाता? अन्य लाभ तो जाने दो मोक्ष लक्ष्माकी प्राप्ति भी इसीसे हाती है। मुझमें पृथ्वी तो जो विषय सुख चाहते हैं उह भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। अभी महाराजने बताया कि मनुष्य एक मन भोजन २० दिनम करता है। एक मन भोजनम एक तोला तैयार होता है। आप जेमे विषय मेवन द्वारा रोच-रोच नष्ट करते रहोगे तो क्या होगा? जेमे आत्मिर्ष्यो का तपेदिक न हो तो क्या होगा।

एक बार एकन लिखा कि 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वानमप्या कर्षति' अथात् इन्द्रियाका समूह इतना बलवान है कि विद्वानोंको भी आकर्षित कर लेता है। उसने यह श्लोक लिखकर एक ऋषिको दिखाया। ऋषि चमत्किर जाहर मठ बनाकर रहता था। बाला इस श्लोकम जो 'विद्वानमप्याकर्षति' लिखा है उसे काट दा। यह ठाक नर्दा है। लिखनेवालेने कहा अच्छा महाराज काट देंगा। अब जसने जाकर बहुरविणी त्रिया सीमरी और सोलन जपरी युवतीका रूप बनाकर दिनमे तान बजेके करान ऋषिकी कुत्रियाके पाससे निकला और वहाँ ठहरनेकी इच्छा प्रकट का। ऋषिने कहा कि तुम स्त्री हो। यहाँ स्त्रियों नहीं ठहर सक्तीं अत आगे चली जाओ। उसने कहा महाराज मैं अकेली अगला, रात आनेवाला है, जगलम रहों रहूंगी? यहाँ आपके आश्रय एक वृक्षके नीचे पडा रहूंगा। ऋषिने फिर भी मना त्रिया पर उह वहाँसे नहीं हटा। रात्रि हाने

पर ऋषिने अपनी दुनिया का मासक नीतकमे रू कर ती । उम धुग्ग्ने भी राहमे माकर तागा ती । जर मध्यरात्रि हुइ ती उस स्त्री उपगारी पुरुषन शृद्धारक गाना शुरू किय । रूप तो ऋषि महाराज तिनका दग्ग ही चुके थ । उमक हाथ-भाउ भी उनके मनम जमे हुए थ । गाता गुाकर उनक मासक कामभाउ तागृत हो उठा । बोन, पेडा मासक ग्याला, मुझे पेशाउ जाना है । यह बाला, महाराज, मैं यहाँ अकती अकता आपका क्या विश्वास ? मेरी यहाँ कौन रक्षा करेगा ? आप अपन ठाकरम पेशाउ कर तीजिय, सगरे फर देता । अ तम ऋषि छुपर ताडकर उमके पास आ गय । तव तव उमन स्त्रीका उप हटा दिया था और अपने पिछता रूपम प्रकट हाकर महाराजका रू आरु दिग्गया और पृढा कि इसमेंमे 'विद्वान्ममप्यारुर्पति' अश रने दिया जाय या हटा दिया जाय । ऋषि तात उता, उस सुवण अशरोंम तिग था ।

उहनेका तात्पय यह कि यगपि अद्विया बतयान् अवश्य है पर अभ्यामसे इह जीता जा सकता है । यदि कोई नहीं जीत सक तो मासकाग हा कैसे चल ।



दैनन्दिनीके षष्ठ





अद्वैतिका पृष्ठ

शोरलगाता ही  
कात व्यय कर

### दैनन्दिने

आनन्दरिन्दो श्रुति मन्त्रो  
से किमी भा वाक्यान्दिने  
हागा। जैसे श्रुति  
संसारके सायक ह। मे  
में स्वकाय परिचि ह  
जाना हूँ।

मवमे सुमा यन्त्रो  
करा। एना यवन  
इसवा जभिदाय न  
अभिदाय न दा। तनकी  
नय अनुमित नहीं ह।

लोकिक वचन  
मनमे न रिक्त  
का शरा भा ह

समागन्तु  
गिनितिक  
जाग है।  
। पौन  
व तव म

सायक १० )

सर्व हो जाता  
पाई चति नहीं।  
तु उसमे पुण्यकी

सायक ११ )

साय यह है जा  
सपर हम ध्यान  
और उमर। मूल  
में सप्रहम एक  
य नहीं हों, यह

सायक १२ )

मने अतरगमे  
वे दु ग्यात्मन  
पना हा इन  
। दु मरा

१३ )

ताना  
की

मरुता । जहाँ असाधुता है, वहाँ राग द्वेषनी सन्तति निरन्तर स्वर्गीय प्रभुत्व स्थापित किए हैं ।

( पौष शु० १५ )

सबसे प्रमत्त रगनरी चेष्टा, अस्मिन् कमल उत्पन्न करनेकी चेष्टा है । अपनी परिणति स्वच्छ रगो, समोच करना अन्धा नी ।

( माघ कृ० १ )

आज भागुन्दयसे यह प्रार्थना की, ह गुरुदेव । अब तो मुमागपर लाने । आपकी उपासना करके भा यदि मुमागपर नहीं जाए, तो क्या अक्सर मुमागपर आनेरा आवगा । गुम्दव । अभा तुमने गुरुदेवकी उपासना नहीं की, कबरा गल्पयादमें तुम्हारा चेष्टा है । हम तो निमित्त हैं, तुम्ह उपादानपर दृष्टिपान करना चाहिए ।

( माघ कृ० २ )

काका मरारा राना उत्तम नहीं, सद्गुरु निन्ना ही कल्याण करनेवाला है । पचास्तिवायम श्रीयुत बुन्दुन्द मरारावन यहाँ तक लिगना है जा आत्मन मसार प्रथमसे छूटना चाहता है, तब श्रीनिनेद्रका भक्तिनो भी त्याग दे । यह औपचारिक व्रत है, निम समय यह जाय सम्यग्दृष्टि हा जाता है, शुभ और अशुभ वार्योम मरारी उपादय बुद्धि नहा रहता । करना नी चान्ना, करना पडता है ।

( माघ कृ० २-४ )

निष्पत्ति ही कल्याणरा भाग है, अतता गररा यही शरण है । पर पदायरा सम्प्रथ छोडना हा शांतिरा भाग है, शांतिका उपाय अन्य नहीं । शांतिका भाग निरन्तर दृष्टि है ।

( माघ कृ० ० )

जैसे हमारी नष्टि परका और है, वैसे अज्ञानको और लगाना ही कल्याणका मार्ग है। लाल परको चिन्तनो अदना कलक व्यय कर देत हैं।

( भाव कृ० १० )

दान करना उत्तम है, परन्तु मदिने परममान सत्र हा जाता है। जैनधर्ममें लानका विधि है आत्र नान देनेन कोटे कुनि नहीं। पर पदायसा जत्र चाह त्याग सकता है। परन्तु उन्मै पुण्यकी आशा करना अन्धा नहीं।

( भाव कृ० ११ )

समारम शान्ति सत्र चाहवे है। नमका मूल ज्ञान न है जो अशांति हाता है, नमका मूल कारण क्या है नमपर हमें ध्यान दना चाहिए। अशान्तिका मूल कारण अभिजापादे और नमकी मूल जननी पर पणार्थोम आर्मीयता है। पर पदायकी संयद्म एक अपना नपयाग पैसा दते है। निम निम हमारे ये नहीं हैं, न ज्ञान हो जायगा अनायाम यह मिट जावगा।

( भाव कृ० १२ )

यमण्डलुपात्री परमायमे उहा रम्य सकता है, निमर अतरगम समारम भीस्ता हो। भीस्ता नम हा मरुती है, ना इमे दुग्धात्मक सममे। टु मका कारण परमायमे पर नर्ग, हमारा कल्पना ही नन पणार्थोम निनत्र मान दुग्धकी जननी जन नाती है। टु मका कारण रागादिह है।

( भाव कृ० १३ )

शांतिना मूलमत्र अतरगरी कल्पना न हो। कल्पनाना कारण पर पणार्थोम ममत्य बुद्धि है। ममता बुद्धि ही ससारकी जननी है। नत्र पर पदायार्थोम आत्मीय अंश भी नहीं, तब उसमे राग करना व्यय है। परन्तु यह भी गर्तम पडता

हैं। हमसे दूर करना यज्ञ करा।

( भाष ७१ १४ )

धर्म क अथ मरता परिणाम ही कारण है। मरलतासे तात्पर्य परिणामार्थ पर पत्थार्थमे चा राग द्वेष होता है यह नहीं होना चाहिये। यह बात क्या है? जत्र परम निवृत्त्य कल्पना न हा। निवृत्त्य कल्पनामे ही अनुकूल और प्रतिकूल भाव होते हैं। जहाँ स्वर्गवश अनुकूल पत्थ हुआ धर्म राग और प्रतिकूल हुआ, उहाँ द्वेष ही जाता है।

( भाष ७० ३० )

आत्मनश्चर्या यथाग्रता प्रत्येक व्यक्तिय होती है। परन्तु चर्या अनुभूतिमे चञ्चित रहत है। इमरा मूल हेतु हमारा अनादि कालमे परानुभूति ही है। यद्यपि परानुभूति हानी नहीं क्योकि ज्ञानमे स्व प्रयायनाही मरदन जाता है। किन्तु हमारे मिथ्याचर्या चर्या प्रबलता है, जो हम स्व स्वरूपसे चञ्चित रहत है, परन्तु ही निवृत्त भाव रह है।

( भाष ७० १ )

शांतिना मार्ग स्वाधीन है, इम प्रतिष्ठासे नहीं मिलना। प्रत्येकमे मिलता है।

( भाष ७० २ )

धारतयम आत्मा एकाकी है, परन्तु सम्पर्क ही उसकी चङ है। दुःख क्या है? जो जाना प्रसारकी इच्छा है, उहा इम दुःखी स्थिति है।

( भाष ७० ३ )

शांतिना आस्था जाज तक नहीं आया, इमरा मूल कारण अविश्वी पदार्थाम नमयता है। हम ब्राह्मण व्यागनमे असमथ है, और श्रमाता आस्था चाहते हैं। यह अमम्भव है। सरकार निमन

वनानसी आश्रयना है। हम आज तर ना ससारमे भ्रमण कर रह हैं, इसका मूल कारण अपनेको अनात्ति मन्कारने न यागनेका है। कुट्टन है।

( माघ शु० ७ )

आज भारतम नवान विधान लागू आगा। श्रोयुत महाशय रानेद्रप्रनादनी विहारनियामा इसर मभापति हांग। आज भारत का स्वतंत्रता मिली, परतु असरीरथा ता निमल चारित्रस हागी। यदि हमारे अविनारी महानुभाव अपरिमन्कारका अपनावें, सरल रातिमे स्र परका भला कर सकत है।

( मा शु ८। ७ २६ जनवरा )

विना स्वार्थके कोई भी मन्शय इष्ट पदायके अधिनारी नही। स्वार्थसे तात्पय निव स्वभावका है। अनात्तिमे हमारे साथ शरारका मन्वध है। शरीरको हा हम निव मान रहे हैं, निरतर इसका रथामें आत्माय शक्ति लगा दते हैं। यत् लड है, असर पोषण शापणसे आत्माका न त्ति है और न अन्ति है।

( माघ शु० ९ )

विनने ध्यान पर तृष्टि दा जनन समार वचनका कोटा। समार वचनका कारण चित्तका व्यमता है। नही चित्तकी व्यमता है, वहाँ अनेक प्रसारक पदायका विरन्प रहता है और वह विरन्प रागादिस तूपित रहता है। मनम पदाय आज, इससे कोड चति नही, परतु उमके साथ इष्टानिष्टका रन्पना रहता है और यही विष है।

( मात्र शु० ११ )

शाक्तिका भाग न ता पुस्तकाम है और न ताथयात्रादिमे है और न सत्यमागमादिम है और नकेवल दिग्गाराके याग निराधम है, किन्तु कपाय निप्र पृचन सब अपमथाग है। मरा यह श्रुदल

श्रद्धा है। श्रद्धाका यह शक्ति है, जो उसने साथ ही मभ्यगन्तान हो जाता है और स्वानुभावात्मक विन स्वरूपम प्रवृत्ति हो जाता है।

( भाव गु० १२ )

यह नष्टिपे लान प्रभावना चान्त है, प्रभावनाका जो मूल तन्त्र है, यह घटत दूर है।

( भाव गु० १३ )

। हम विन परिणति पर ध्यान नदी दत्त, इससे तुम्हारे पात्र हात है। तुम्हारा मद्राप अपना भूलसे ही है, आन तन भूलका कारण परमो हा निन जाना। मुग्धमे तो पाठ सब पढ़त है। परनमें क्या पर है ? परके उपदष्टा अनेक हैं। आप चाह गतम पड।

( भाव गु० १५ )

मोक्षमागके उपदेश न और मुने, परंतु उनपर आरुढ नहीं हुए और न हमरी चेष्टा ही है। आदिनालसे सस्कार परम निजत्व कल्पनाका है, वर कत्र दूर हो ? गसी कत्र करनेसे उसका दूर होना कठिन है।

( फाल्गुन कृ० १ )

समात्तम बात तो यह है, जा किसीके चक्रम न आय। चक्र ही भ्रमण करनेका मुख्य कारण है। मनुष्यासे स्नेह करना ही पापका कारण है। संसारका मूल कारण यही है, विड संसार बधन उन्नेष्ट करना है, उनको उचित है परान चिन्ता त्यागें। परका चिन्ता करना मोहा जीवाका कतव्य है।

( फाल्गुन कृ० २ )

कोई भी परके विषयम भलाट बुराई नहीं सायता। आत्मीय कपायके अनुकूल ही प्रवृत्ति करता है। इस प्रकारकी प्रवृत्ति ही संसारकी है। विशय उदापाहकी आवश्यकता नहीं।

( फाल्गुन कृ० ३ )

आ मारी परिणति दरने जाननेकी है । उसमें इष्टानिष्ट कल्पना जा हाती है वहाँ समारकी जड़ है । निरसो मंसारना अत करना है व परमे आत्मीयता त्यागें ।

( पाण्डुन ४० ४ )

स्वाध्यायना फल स्त्र रूद्रिण आत्मविषयक अध्ययन निमम हा अथान् स्वरा परसे भेदज्ञान हा नात्र । यहा कारण स्वाध्यायमे मंत्र और निररा हाती है । आगमाभ्याममे उत्तम मोक्षमागम अन्य सहायक नहीं ।

( पृथ पाण्डुन ४० ८ )

महता आश्चर्यता विगुद्धिनी है, जिना भेदज्ञान विगुद्ध परिणति हाता टुनिरा है । भेदज्ञाना वाधक परपदायम निरव कल्पना है । भेदज्ञानक हानम सर्वसं मुख्य कारण आत्मीय ज्ञानना अपनाना चाहिए । जैसे हम घटपटादिक पदार्थाना जाननम मना वृत्ति रगत है, उमी प्रकार आत्मज्ञानम चेष्टा करनी चाहिए ।

( भिड पाण्डुन ४० ११ )

उपदेशना फल ना यह है, जा परलोकमे अथ प्रयत्न विद्या जाव । जा मनुष्य आत्मतरयका यथाधतामे अनभिज्ञ है, व कदापि मोक्षमागम पात्र नहीं हा सकते ।

( फाल्गुन ४० १२ )

प्राय चर्चाका विषय यही रहता है, जा सम्यग्दृष्टि सुदयादिका पूजन कर सकता है या नहा ? निष्कप यहा निकला, जा नहीं कर सकता । तथा प्रमाण भी दिया—“भयाशालेहलोभाच्च०”सम्यग्द शान तो यह वस्तु है, जा अनन्त मसारके बधनासे जुडा दता है । यह क्या कुदनादिकोंकी सेवा कर सकता है ?

( फाल्गुन ४० २० )

मेरा ना यह विश्वास है, जो वक्ता है यह स्वयं इससे प्रमायमे



नहीं आता। अथवा प्रभावम लाता चाहता है। यह महती श्रुति प्रवचनरचाम है, एक हजार वक्ता और व्याख्यानवानोंम एक ही अमल करनेवाला हाहा कठिन है।

( वाल्गुन पु० १ )

कषाय करना अत्यन्त हय है, उमे त्यागना चाहिए। परन्तु यही कठिन है कारण अनादि की घामना रठिा है।

( वाल्गुन पु० २ )

मत्र मनुष्याः धमका आसत्या रहता है, अपना उ र्प भी इष्ट है, परन्तु मादः नशाम अथे की मी नशा हा रही है। यही अन्व्याणरा मूल है।

( कृष, वाल्गुन पु० ४ )

मिलना ही घमना जनः है। ना जागा धधनसे मुक्त होना चाहता है, उमे उचित है कि परपत्याथारी मगति छाड़े। द्वादशाग ( श्रतज्ञान ) शास्त्रना अन्तिम ँदेश्य परमे भिन्न अपनेसे जानो गपराःमे सुरश्रित रहा।

( इटावा, वाल्गुन पु० ७ )

आनसे अष्टादिका पत्रना आरम्भ हागया, यह महा पर्व है। इस पर्वम देवगण ँदीःपर द्वीप जात हैं। ँर्हापर वायन चिनालय है। मनुष्योंना गमन यहाँपर नहा। देवगण ही यँपर जाते हैं। मनुष्य चाहे त्रिगाधर हों, चाहे ँद्विधारी मुनि हा ँनी जा मरते। किन्तु मनुष्योंम यह शक्ति है, जो मयमाशना ँदृणःपर ँथोंरी अपेःना अमरःपगुणी तिनरा कर मरत हैं।

( वाल्गुन पु० ८ )

समारके चक्रम जीव उलभ रहा ह। आःपर, भय, मंथुन, परिग्रह, इन सज्ञाओंके आधीन होःपर आःमीय स्वरूपसे अःपरि चिन रहता है। आःमाम ज्ञायःशक्ति है, जिससे यह स्वरःपरको

जानता है। किन्तु अनादिमालसे मोहमदका ऐसा प्रभाव है, जो आपापरकी जगतिसे वञ्चित रखता है।

( फाल्गुन शु० ९ )

ससार एक अशांति का भण्डार है, इसमें शांति का अत्यन्त अनादर है। वास्तवमें अशांतिका अभाव ही शांतिका उत्पत्तिकर है। अशांतिके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत व्याज्ज है। अशांतिका वान्याय है अनेक प्रकारकी इन्द्राएँ। वही हमारे शांतिस्वरूपमें बाधक हैं। जब हम किसी विषयकी अभिनापा करते हैं, आलित हो जाते हैं। जब तक इन्द्रित विषयका लाभ न हा, रुग्नी रहते हैं।

( फाल्गुन शु० १० )

दुःखका धारण हय विपात्त है। हय विपादका मूलकारण ममता भाव है।

( फाल्गुन शु० ११ )

जा मनुष्य शांति चाहत है उह उचित है जो परजनोर ससगसे मुखिन रह। परके संसगसे बुद्धिम विचार आता है। विकारने चित्तमें आनता होती है। जहाँ आकुलता है वहाँ शांति नहीं। शांति विना मुख नहीं। मुखने अर्थ हा सर्व प्रयास मनुष्य करता है। मेरा तो यह विश्वास है, शांतिमें अथ ही चितने उपाय किए जाते हैं, बाधक हा हैं। उपायोंसे दूर रहना हा उपाय है।

( फाल्गुन शु० १२ )

जिन जीवोंको यह निश्चय होगया जा मैं परसे भिन्न हू। वह कदापि परक संयोगमें प्रसन्न और विपादी नहा हा सक्ता। प्रसन्नता और अप्रसन्नता मोहमूलक है। मोह ही एर ऐसा महान् शत्रु इस जीवका है जो उसीके प्रभावसे यह चौरासा लाख यानिम भ्रमण है। अत जिहें यह भ्रमण इष्ट नहीं उह इसका त्यागना चाहिए।

( इटावा, फाल्गुन शु० १४ )

नो प्रतिज्ञा लो, उसे आदरसे पालन करा। अल्प भाषण करो, परका तुच्छ मत मागा। मय आत्मा अनन्त गुणाने पिण्ड हैं। ऐसा प्रयास करो जो ज्ञानम वह पदार्थ प्रतिभासमान हो। उमम राग-द्वेष मूचर आत्माय कल्पना नहा। परम निरःशुद्धी कल्पना ही राग द्वेषकी जड़ है। रर तो जा करना है अथवा वह गति हागी जो मंसारकी होती है।

( फाल्गुन शु० १५ )

समागममें सुख नहीं, सुखका मूल निरत समागमम है। गकारकी आत्मा हा सुखका पात्र है।

( धैत्र शु० १ )

मनुष्योंके सम्पन्नम अनेक अनुचित परिणमन होते हैं। प्रथम ता परम ममता होता है, क्यावि अतः परम निरत कल्पना हो जाती है। फिर वही व्यक्ति यदि विरुद्ध हुआ, तब द्वेष हो जाता है। द्वेषका कारण अरुचि परिणति रागसे द्वेष और द्वेषसे राग हो मरता है, जा पदार्थ आन इष्ट है।

( धैत्र शु० ५ )

धमका मूल रागण निरीहवृत्ति हैं। परसे अपना महत्त्व चाहता आगासे पिपासा शांत करनेकी इच्छाके तुल्य है। जिमने आत्माके साथ स्नेह किया वे ममारसे पार हो गए और जिसने परसे स्नेह किया व यहीं रहे।

( धैत्र शु० ६ )

निससे व्यवहार बोलनेका करते हा व मूच्छाके कारण हैं। मूच्छाका त्याग ही व्रत है। निस आगमम माथ अभिलाषाको भी कमबन्धका हेतु माना है यहाँ अथ आकाशा स्वयं स्याज्य है। परिणामाकी स्वच्छता ही मंसार समुद्रसे पार होनकी नौका है। दुःखमय जगतसे रक्षा होनेका उपाय अनासक्ति है, अन्य उपाय नहीं।

( धैत्र शु० ७ )

प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा, तथा परसे चक्रम मत आया। अपना म्वाध्यायम मन लगाओ, इन गणपाठकरि साथ व्यवहार द्वाइ दो। वर तब अपनेसे दृढ़ न बनाओगे, इन व्यवसे व्यवहारमें आत्माका पतित भागमे उलझा दोगे। फिर सुभाग प्राप्ति अत्यन्त कठिन हो जावगी। बहुत जानम यह विषय मिला है इसे शोभी न गमा दो।

( क्षेत्र शु० ८ )

शिथिलता ही संसारमें पतनका जवनी है। जहाँ शिथिलता है वहाँ मातृभागका प्रभाव आपसे आप शिथिलतारी ओर चला जाता है। गेहूँकी राशिम नीचेमे एव गुट्टा गेहूँ निरातिष्ण तेरा ऊपरसे गिरन लगोगा।

( क्षेत्र शु० ९ )

भूलका कारण आनवल भोतिरपाका प्रचुरता है। मय जनता चापाव मतभाटा आश्रय ले रही है। जो दया मो पराया धन लेना धना वननसे प्रयत्नम है। गृन्स्थभाग ता इमा परिग्रहमे चल रहा है।

( क्षेत्र शु० १० )

चित्तका चित्त म्वात्मचित्तनमे दूर है यह मनुष्य इन व्ययमि नमय रहते हैं तथा जनता उनकी सहायता भा करता है। पर साथर रमिर प्राय इस कालम प्रिल महानुभाइ हैं। ना है न भा इतर मनुष्योंके चक्रम आ जाते हैं। और नाना प्रकारकी सामग्री मय करनेमें बुद्धिका दुरुपयोग कर 'पुनर्मूषना भव क आग्यानको चरितार्थ करनेम दृष्टान्त बन जात है। निवृत्तिभागमें राय परिग्रहकी आवश्यकता नहीं। अत बुद्धिसे अर्थ यह बाह्य परिग्रहका त्याग ही कारण है। औपचारिक कारण है, इमका भी मुख्य न समझना। जहाँ यह व्यवस्था है जहाँ बाह्यको समग्र कर

निवृत्तिमागंश। निदिदि मानना परम असाउना हं ।

( धर्म सु० १० )

जैनधमका मम अत्र प्रतिदिन काम हाता जाता हं प्रायः  
मनुष्य शुद्ध भावना करतावा नही छ और नो हं य भी गण्य  
हं, अस्तु य वना भी माहर्षी हं ।

( धर्म सु० ११ )

मात्तमाग उमाह हाता हं, जा परका चिंताम दूर रहना हं ।  
पर चिंतातुर धममे दूर रहता हं ।

( धर्म सु० १५ )

आन यहाँ कमेला हुड परतु हुड्य हुआ गरी, वेयन परस्पर  
मनोमार्ताय ही तत्त्व निरला । यहाँ पर भी धनराताी विषया,  
जा रि श्री स्वर्गीय ज्ञानचद्रना र्णा धमराता हं, अपना द्रव्य  
७५०००) विद्यालयमें देना चारती हं, किन्तु द्रव्य धारण विनश्य  
हो जाता हं । नाता मनुष्य जानामता हं । परोपकारम प्रथम ना  
प्रवृत्ति नहीं होता । यदि पाई परता पाह तय उमम रोरा अटपाने-  
वाल बहुत हा चाल हं । अस्तु, हम स्वयं अपनी परिणतिका  
पवित्र रत्नमेम अक्षम हं । पर छोड़ा श्री पूजा स्वर्गीय चिरौजा  
माताने पुत्रसे अधिक पाता । परोपकारकी भावना भी उतरी ग  
यी । वेया इमना भता हो जाय हमने अर्थ हाता अपना मयस्य  
लगा दिया और यह भी शिक्षा दी रि “वेदा । आत्मन्याणके  
अर्थ किसी संस्था या संगमे न पढ़ना, अथवा पढ़तापगा । आत्म  
द्रव्य स्वतन्त्र हं, अनादिसे माहने द्वारा परतो आभाय मान  
अनंत यातनाशोका पात्र बन रहा हं । अत मरसे प्रथम तो इस  
आत्मीयमाधयो जो परका आत्मीय भावता हं, त्याग दे ।  
धमाम् जो शक्ति अनुसार धन त्याग मागम चेष्टा पर । केवल  
लोक प्रतिष्ठाने अथ त्याग मत पर । यदि लौकिक प्रतिष्ठाने अर्थ

त्याग है तब यह निश्चय कर जो अभी मैंने अपने स्वरूपको नहीं समझा। मुझे यह विश्वास है, जा मैं सरल हूँ, अतः मेरी बात मानेगा।”

( वैशाख बदी १ )

मर्त्य सत्र देखा, पर आपस आप न देखा। ससारको कल्याणका पाठ पढ़ाते, शाब्दिक जालसे निरंतर पुरपार्य करनेमें सर्व शक्ति का अपव्यय करते करते यह जन्म दीता जाता है। परन्तु एक मिनटके महान् भाग कालको स्वात्महितमें नहीं लगाया, इसी पर यह अभिमान जो हम लुढ़क रहे। लुढ़क ही तो रह, आप शूद्रोंकी यही श्रा होता है।

आगमकी आज्ञा तो मुख्यतया निवृत्तिमागके अप्रमत्त बनो, यही है। हमलोग जा काम करते हैं, लौकिक प्रशंसाके लिए ही करते हैं। शरीरमें निवृत्त्यनुद्धिका कल्पना ही इसका मूल कारण है।

( वैशाख कृ० ४ )

अपना ज्ञायन परिणति निम्न करना चाहिये। परमे ममता भावको कर निवृत्तका मूलना यही ससार अधनका प्रथम प्रयास है। इस हीसे अखिल उपद्रव होते हैं और यही अनर्थाका मूल कारण है। इसीके प्रतापसे आन समारम त्राहि त्राहिका आवाज आ रही है।

आन शास्त्र प्रवचनमें मेरे मुखसे असंभ्य शब्द निम्न गया कि दान देनेवाले भी लुटेरे हैं और लेनेवाले भी लुटेरे हैं। यद्यपि यह शब्द कटुक है, परन्तु अंतरङ्गमें, जब सत्र द्रव्योंकी सत्ता पृथक् प्रथक् है तब तब द्रव्य चेतना गुणका पिण्ड मात्र वस्तु है और धनादि द्रव्य तब स्वरूप भिन्न हैं। जब उन दोनोंका सत्ता भिन्न भिन्न है तब जा जा उसे निव माने यह मिथ्याज्ञाना

हे तथा परमात्मने चक्रे हे । पमरा अकार मगडा हा ना  
 प्रण । बरना हे । तदि समका र ग्या मर [ - तद द्दुम्य धी र म  
 अगावा हे " और विम । त र । त्या अम । निवृ प ही मा मला  
 अगाव् नि नताय पुन पाया । मर ही मकरा दुता वीर निवृ  
 पुमका च पुमाव । वी ५४ मकराका कपुम, व अवा कुला दुला ।  
 और विमर ह म अदगा दिना, अम । प्रणम ता २, पर ड्रु-का  
 म्यामा माता निर वमगा कुडि५ पमर हा हमने कमरका वि तावर  
 मकरा दता वी हा पला का । अम । मला मर वि५ म हे वि म  
 मर मादक अगम हे । म वि५४ का मर व हे । म मीतरा  
 मुन हाता वर [ - मर विमलयेका हाड हा वा वहा मर मर  
 माभाराम हे ।

( विमल वृ० ५ )

विमलनिहा विमर वम । वि मु भवन परि उ हा । अम  
 मीरही मर व हा । ममभारामा मा कलिादमे पावम व हा ।  
 मर गुमरा भी अतुवादय माता हे, मर मरवही मरनि । वरवीव  
 अमममका अयवाम मी । मरभाराम पर वदा म अममवाम  
 हाती मी वरगु उमर मात कममर अंग हे व काव हे ।  
 मरि कगाव अर व म मर मर मर मर मर विमर म वदा  
 पाव हा मार ।

( विमल वृ० ६ )

गुहसे ता पम वा आयुम वृद्ध हा प्राम मर व व । म पम  
 उम हे वा मार, वारिप्रम वृद्ध हा । विमरा अरिप्र विमर हे  
 मर पराववार परमरता हे । आगारवी परिमनि मर मर दता हा  
 मंगारको निमू । मर वी । हे । विमर मर अर वरि मी मी  
 वरि मर अनुमनि मंगारव तु मका पाव हे । म मर मर मर मर  
 हीम हाता हे और आय हीम मरका विमर हा मार हे । मर पर

सापन्न पयाय हैं, यह निमित्तकी अपेक्षा कथन है। उत्पत्तिना मूल तो स्वयं है, किन्तु इसमें माहादि अनेक कारण कलाप चाहिए। इसीसे इन भावाको परजन्म क्या है।

किमीके सहवासमें रहकर आत्मकल्याणना पाना असम्भव है। माह नाम ही जूटनेका है। अथान केवल जीवनी अवस्थाका नाम ही मोक्ष है। आत्मार्की शरारके माय जो पचना है वही मसारकी जननी है।

( वैशाख कृ० ७ )

मर ही मनुष्य स्वार्थी है, तब तुम भा स्वार्थी हा। जीवका स्वभाव ही स्वाथानुरूप होता है, तब तुम क्या इससे यक्षित रहते हा ? क्योंकि जब जावना स्वभाव यथाथ है, तब इसमें कोई भी शङ्का मत करो।

( वैशाख कृ० ८ )

द्रव्यका सिद्धिसे चारित्रका सिद्धि होता है। अथान जिसका द्रव्यका सम्यग्ज्ञान होता है वही आत्मा सम्यग्चारित्रका पात्र होता है। तथाहि—‘न हि सम्यगव्यपदेश चारित्रमज्ञानपूर्वकं लभते ज्ञानानन्तर चारित्राराधन तत्मात् ।’

स्वामी समतभद्राचायन भा कहा है—

‘मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तमज्ञान ।

रागद्वेषनिवृत्त्यै चरण प्रतिपद्यते साधु ॥’

इससे यह सिद्ध होता है कि चारित्र धारण करनेका पात्र सम्यग्ज्ञानी ही हो सकता है। अतः ‘प्रवचनसार’ क चारित्राधिारम प्रथम ही लिखा है। “द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः चरणस्य सिद्धौ द्रव्यस्य सिद्धिः”। पहले तो तात्पर्य यह है,



जो द्रव्यका मध्यस्थान होनेपर ही यह चीज चारित्रका अङ्गीकार करनेका पात्र होता है । और चारित्रकी सिद्धि होनेपर द्रव्य मोहादि चार घानिया कर्मोंक अभाव होनेपर तिल्लुल निष्कलं होनाता है ।

परमार्थमे दग्गो तत्र उभयभावी मोहने अमायम आत्मा निमल होता है । प्रथम तो लिखा है कि द्रव्यकी सिद्धि होनेमे चारित्रका अधिकारी आत्मा हाता है । इमका भी तो यही अर्थ है, जो मोह ( दशान माह ) से आत्माम विपरीत अभिप्राय होता है, उमर सद्भावम परका आप मानता है । अथात् मोहके उदयम शरीरान्तर पर द्रव्याम निन्तरी कल्पना करता है और शरीरम निन्तरी कल्पनाके अन तर जो-जो पदार्थ शरीरानुपूल पड़ते हैं उनके मद्भाय और प्रतिफल पदार्थान असद्भायकी चेष्टा करनेमें मनत प्रयत्नशील रहता है । अन्य समय भा इस जालमे सुरक्षित नहीं रन्ता । यद्यपि मुग्गसे यह पाठ पढ़ता है, सत्र द्रव्य म्यरीय स्त्रीय चतुष्पयमे भिन्न भिन्न हैं । अय द्रव्यके साथ अय द्रव्य का परमाथसे कोई सम्बन्ध नहीं है । तथाहि—

‘नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्ध परद्रव्यात्मद्रव्ययो ।

कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत् कर्तृता कुत ॥’

यह सर्व कल्पना भा माहम होती है । जा गृहस्थावस्थासे पृथक् होगए और अतरङ्गसे भावलिगी अन तानुगधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कपायका तिनके क्षयोपशम हो चुका है, तथा सञ्चलन कपायका उदयमात्र तिनके है यह भी कहत है, किसीसे मत नोली, क्योकि जो जाननेवाला है वह तो दृष्टिका विषय नहीं, जो दृष्टिका विषय है वह अज्ञानी है फिर किससे कचन व्यवहार किया जाय ? फिर यही कहते हैं—

“यन्मया दृश्यते रूपं तन्नजानाति सर्वथा ।  
जानन्न दृश्यते रूपं तत केन ब्रवीम्यह” ॥

पर पदायसे सम्बन्ध छाड़ो, और आगमम यद् भी लिखा है जो वितने द्रव्य हैं वे सर्व स्वतन्त्र हैं । एक परमाणुमात्र भी परका पररूप नहीं होता । अन्यद्रव्य अयद्रव्यरूप नहीं होता, यह तो निरिमात्र ही है, किन्तु एक द्रव्य जो अनेक गुणोंका पिण्ड है उसमें वितने गुण हैं वे गुण भिन्न भिन्न रूपमें निहित हैं । यथा—पुद्गलद्रव्यमजो स्पर्श रस-गन्ध वण हैं, वे अपने अपने स्वरूपको लिए हुए भिन्न भिन्न रहकर ही अधिश्रग्भाज सम्बन्धमें एक क्षेत्र में गाड़ी हो रहे हैं । जब यह व्यवस्था अकारण है तब हमको उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता है ?

धाम्त्वमें बुद्ध आवश्यकता नहीं और न उपदेशा उनका सुधार और विगारके लिए प्रयत्न ही करता है । वह तो अपनी अंतरङ्ग शक्तिके अनुसार वाच्य करनेमें प्रयत्नशील होता है । जब आत्मामें इच्छा उत्पन्न होता है तब आत्मा वैधेय हो जाता है । और जब जो इच्छामें आया, जब तक उसकी पूर्ति न हो पायन् वह दुर्गम रहता है । अतः उम दुर्गम पर करनेका प्रयास करता है—जैसे आपने यहाँ एक भिक्षु आया और उसने आपमें भिक्षा याचना की । आपने उससे वचन दियासना मुना । मुन उसके आपको अपने ऊपर कृपा बुद्धि हुई । अतः यावन् आप उम करुणा बुद्धिकी पूर्ति नहीं करते तब तब आप उसे दान देते हैं,—और आप कहते हैं हमने भिक्षुपर दया की । परमायसे विचारा तब आपने आत्मीय दुःखके दूर करनेका ही प्रयास किया । परन्तु लौकिक व्यवहार ऐसा है कि अमुक मनुष्य दरिद्राका महान् उपहार करता है, किन्तु

हैं, वह भी अपना नहीं। पुत्रका इथा छाडो, जा क्षयोपशम ज्ञान  
है, वह भी मरनालया नही, अत उमरो भी अपना  
मन मानो।

( वैशाख कृ० १३ )

दृढप्रतिज्ञ बना। सत्य रातक रहनम सक्रोच मत करा।  
मनुष्यता का आदर न करनेसे अमानुष ही जाओगे। अमानुषका  
ग्रह है, जो विवेकज्ञानके पात्र न रहोग। विवेकशून्य ही अनन्त  
ममारेकी यातनाआका पात्र होता है। तथा विवेकी उनको धम  
कर अनन्त सुखका पात्र होता है।

( वैशाख कृ० १४ )

शांति क्या है ? यह निश्चयन करना अतिकठिन है। आगमम  
जा लिगा है यह तो पुस्तककताका अनुभव है। अथवा यह भी हम  
नहीं कर सकते, क्याकि उनकी क्या वे जान, परन्तु यह अनुभवम  
आता है, जो इन्द्राज अभावम शांति मिलती है और यह भी अनुभव  
म आता है, जो इन्द्राज मद्भावम अयमताका उन्म होता है, वह  
व्यमता ररस्थतासे बञ्चित रगती है। जन आ वाचनाका स्वगताम  
हुआ और जन उनकी दग्धत्रिया समाप्तकर गृहपर आया तत्र एव  
म उमत्त मन्श चेष्टा होगई। अत करणसे ऐमी लहर उठती  
या, जिससे एव क्षणभर भी विश्राम मनको न मिलता था। बहुत  
महाशय जो मेरे हितैषा वे अनेक उपाग्याना द्वारा सा त्वना देकर  
मुझे प्रसन्न करनेका प्रयास करते थे। परन्तु जैसे सचिक्कण घटपर  
जल स्थान नहा पाता, उसीके सन्श मेरे उमत्त हृदय पर उन  
महानुभावोंने गम्भीर और भय्य उपदर्शाका अणुमात्र भा प्रभाव  
नहीं पडता था। यहाँ तक वचनोंका व्यवहार हाता था, जा तुमने  
मह लिखकर और आ स्वगाय वाई चिरांतावाइका अद्वितीय  
समागम पाकर आत्मन्वरूपका अश भी न पाया। रहनेका

तात्पर्य यह है कि मैं पूज्य स्वर्गीय माताक प्रियागम दश दिन उमत्तर  
 तरह रहा। पत्रान यही उपाय हृदयगत हुआ, जा इस स्थानका ह  
 त्यागना चाहिए और यहाँसे अत्र चले जाना चाहिए। जान  
 सरल न था, अनेक मनुष्योंसे सम्पर्क था, निसम था सिव उन्दन  
 लालनीका सम्बन्ध तो क्षार नीरकी तरह अत्यन्त प्रबल था। त्रिन  
 रटाईके दुग्धका पानीमे पृथक् हाना कठिन था, अतम यहा हुआ  
 जो स्रद्ध बन्धनका छाडनेके लिए उपेक्षाकरना प्रयाग कराही पडा।

आत्मान अचिन्त्य शक्ति है। कर्माधीन हुआ उमके विनाम न  
 होनेसे ससारका पात्र बना हुआ है। इसमें मूल कारण पर पदार्थम  
 नित्य कल्पना है। यह कल्पना नराक सम्यग्श्रद्धाका उदय नह  
 होता, निरन्तर रहता है और उसके साथ राग द्वेष दो सुभट रहते  
 हैं। इनके असन्ध्यात लोक प्रमाण त्रिकल्प होत हैं, जो केवल  
 श्रुतज्ञानके विषय हैं। ( वैशाख वदी ३० )

आज गाडीपुराके मन्दिरमे प्रयत्न हुआ, उपस्थिति उत्तम  
 थी, परन्तु मेरा उपयोग अत्र बर्चनेमे नहीं लगता था। क्योंकि  
 जन्ममें अपनेको दरगता ह तत्र वक्तापनेम जो गुण हाना चाहिए  
 उमका लेश भी मेरेम नहीं। केवल बद्धनाम्न परका माय नहीं  
 में स्वयं अपनी परिणतिसे ठगाया जाता हूँ। तत्रमे ता यह  
 सिद्धात दृढतम है, जा न तो कोड किसीका सुधारक है और न  
 उसके विपरीत है। माहके उदयमे यह सत्र स्याग होते हैं अत  
 उन नट बेर्पाको त्यागकर परमाय मार्गमे आनेका प्रयत्न करो  
 निरन्तर स्वात्मानो शुद्ध करनेका प्रयत्न करो। पाण्डित्यवला क्षयापशम  
 और उदयाधीन है। जहाँपर परको सुधार मार्गमे लानेकी भावना  
 हो जाती है, वहाँ आत्माको बन्ध है, जहाँ बन्ध है, वहाँ नरकावि  
 गतियोंमे परिभ्रमण अनिवार्य है।

जिस जायसं करनेम भय हा मन करा । अतरंग हा यद्विरंगसे  
अनुकूल रहे । संसारम मायाका व्यवहार हे, वटा कुट्ट, करना  
कुट्ट, मनम कुट्ट, यह जात हम स्वयं कर रहे हैं । प्रतिदिन संसार  
असारतानी यात करत ह और तागाको समझनेका प्रयत्न करत  
हैं । स्वयं कुट्ट करते गही । लागाना व समझते हैं, माना हमम  
यह परिणमत हो गया हो ।

( ध्यान शु० ३ )

हम परसे वत्ता बनते हैं, फल हमरा आतुचता और आगामी  
संसार है । वक्तव्य हम आत्माना स्वभाव गही, किन्तु वैभक्ति  
विचार है । स्वने परिणामरा वत्ता ता आत्मा है ही; किन्तु परका  
वक्तव्य इसम नहीं । जो पररा वत्ता अपनेको मानता है । गही  
संसारमे परिधमण करना है और अनन्त ज्ञानताओंका पात्र  
बनता है ।

जो काम करत हा उसम अतरङ्ग तापेपणाकी भावना है,  
वही नाच नचाती है । यदि तोपणासे नहीं घब मरे तब भेद  
ज्ञानसे पात्र ज्ञानरा संस्कार छान दा । व्रतधारण करेवा तापर्य तो  
राग द्वेष दूर होनेरा है । यदि व्रतधारण करनेपर राग द्वेष निवृत्त ग  
हुम तब यह व्रत नहीं, एत तरहकी आत्मवञ्चना है ।

आत्म वञ्चनाका अर्थ उम व्रतरा फल संसार निवृत्ति नहीं ।  
मनुष्य पर्यायम प्राय इतर वयायाकी अपक्षा मत्र माधन अनुकूल  
है । देवोंम शक्ति बहुत है, परन्तु उमका उपयोग वे केवल शुभा  
पर्यायम ही कर सकत हैं । व भगवान नीचरके जन्म वञ्चनाक  
व्रतमे आते हैं और भगवानरा मुमं परतपर ता जाकर श्रीर  
समुद्रके क्षारमे भगवानरा अभिषेक करते हैं । राजगदीने अस्मर पर  
अनेक प्रकारके घाल उपकरणों द्वारा इतनी शोभा कर सकत ह,  
जो हमको दुलभ है । तप ( दीक्षा ) वञ्चनाक अस्मरपर भग

धानक। लौनात्तिर दध आकर द्वादशानुप्रश्नारा पाठ पढकर अपना नियोग पूणकर चले जाते हैं, किन्तु द्वादश अनुप्रश्ना, वैराग्यका जननी है, उसके लाभके उपाय पात्र नहीं होते। इन्द्र भगवानका पातकीभ विराजमानकर आश्रा उभरकर अपनको कृत्य मानकर चल जाते हैं अणुमात्र भी त्याग नपा कर मरते।

मनुष्य पय्यायनाला जीव यत्ति चाहे तब भगवानके मही नीशा धारणकर कमबलनका नाश करनेका पात्र हो जाते हैं। अतः सब पय्यायोंमें ऐसी ऋष्ट पय्यायना फल यदि संधारण न किया तब इयथ ही मनुष्य भयका ग्याया। अर्हानिश च करते हैं, जो मनुष्य पय्यायको पाकर यथ नहीं जाने वचाणि। ऐसे-ऐसे उदाहरण सम्मुख रखेगे जो मनुष्य पयाय पाकर मयम धारण न कर विपर्याम लाने द्वार आत्म चरि वञ्चित रहते हैं। वे रागके अथ रजन वनका भस्म और उडानेके अथ चित्तमणि रत्नका फेर देते हैं। इत्यादि व्याख्य द्वारा श्रोतागर्णका प्रमत्त करनेकी चेष्टा करत हैं, परन्तु मयमाग पर आग्न नहीं होते। ऐसे वक्ताओंके द्वारा न तो मया कल्याण होता है और न अन्य समानका हा कल्याण है। हाँ, बड़े समयके लिए तालीमी मंत्रार उण विवरम प्रवेश जाता है। धन्य हा। धन्य हा।

( वैशाख सु० )

यत्ता विम ध्येयका श्रोताओंके समर्थ पावन करनेका पद देता है, उम पर स्वय आम्न नहीं। अतः उम उपदेशका उमात्र भी प्रभाव नहीं पडता, प्रत्युत हाम्यरसम परिणमन हो जाते हैं। सिनेमाम जो पाठ दिखाए जाते हैं उनसे जो विषय करनवाले होते हैं, उनपर एवदम प्रभाव पड जाता है, क्योंकि हमारे अभ्यस्त हैं। योगशक्तिसे आत्मप्रदेश चञ्चल होने

भी कपायने अभावम स्थिति और अनुभागयध नहीं होता । अतः निद्रा ससारम मुक्त होनरी अभिवापा है, व इच्छाओंका रोष दय ।

( वैशाख मुदी ५ )

आगमम यह कथन बार बार जाता है, जो आत्मास भास अतस्परभास कर उपलब्ध हात है । और ७ नितरी नियत अयस्था तथा जा क्षणिक है, तथा -यभिवारी है, तथा मन मितार भी स्थानु आत्मास रहनेका असमर्थ हैं । इनमे विरुद्ध शायक भास ही एव एमा है जा स्थानके साथ नियमस रह सनता है । अतः इत अनक औपाधिक भाषाका छोड़ इसीकी प्यामना करा ।

आत्मास अचिन्त्य शक्ति है, इससं हृद्ग आता जाता नहीं, जन तक उसका विकास न हा उसका महत्ता नहीं । जैसे पौंड्रा ( इन्द्रुदण्ड ) म मिथी शक्तिसे विद्यमान है । एगावता सांगिको चूसनर कोई शुद्ध मिथीरा स्वाद नहीं ल सनता । एव आत्मास केवलज्ञानसे सद्भासरी शक्ति है, परन्तु जस तक मोदरा अभाव न हो शुद्ध ज्ञानका स्वाद नहीं आ सनता, जयमिश्रित ज्ञानका ही स्वाद आगगा । यद्यपि यह निविवाद है, जो ज्ञानम शय एव अंश भी नहीं जाना । यह सन वाई कह दता है, परन्तु अनुभवसे पृथ्तिप क्या बोलता ? ज्ञानम भीठा नहीं गया और ७ अय इन्द्रियजय ज्ञानम रूपादिका अश भी गया, परन्तु फिर भी पौंड्रा भीठा है । उसे इन्द्रिय जय ज्ञान विषय ररता हा है ।

( वैशाख मुदी ६ )

शरीरकी निरलतासे हृद्ग आत्मरह्याणम बाधा नहीं, बाधय तो हाय-हाय करना है । हाय हाय पाठसे हृद्ग नहीं मिलता, कंघल

संश्लेशता होती है, जो पाप बंधका कारण है। अतः जो कल्याण चान्ते हो, तब इसे छोड़ो। (दीर्गाक्ष मुनी ०)

चित्त तो शांत है। फिर भा भातर न जाने कौनसी यला है, जा बान्धार प्रेरणा करती है जो अमुर कार्य करा, अमुर न करो। काम नहीं पर पर पदाथ होते हैं, वही होता है। पुराकी पदाथ दृष्ट नहीं करता। मयं प्राप्ताशादि पदाथोंसे सट्टा मयाभा विर परिणमन करता है। यह यान ता जत्र बने जत्र आमा पुराकी हो जात। यद्यपि आत्मा निम स्वरूपमाला है, उमा स्वरूपमाला रहेगा, यह अटल सिद्धांत है। जैसे पुद्गल, द्रव्य रूप रस-गंध-स्पर्शमाला है, कितनी ही वैसी अवस्था उमरी हा रूप-रस गंध स्पर्शसे शून्य कभी न होगा। यद्यपि स्पर्शम शब्द-गंध मूहम स्यूत आदि अनेक अवस्था पुद्गल द्रव्यकी हाती है, परंतु व रूपादिसे शून्य कभी नहीं होता। क्योंकि उनसे साथ पुद्गल द्रव्यका अभेद है। यद्यपि पुद्गल त्रिरूप भी परिणमता है, अमृतरूप भी परिणमता = परंतु रूपादि गुणाशा लकर हा परिणमता है।

(दीर्गाक्ष ३० ८)

मय तरफमे चित्तवृत्ति हटाआ और स्थायायम लगाआ। कित्तासे गल्पवाद न करो, स्पष्ट उत्तर दो। अतः यह समागम त्यागना पड़ेगा। जिसका त्यागना ही पड़ेगा उम पहलसे त्यागा। औदारिक शरीर नश्वर है, तब क्या वैयत्रिक नियम है? तानों ही नश्वर है, फिर उनमें निवृत्तवृत्ति त्यागो। इसीप्रकार आत्मानामन जा द्रव्य है, यह पुद्गलसे निमित्तबो पावर अनेक अवस्थाओंका पात्र होता है और व अवस्था विजातीय पुद्गल और जात दा द्रव्यसे सम्बन्धसे जायमान है।

(दीर्गाक्ष ३० ९)



मयम गुग्गुला यह अर्थ है जो राग द्वयने यशीभूत होने आत्माका परिणति पर पदार्थोंम विचरण करती है । यह यहाँ न जान, निचम ही रह जाय । दुग्गुला मूल आकुलता है, आकुलताका मून इच्छा है, इच्छाका उत्पत्ति माहमे होती है, माहसे यह आत्मा परमें निचत्य और निचम परत्त मानता है । यही अभेद बुद्धि समारकी जनना है । उर्हीनो निच मान मंसारम परिश्रमण करता है । केवल जायम विभाय और यागशक्ति निश्रमान है । परन्तु अष्टमने सहकार निना वं शक्ति स्त्रभाव रूपसे पड़ी रहती है, बुद्ध हलचल और कटुपता आत्माक नही होती । इसीमे भगवान् नेमिच द्राचार्यने वयका कारण कथाय कहा है ।

( वैशाख शु० १० )

विचारकी धान है जा अर्हतादि पञ्च परमेष्ठीका ना शूद्र नाप्य कर मने, एतदश अतरद्ग धमका पात्र हो सने, अनत ससारके कारण मिथ्यात्वका धम कर सने, किन्तु ईद चूनेक मंदिरमें न आसने । श्रीच द्रप्रभ आदि तीर्थररा स्मरण कर मने, परन्तु उनकी निसमें स्थापना है उम मृतिनो न देख मने । यदि देख तो वाह्यसे दग्ग । बुद्धिम नर्नी आता । पच पापको त्याग मने, अणुप्रती हो मने अणुप्रतने उपदेष्टाओंने दशन कर मने । जलिहारा इम बुद्धिनी ।

( वैशाख शु० ११ )

त्रिनेत्रा महत्त आत्मदृष्टि ही जानता है, सब पदाथ प्रथम सत्तालिण परिणमन कर रहे हैं । उतम अन्यथा कल्पना ही अनथ मंतानकी मूलरानि है । इसनो निसने उमूलन किया, यही त्रिनेत्रका पात्र है ।

( वैशाख शु० १२ )

परके मन्वधसे जैसे जग्नि धनधान सहती है, एत आत्मा नाना दुर्गोंका पात्र होता है ।

( वैशाख शु० १३ )

अपि श्री महावीरवाकी निरीहता जगत स्वीकार करता है। अहिंसाका प्रचार निरना जगतम दृष्टिपथ है, श्री वीरके प्रभावका फल है। परंतु जगत उनका उसका आदर नहीं करता, इसमें जैनियोंका दोष नहीं। जगत स्वयं इस धर्मके स्वरूपका अपनानसे डरता है। महावीरका धर्म वही पालन करेगा जो निरीह होगा।

(वैशाख शु० १४)

यातनाओंके होनेमें मूलकारण परमं निवृत्त कल्पना है। समग्र सार द्वारा स्व पर भेदविज्ञान हो जाता है। भेदविज्ञानसे राद आत्मा अपने स्वरूपमें रम जाता है, तथा परममें विरत होना है। इसमें परनिमित्तक विमर्श मिट जाते हैं।

(वैशाख शु १५)

न हम विमारे हुए, और न मैं हमारा हूँ। हम परका अपना मानते हैं, इसका अर्थ यह है हम परके हूँ। न तो तुम किसानके उपकारी हो, और न अपकारी हो। मोक्षमें कल्पना नर व्यर्थ ही कत्ता बनते हो और उसका फल यह जगत प्रत्यक्ष है, जहाँ अनन्त दुःखोंके भोक्ता बनते हो। बुद्धिसे नाम ला, परने सम्बन्ध छोड़ो ध्यान ही मुझसे भावन हो मर्ने हो।

(ज्येष्ठ कृ० १)

अनुभव तो कहता है कि आत्माकी शांति और ज्ञान आत्माका ही है। हम उसे अत्यन्त अन्वेषण कर रहे हैं। औद्योगिक भागोंसे लेकर श्वायिक भागोंकी उत्पत्ति आत्माका ही है। हम उसे अत्यन्त मान रहे हैं। क्रोधादि कषाय आत्माका दुःखदाया है। हम क्रोधके, बाह्य कारणोंको त्याग करनेका प्रयत्न करते हैं।

(ज्येष्ठ कृ० ४)

ससारमें शांति समुद्र नहीं, यह जन-साधारणकी धारणा है।

यह कहना आपातसे है। समार वस्तु बाह्य द्रव्य नहीं। अर्थात् समार और मायु यह दोनों आत्माके परिणाम विग्रह हैं। इसीमें गृह्यपिच्छने "मंसारिणी मुक्ताथ" को प्रकारका तीय स्वरूप बताया, ०४ ससारी और ०५ मुक्त। जिनके रागादि दोष विग्रहमात्र हैं व ससारा और जो इन दोषोंसे मुक्त हो गए व मुक्त जीव हैं।

( ज्येष्ठ ४० ६ )

निस कायरु करनम अन्तरंगसे संकलश हो उभे मत परा। पेसा धार्य व नरा निमसे आभाम पश्चाताप हो। पापको जड अज्ञानता है।

( ज्येष्ठ ४० ८ )

पदाय ता अयस्य हाता नहीं और न अय पदाय आत्म रूप होता है। फिर भा हमारी अनादिसे यह धारणा बनी हुई है, जो परने अपना मानते हैं और आपको परका मानत हैं। यह क्या चेतनम ही घटती है। अचेतन पदार्थमें व ता कल्पना है, और न कोई तज्जय दु ग्य है।

( ज्येष्ठ ४ १० )

ससारका प्रभाव इतना विशेष है, जा उत्तमसे उत्तम मानने इसके चक्रसे मुक्त होनेको तरमते हैं। कहनेवाले प्रहृत हैं परन्तु माननेवाले बहुत कम हैं।

( ज्येष्ठ ४० १२ )

पर पदाथका परिणमन अपने अर्धान नहीं। व्यय गिनत हाना महती अज्ञानता है। प्रायः प्राणी अधिवाश इसीमें दु गी रहते हैं, जो ससारमें हमारे अभिप्रायके अनुसार परिणमन हो। यह होना असम्भव है। पदाथोका परिणमन स्वचतुष्टयके अनुरूप होता है। इसे अयया करनमें आन तरुन कोई सायहुआन होगा। निमित्त-नैमित्तिक सम्यग्धका देखकर मनुष्य उपादेय सायका निमित्तमें

आराप कर लेता है। जैसे—मृत्तिनामे घट पयाय होता है। मृत्तिवा ही उसका कत्ता है, घट कम है, परन्तु व्यवहारम कुम्भकार घट करोति अनुभवति च।' तत्त्वमे अतज्याप्यज्यापक भावने द्वारा विचार करो तब मृत्तिनाके द्वारा ही घट निया जाना है और मृत्तिनाहाम घट पयाय अनुस्यूत रहती है। वायुव्याप्य व्यापक भावने द्वारा विचार करो तब मृत्तिनाके द्वारा ही घट निया जाता है, और मृत्तिना हीम घट पयाय अनुस्यूत रहती है। ग्राह्य ज्याप्य-व्यापक भावने द्वारा कलश पयायोकी उत्पत्तिने अनुकूल व्यापारको करनेवाला कुम्भकार है और कलशकृत जा तापने उपयोग जन्य वृत्तिना अनुभवन करनेवाला कुम्भकार ही है। फिर भी लाज्ज यह व्यापार हाता है जो कुलाल घटका करता है और उसीका अनुभव करता है। परमात्मने न तो कुम्भकार घटका रत्ता है और और न भाक्ता है। अथवा परिणामोंका न कत्ता है और न भाक्ता है। निमित्त-निमित्तिहकी अपेक्षा कर्तृ-कर्मका व्यवहार मात्र हाता है। इसका यह अर्थ नया जो निमित्त बुद्ध करता ही नहीं। यद्यपि यह मिद्वान्त है, जा कोड पयाय सिमी पलायन अपना न तो द्रव्य देता है और न गुण-पयाय देता है। किन्तु एमा नियम है, जा उपादान कारण निमित्तारी सकारिताके विना स्वाय काय करनेमें श्रम नहीं हाता। जैसे—मोक्षपयाय केवन आत्मा ही म हाती है किन्तु मनुष्यायुक्ता अभाय भी उसमें सहकारी कारण है। चाय हा उद्ध गमन करता है, किन्तु अधम द्रव्य मम सहकारी कारण है।

( 'घट कथा १० )

प्राचान विद्याक अभ्यासने विना हमलाग अध्यात्म ज्ञानमे वञ्चित रहत है। अध्यात्मक ज्ञान विना हमारी प्रवृत्ति वायु परिग्रहाम निरन्तर मलग रहती है। ज्ञानने अनन और रक्षण करनेमें पयायका उपभाग रहता है। निरन्तर आत रीट्ट परिणामोंकी

शृंगलारुद्ध प्रवृत्ति रहता है। इस तरह यह मनुष्य जीवो ज्यतीत हा जाता है। यह ना मैंन बहुभाग परकी कथारा उल्लेख किया। केवल बाह्य कार्यास यह हमार लिंगना है। परमाथसे उनकी आभ्यन्तर प्रवृत्तिका हम यथातथ्य निरूपण नहीं कर सक्ते।

( ७८ पदी १३ सं० २००० )

यहाँ तक बने आत्माका पवित्र बनानेकी चेष्टा करो। पवित्रता हा समार मूलका उच्छेद करनवाली शक्ति है। अपवित्रताकी विराधिनी शक्ति पवित्रता ही निधारिन है। हम लाग बाह्य पदार्था का संसारका कारण मान रह हैं।

कन्याणमं लिण तो—

‘रत्तो बधदि कम्म मुचदि जीवो विरागसपत्तो ।

एसो जिणोपदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज ॥’

यही अभिप्रायका हृदयम धारणकर श्री शुभचन्द्र स्वामीने ‘ज्ञानाणव’ म लिखा है।

‘रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते’ ।

एषो जिणोपदेशोऽय सक्षेपाद्वन्धमोक्षयो ॥’

यह सब कुछ पढ़ लते हैं और सभाम व्याख्याना अवसर आता है तब बाह्य बंध बनानेकर प्रतिपादन करनेम रज्यमात्र भी श्रुति नहीं रखत। परंतु दशा बही रहता है—

‘जिस शिशु नाचत आप न राचत लखनहार बौराया’ ।

ठीक दशा यही हमारी प्रतिदिन दोरही है, अत जिह कन्याण करना हा, इन कतव्यासो आत्मीय परिणामा म न्नारना चाहिए। अन्यथा नेत्र विहीनकीनालटो और नपुंसककी सुंदर स्त्रीका तरह भावशून्य ज्ञानीका ज्ञान उपयोगम नहीं आता।

( ७८ पदी १४ )

किमार्थं व्यवहारसे सप्रथा माहित मत हो जाया। अनादि-कालसे परक व्यवहारहीमे तो आत्माका अस्तित्व मानकर नाना यातनाएँ पाई। यह यातनाएँ परजय नहीं, तुम्हीं इसके अपराधी हो। और जब तक इस अपराधका न त्यागोगे, कदापि सुखके पात्र न होगे। सुखका अर्थ यही है, जो आत्माका आनन्दता न हो।

( जग क० ३० )

मुनिनशाला और यक्षा महादय्याम इतना हा अंतर है कि यक्षा ज्ञाना है, श्रोतालोग अज्ञाना हैं। सा जयतः यक्षा रथन करता है, श्रोता भा उतने काव ज्ञानी ही हा जाता है। स्वव्यपारमें यक्षा और श्रोताओंमें विशेष भेद नहीं दग्ग जाता। अस्तु—मैं ता निनकी क्या कहता हूँ, जो श्रोताआका क्या में कह ही क्या मक्ना हूँ ? परंतु हमारा आत्मपरिणति तो म्यच्छ नहीं हुइ। मेरेको इसका महान् हर्ष है, मैं अपनी जुटिको अनुभव करता हूँ। जम पात गया, भीतरकी परिणति स्पच्छ नहीं हुइ। लुब्धकपद केवल लंगोटी और एक गण्ड पन्नेसे नहीं होना। म्मका प्राप्ति अंतरङ्ग कपायका उस पदमे अनुकूल अभाव होना चाहिए। यद्यपि यह निचिनाद है, जा हमारे ज्ञानम यह नहीं आता जो हमार एकादश प्रतिमाके अनुकूल कपायका अभाव है, फिर भी यात्र परिणामोंसे अंतरङ्ग परिणामाका सत्ताका प्रत्यय होना है। अनुमान सम्यक् भी हो मक्ता है, विपर्यय भी हो मक्ता है। फिर भा चरणानुयोगरी पद्धतिके अनुकूल ही लोभम व्यवहार होता है। जो जलसे जैन हैं और यन्त्रि प्रवृत्ति अय वमके अनुकूल है तत्र यह जैनधर्मके अनुकूल सम्यग्दृष्टि नहीं।

( जग मुग ३ )

कल्याणके लिए निमित्त कारण अनुकूल होना चाहिए। यद्यपि निमित्त कारण कल्ल यलात्वार नग करता फिर भा कार्यकी क्षैपत्ति

उमरे सद्भाव जिना नहीं हाता । यथा चौदह गुणस्थानम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यी पूणता होगइ, फिर भी आयुने अमायना श्रावश्यक्ताका मद्भाव श्रपेक्षित ही है ।

( जड पु० ८ )

ना शास्त्र उपयागम लाथा न्से सम्यग् ज्ञानकर म्वाध्याय करो । किसी कायका करनेकी याद आवात्ता है, तब म्परहूपसे उसम श्रपनेरो अर्पित करदा । किसी कायके करनेके श्रम म्पर अर्पनेको भूल जाया, अनायास कार्य हो जायगा ।

( जड पु० ० )

चित्तका उन्मत्त बनाआ । परकी आशा छाडो, जाराधना अपनी करा । आत्मगत दरदा करा । परर दोष देखनेका जो स्वभाव प्रता रखा है उसे त्यागो । कर्मा क्षायरभाथने कहनेसे ज्ञाता दृष्टा नहीं हो जायग, परम ज्ञानिष्ठ भावको त्यागो ।

भारतरपने परने दिनाम विशप रूपसे दान करत हैं और उस दानके पुण्य मानते हैं । पुण्य होनेका कारण मद कपाय है और यह होना कोई कठिन मन्तु नहीं परतु जिसको आज संसार पुण्य मान रहा है वह यही तो है—जो परोपकार करना, दुःखित नावकि कष्ट दूर करनेके भाव होना, परमात्माकी उपासना करना अथवा जो परमात्मा पदकी प्राप्तिमें सलग्न हैं उनका यादृत्य करना या उन्हें आहारादि प्रदान करना इत्यादि अनेक कारण पुण्य सम्पादनके हैं । पर पुण्यका यही है जो वाक्य कारण ऐसे मिल जायें तिमने हम लौकिक मनुष्योंकी दृष्टिम विशप माने जायें । वास्तवम तिन जीवनि उपादेय बुद्धिसे पुण्यका सचय किया है, प्रथम ता जो मनुष्य पुण्यसे विशेष मुग्गरी घाबद्धा करते हैं, उन्हें स्वाभिप्रायके अनुरून उतना फल नहीं मिलता । जा मिलता है, यह मुग्गका जनन नहीं, मुग्गका लक्षण तो निराकुल परिणति है

पदार्थोंके भोगनम मुख है नहीं, मुख तो आत्माका गुणविशेष है। उसका विकास आत्मा ही होता है। जब हम किसी कायरी इच्छा करत हैं, उस कालमें हमारी आत्मा अशांतिमें उद्वेग में लगता है और हम निरंतर घबरेन रहत हैं। जब हमारा इच्छित काय हो जाता है, तब कालमें हम सुखी हो जाते हैं। हमारा कारण जो हमारे काय करनेकी इच्छा थी, वह आहुनतारी जननी थी। कायके होते ही इच्छा निवृत्त होगी, वही शांतिमें चलाए। इसमें यदि निरूप फलित हुआ जो इच्छाके अनुकूल कार्य सम्पादन कर पाएँ होनी अपत्ता आहुनतारी जननी इच्छा ही की संपत्ति न हो। यह माग प्रथम मागरी अपत्ता प्रशान्त है, अतएव मानमार्गमें निर्णयकी अपत्ता सरररी उपयोगिता कर्त अंशाम स्ताध्य है। 'सररो हि मार्ग'। भगवान्की आत्मा ही माग है। भगवान्की आत्मा क्या है? परम वैराग्य करण प्रणाली ही तो है।

वैराग्य ही तो मोक्ष मार्गापवागा वस्तु है। सम्यग्ज्ञान क्या वस्तु है? सररूप ही तो पडता, जो आत्मा अनादि कायका विपरीत अभिप्राय था हमारा त्याग अथवा उमर न होना। जो होता है उसकी तो निररा होती है न होनी नाम संतर है। यदि कल्याण चाहते हो तब कर्तृपित परिणति न होने का। जमा न्तरानि तो श्रौतियिक भाव है, तब निरर त्यागा। अनादिस ता तका सम्पर्क है, उसके महवाससे कौनमी अद्भुत निधि पाड। केवल जज्ञात्मक पुद्गल विण्ड ही तो पाया। पुद्गल विण्ड भी आपरे कर्तृपित भावोंका संसग पारर तारी अमित्य दशाका पार हुआ जिसे न तो शब्दोंके द्वारा यह जीव प्रणोदिय द्वारा जाना जा सकता है, शब्दोंके देवनेसे भयभीत होता है। प्राणोदिय सूँघना नहीं चाहता, रसनोदिय स्वाद लेना नहीं चाहता, स्पश



नेन्द्रिय स्पश करनेसे भागती हैं। यह सब तुम्हारा अनुचित कृत-  
व्यता ही का तो फल है। अतः अन्तम यही कहना है, जो  
आत्माका इन अनादि बंधनोंसे मोचन करनेकी अभिलाषा है तब  
सबसे आदर करा। सबसे प्रथम यह प्रयत्न करा, जो इस  
जड़ामय शरीरसे चेतन्यका कल्पना है उसे त्यागा। इसे त्यागो  
इसका अर्थ यही है, जो शरीरम आत्मबुद्धिकी उत्पत्ति न हो। भेद  
ज्ञानका यही तो अर्थ है, शरीरको शरीर और आत्माको आत्मा  
समझा। अथ शब्दमे यही ता अथ निम्नला नि शरीरमे आत्म  
बुद्धि न हो और आत्मा शरीर बुद्धि न हो।

( जठ सुनी १० )

‘कर्मफलानुभवन निर्जरा’ जो कम उद्यमे आन, अपना  
फल देकर चला जाय यह तो हाता हा है। ऐसी निजरा प्राणी  
मात्रक हाती है। किन्तु जिन जीवाके फल भागनेके समय राग  
द्वेष नहीं हाते, उनके आगामी यह बंधनक नश होत, उनकी  
निर्जरा प्रगस्त है।

( जठ सुदी ११ )

जो उपयोग व्यग्रने विनृत्पामें लगात हो उमे आत्मकी ओर  
लगात्रा। इसका तात्पर्य यह है जो परकी चिंताम जाता है वह  
शांतभावमें परिणत हो जाय। परमार्थ तो यह है। मोह मदिरा  
पानकर शांतिनी आशा करना, आगीके पास बैठकर शीत स्पशनी  
आशा करनेके तुल्य है।

मसारी जाय सब अनित कमके फलाको भोगत है। किन्तु  
जब उम जीवक शुभादयसे रज पर विजय हो जाता है, उस समय  
सञ्चित कम उद्यम आवेगा। परन्तु रागादिक अभावम अत्र  
कमबंधन होनेसे वह निर्जीण हा जाता है। अतः जिन महार  
आत्माओंको स्थाय कल्याण करना है उह रागादि भावोंके

होते हुए भी उनमें अनास्था रचना ही आगामी कर्म में वैसे साधक व न पड़ेंगे। जैसे-सम्यग्दर्शन होनेसे अनन्तर अप्रत्याख्यानादि कृत्याओं उदयम जो होनेवाले भाव हैं व अवश्य उदयमें आवेंगे और उनका कार्य असयम भी रहेगा। परन्तु अंतरङ्ग श्रद्धामे उनमें वह आत्मायता नहीं, जो भिष्यादर्शनके सद्भावमें थी। वहीके यत्नसे वह आगामी घुरा चालना पथ नहीं जैसा भिष्यादर्शनके कालम होता था।

( जन् मुंशी १२ )

प्रातः काल गर्माका प्रसोप शात होनाता है। इसका कारण रात्रिका चद्रादय होता है। अथ चद्रमाका त्रिणें शीत प्रधान हैं। उनका अभाव रूप दिनमें मत्त प्रदेश होनाता है। वह क्रमशः शीत निमित्तानो पाकर शीतल हो जाता है। एवं आत्मा माहादिक कर्मोंके निमित्तोंका पाकर रागी द्वपी होता है और यहा आत्मा आत्मीय पुरुषार्थके द्वारा वीतराग होगा।

मंगलका दिन मंगलकारक हो। कार्य ऐमा करो जिसम मंगल स्थय हो, मंगल त्निसे मंगल न हागा। मंगलक योग्य काय करनेसे मंगल होगा। मंदिर जानेसे, भगवानकी भक्तिसे भगवान् न होंगे। चित्त कार्यके करनेसे श्री आग्निनाथ महाराज भगवान् होंगे, व कार्य करो, गल्पवाग्म दिन मत व्यय करो।

( जन् मुदा १४ मंगलवार )

मंदिर जानेका यह तात्पर्य है, जो गृहस्थ सम्प्रधा धातोंको करनेका वहाँ अवकाश नहीं। तथा मंदिरोंमें शास्त्र भण्डार रहते हैं, अनेक स्वाध्याय प्रेमी जन् वर्णों पर रहते हैं। तत्त्वचर्चा भी होता है, तथा प्रवचन भी हाता है। इन सुन्दर अवसरोंका पाकर स्वाभाविक रूचि आत्माका चित्त परिणतिमें श्वोर लग जाती है। अनादि बाल्यमें आत्माका सम्प्रध इस पुद्गल द्रव्यके साथ हो

गोलो कम और राधा कम तथा नगनक मग्ध व कमसे कम यथार्थ ता यथा ही है, परन्तु मारी जीन इमना उपयोग नहीं करते। केवल पराध्रय होकर आत्मीय कल्याणसे वञ्चिन रहन हैं। कल्याणका मार्ग स्याश्रित है। कल्याण उन्तु क्या है? पर पदायकि सङ्गामसे छूट जाता ही है। आत्माना शरीरमे मग्ध है, उमे निन मानता ही संमार है।

ग्लान्तावाले थायू छाट गालनी नाहय तथा गान् नदलावनी साङ्गकी इन और अन्दी नष्टि है। आप मादियर महान अनुरागी है। आप यह चाहत है। जो मानमात्र हृदयम जैन धमका विशास हो। जैनम तो यापर धम है। नभ किस्तीर धर्म दत्त है यही बडी भारी मून है। धम ना आमागी यह परिणति विनेप है जो आत्माना संमार उन्से विमुक्त कर देती है। यह परिणति शक्तिरूपमे जानमात्र है। उमना आशिर विशास नारक, तिर्यत्र, मानर, देवम हाता है, परन्तु सती होना चाहि। तियच्चतिना छोड़ शप तान गतियाम जीव सना हाते है। तियच्चगतिमें असनी भी होते है, सजा भी हाते है। अत मंज्ञा तियच्चमे भी आशिर धमनी योग्यता हाती है। यह धम जिमसे मसार उधन छूट जाते ह, रत्नयात्मन है। अधान् मग्धगान ज्ञान चारित्ररूप है। उमम भी आत्माना श्रद्धा आमाका ज्ञान तथा आत्मा हीम चय्या ये रत्नत्रय है। यह धम निरपेक्ष आत्मान ह प्रिकसित होता है। यह धम किसीकी अपना गरनकर ही आत्मानो मोक्षम ले जाता है। मात्त काइ स्थान विशपका नाम नहा। यह इन रूप आत्माकी अवस्थाविशप है। इही महापुरुषोकी पञ्च परम गुरुरूपसे उपासना हाता है। उन्तर तान गुणना उधय परिणमन है, तबतर आत्मान अवश्यम्भायी यव है। यह अवस्था 'यथाख्यातचारित्रावस्थाया अघस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात्'

होता है। अतः जिन्हें यथेष्ट नहीं, उन्हें अपश्य इन कमादि शयुओंसे त्याग देना चाहिए। रहनका तात्पर्य यह है, जो कम मानान् मायुका पात्र आत्माको बनाता है। उन्हें तो मन ग्राह धर्मोंकी अपश्यरता नहीं। परंतु उच्च भावोंके अभिलाषा हाकर भा पात्र नहीं। वे इन्हीं गुणान् लाभार्थं पञ्च परमेष्ठीकी न्यासना करते हैं, जैसा कि लिखा है—

बन्दे तद्गुणलब्धये' न्म अन्तर धर्मका पात्रताके लिए ही हम लोग मन्दिरादि निमाण कराते हैं। जा मन्त्रि निमाण कराते हैं उनम न्मा महानुभावका मित्र रहता है। उसका देवपर हम न्म महा पुम्पके गुणोंका स्मरण कर आमनाम करनेकी चेष्टा कराते हैं। मूर्तिको निमित्त मानकर ही ता हम न्म गुण विक्राम होनेका बुद्धि पूषण प्रयत्न कराते हैं। इसमे यही तो निकला जो गुण तो हमारी आत्मान है। परंतु अत्र नय हाता है, तत्र न्यादान और निमित्त कारण, मद्भाग्यमती हाता है। अतः लोकम दर्या जाना ह नि कायके उपादनम मनुय निमित्तकारणों को भी आश्रय देत है। तत्र यह क्या राजाज्ञा है जो न्यापलोग तो आत्मधमके विकासके अर्थ श्रीनि न्मि का दशन कर सके और जस्यश्यादि शूद्र न कर सके। आप श्रीपरमेष्ठी का मन्त्र जाय कर सके और हरिजन न्म मन्त्र का जाय न कर सके।

( प्रथम अगाद वदा ३ )

आत्मा की उस अवस्था का नाम परमात्मा है, जिसमे घाति कम का नाश होकर स्वच्छ परिणमन ही जहाँ होता है। यह पर मान्मा दो रूपसे कहा जाता है। घातिया कम का अभाव तो हा

गया, किन्तु अघातिया कम थर्भा प्रियमान हैं। उते तो सकल परमात्मा कन्ते हैं। जहाँ घातिया-अघातिया उभय कम नहीं रहे वह निरुल परमात्मा तदा जाना है।

शरीर भी अवस्था शिथिलता का पात्र हा रही है इमन् अनु कूटा मति-श्रुतज्ञान भी शिथिलता मम्मुरा है। परन्तु इतनी दुः-वस्था होन पर भी कपाय की गिथिताता नहीं होती। इमना कारण असम निरुल कल्पना है। यथापि धृद्वावम्याम इन्द्रियों की शिथिलता से तद्विषय अनुराग स्वभाप्र से ही नदा रहता। किन्तु मर्से मरता व्याधि लोनेपणा अपना प्रभुत्त आ मात्र ऊपर जमाए हुए है। यथापि असम आय-व्यय इत्य नहीं, किन्तु कपायोंने उदयम यही तो हागा, अत इसको दूर करने का प्रयत्न करा। कोड बठिन काय नहीं। अपने स्वरूप का विचारा, झाता दृष्टा रहे। आत्मान अनन्त गुण है, किन्तु एर चैतन्य गुण ही ऐसा है जा उनने स्वत्व को उताता है। यन्नि ज्ञानम वस्तु न आर तत्र होकर भी नहीं क तुल्य है।

( प्रथम अपाद वरी ४ )

आन प० हवकीन दवीरु स्वर्गवान के उपलक्ष्यम आठ बजे समा हुई। प० कमलगुमारनाने उनके गुणोंरा मन्मन्नातिसे वर्णन किया। गुनरर यह मनम आया, एक दिन अस शरीरका वियाम होगा। जब तत्र आयुवर्मरा सम्बन्ध है, निवृत्तिमागना अपनात्रा, गल्पवादम दिन मत व्यय करा। समीचीर शङ्करी जा परिपाटी उपयोगम लाते हो, इस वक्ष्यक प्रणालीने साव इत्य उस प्रणाली को भी अपनाओ जो श्रेयोमर्गकी सहचरी है।

( म० धाराद वरी ५ )

आप मंदिरम दर्शन क संस्कार यह मनम कल्पना आई, जा मंदिर बना है। ईंट, चूना, पत्थर हीसे तो इसका निर्माण हुआ। इसमें जो मूर्तिमण्डल है वह भी पत्थर आदिसे जने हुए समचतुरस्रस्थान मनुष्याक आकार हा तो है। उनम मनुष्याद्वारा ही आ नादिनाथने लकर आमद्वारास्वामी तत्र तागारोंकी स्थापना है। तत्र कल्पना करो, जो मनुष्य जन्म भगवानकी स्थापना करल, यदि वह चेतनमे भाव भगवाननानिषेव करले तो कौन इसको प्रारणकर सकता है ?

तो आत्मा अपनी शक्तिस पापाणकी मूर्तियोंम भी श्रीआदिनाथ आदि चतुर्भिःशक्ति तीधारोंका स्थापनाकर पापाणोंम पूज्यता ना देवे क्या वह जीव अपनेको भगवान नहीं बना सकता ? परन्तु रोद है, हम अपनी शक्ति आनादिसे मनुष्याग नहीं करते। यही कारण है कि चतुर्गतिने पात्र बन रहे हैं।

( प्र० अपाद वदी ६ )

आत्मा तो सर्व ही अपने अस्तित्वका स्वारार करते हैं। शरारको आमा कैसे मान सकते हैं ? जिस घरम हम रहते हैं, कोई भी जानी उसे अपना स्वरूप मानता हो एमा नहीं दखा गया है। घर चूता है तत्र घरम खप्पर लगाता है, शरारम नहीं।

प्रचनम साख्य सिद्धांतकी परिपाटी दिग्वाइ गइ। यह लाग कर्मप्रकृतिमे ही कत्ता मानते हैं और भोक्ता आत्माको मानते हैं। दखो, कम ही तो आ मागे अज्ञानी बनाना है। ज्ञानाकरण कमके उदयसे ही तो ज्ञानका विकास रह जाता है तथा कम ही आत्माको ज्ञानी बनाना है। ज्ञानाकरणकमके उद्योपशमने बिना ज्ञान नहीं हाता। इसी तरह कर्म ही आत्माको निद्रा उपन करता है। दशानाकरण कमके उदयने बिना निद्रा नहीं, एवं आत्माको जगाता है; क्योंकि दर्शनाकरण कमके उद्योपशमके होनेपर ही आत्माकी जागृत

अवस्था होता है। उसी तरह कर्म ही आत्माका मुग्धी करता है। मातावेदनीय कर्मके उदय ही तो मुग्ध सवेदन आत्मा करता है। इसी तरह कर्म ही आत्माको दुग्ध संवदन करता है, क्योंकि असातावेदनीयक उत्पत्ति के बिना दुग्ध संवेदन नहीं होता। इसी तरह कर्म ही आत्माको मिथ्यादृष्टि बनाता है। अज्ञानमोहका उदय ही आत्माके मिथ्यादृष्टान्तका उदय होता है। इसी तरह कर्म ही आत्माका असंयमी बनाता है, क्योंकि चारित्र्यमोहके बिना असंयमभावकी उत्पत्ति नहीं। इसी मरणीके अनुकरण करनेसे कर्म ही आत्माको स्वयं नरक तथा तिर्यग्लोकमें भ्रमण कराना है। आनुपूर्वी कर्मके उदय होनेपर ही तो यह प्रक्रिया बनती है। इसी तरह कर्म ही पत्ता है, कर्म ही धत्ता है, कर्म ही दाता है, कर्मकी उदयदशाले बिना पत्ता नहीं हिल सकता। कहा तत्र कर्म, जो शुभ अशुभ कर्म यह जीव करता है, वह सब चारित्र्यमोहके तात्र-भेद उदयका ही ता कार्य है। निम्न वास्ते यह व्यवस्था हो रही, वह सब स्वतन्त्ररूपसे कर्म ही करता है। कर्म ही दाता है जीव यावन् है, व सर्व अकर्ता है। यह हमारा हृदयतम निश्चय है। हम ही इस तत्त्वका प्रतिपादन नहीं करते, किन्तु त्रिनेत्र भगवानकी श्रुति भी इस ही अधिका कहती है। तथाहि—दया, जय पुत्र नामक कर्मका उदय आत्माका होता है तत्र हम जीवका आविषयक भाग करनेकी अभिलाषा होता है। जय स्वयं उदय होता है तब इस जीवको पुरुषसंरमणकी अभिलाषा जाता है। तथा जय नपुंसकप्रेयका उदय होता है तब कालमें दाता संरमण करनेका अभिलाषा होती है। यत्तीर्ता साहनीय कर्मक ही तो भेद है। इसमें सिद्ध होता है कि कर्म ही अत्रत्यका अभिलाषाका धत्ता है। आत्मा अत्रत्यका कर्ता नहीं। इसी प्रकार जो परका घात करता है अथवा परके द्वारा घात जाता

है, कद क्या है ? जब परधान नामकर्मका उदय जाता है तो यह क्रिया हाती है, जो इमका वच्चा नहीं। इम प्रकार यह साग्व्यका मिद्वान जो जैन मिद्वान्तके मर्मको नहीं जाननेवाल श्रमणाभास हें वे ही इसका प्रतिपादन करते हैं। उनके अभि-  
 प्रायसे जीव मर्कथा अरुच्चा ठहरा। प्रकृति ही वच्चा हुइ। कइ तन्म्य इस दोषका इम प्रकार निवारण करते हैं ना आत्मामें अज्ञानादि भाव हाते हें, परमार्थमे इन भावोंका कत्ता तो प्रकृति ना है। और आत्मा जा है, वह अपना वना है। इससे आत्मा वच्चा है इस श्रुति को लाप होने का काइ अवसर नहीं, यह कहना भी अयुक्त है। क्योंकि आत्मा द्रव्यरूपकर नित्य अस्मन्वानप्रदेशी है। निय तो है, यह कार्य नहीं होता, क्योंकि प्रकृत्य और नियम धमा का परस्परमें विरोध है। अवस्थित अमरल्यात प्रदेशवान् ना आत्मा है, उसके जैसे पुद्गलम्वन्ध का तरह न तो प्रदेशा का आगमन होता है और न निकलना हा हाता है। यदि गमा हाने लगे तो निव्यय भाव ही भिट नाय।

( प्र अषाढ वदी ७ )

धास्नवम आत्मा ज्ञानगुणरा पिण्ड है। किन्तु माथमें अनादि कालसे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, इन चार स्रज्ञाओंसे दुरी रहता है। कम घोला, इमके साथ कायज्यापार भा कम करा। तथा माथम मनोज्यापार भा कम करो। इमके साथमें कथाय भी कम करो, आत्माका आकुनताकी वरनेवाली कथाय है। जिनने कथाय पर अधिकार न किया, वे बुद्ध नहीं, संमारा नाव हैं। समाराका मूल कारण कथाय है, यही महती गला है।

अनादि कालसे तो धामना आहारादि विषयक आत्मामें अभेद रूपमें अपना अस्तित्व घनापू है और तुम उन धामनाओंमें हुतने लिम् हो, जो निजके-ज्ञानसे शून्य हो रहे हो। आपके



स्वप्नम ज्ञाना ज्ञान हाता है, किन्तु स्व आप उनसे अपना अस्तित्व माग रहे हो। वह बोसना विकारजया है, तुम्हारा अस्तित्व स्वय सिद्ध अनादि निरन है ।

( आपाद कृ० १२ )

कहाँ तो यह फायरता और नहीं आगमकी अगधिता, जा वस्तु स्वरूपमा निरूपण कर फायरको भी माक्षमागर पथका पात्र बना देता है। जो आगमाभ्यास करते हैं और उस प्रतिपाल अर्थ पर आरू होते हैं, यही महापुरुष आगमके रचयिता होते हैं।

( आपाद कृण ३० )

मन मनुष्य कहते जगत मायाना जाल है। जगतसे तात्पर्य चतुर्गति है। यहाँपर जो पदार्थ ऋष्टिगोचर देख जाते हैं व सय-पौर्द्धातर है। इह हम अपना मानते हैं। हम क्या मानते हैं ? ससारका यही पद्धति है। इस पद्धतिका निनन ध्वंस किया जाने निज पाया। निज पाना ही ससारका अंत करना है।

( आपाद कृण १ )

यदि अतरंग गृह्यता है तब त्यागी जाना समानको भार है। आत्मा ज्ञाता टप्रा है, इसका उपयोग करो। उसम दर्प-विपाल मत करो, अथवा व उदय जा आया है, निर्णीर्ण हारर भी आगामी बन्धवा जनन होगा। जैसे—गज स्नान ता करता है, स्नानसे पूर्व धूलिना सम्बन्ध बिलग होनाता है। परन्तु फिर नरीन घूलिना सूडने द्वारा सम्बन्ध कर लता है और प्राचीन दशावा भोक्षा होता है। ज्ञानी जीवना यह निर्मल विचार हाता है जो उदयगत बमनी ऋण समझर भोगवर ही उसका पिण्ड छुडाना चाहिये। आत्मा एक स्वतंत्र पदाव है, इससे प्राभ्यतर अनंत शक्ति है। तिनमें ज्ञान भी एक शक्ति है। उसमें जो पदाव आता है उसे पर जानता है। इतना काम तो ज्ञानका है, परन्तु

मोर्ही जीव उस ज्ञेयको अपनेसे अभिन्न मानकर मिथ्यादृष्टि वन जाता है । इसीके प्रभावसे जो पदार्थ अपने सम्मुख आते हैं शब्दात्पुरुष किसीसे राग और क्रिमीसे द्वेष कर लेता है ।

( भाषाद मुद्रा ७ )

इसका मुख्यता पर परम्परवातालाप हुआ, एकपक्षका कहना जा दगो, दापायन मुनिने द्वारा ही द्वारिका भस्माभूत होगी । शृण्णमहाराजके अवसानमें जल तक न मिला । अतः कोई प्रकारके वैभवाका मान मन करो । देगो, वर्तमानकी व्यवस्था, जो राजा थे वह मय प्रता के शासनमें आगा । ससारकी गति विचित्र है ।

आत्मन । अतः तमसारकी विद्वन्मना त्यागो । इसका यह अर्थ नहीं कि ममार कोई दृश्यमान जगत है ।

इसमें जा परिणमन हो रहें यह विद्वन्मना नहीं । अथवा सुद्ध रहो, उससे हमारा कोई सम्पर्क नहीं, हम सुख-दुःखके दाना नन् । हमारे आत्मान जो मोहादि उत्पन्न होते हैं उनके पचश में होकर हम क्रिमी पत्थम मोह और क्रिमीम राग द्वेष उपन्नकर नाना प्रकार मानसिक मन, वचन, कायके व्यापार कर निरंतर माह, राग, द्वेषो दूर करनेका प्रयत्न करते हैं । किन्तु कल्पना यह करते हैं, जो पत्थ रागम कारण पड़ता है उसे मुख्यका कारण मान लेते हैं ।

बहुत कम भाषण करो, परकी समालाचना त्यागो । जो मनमें आय, उसे ही रचन और ज्ञायमें व्यक्त करा । यदि कोई तुमका मूरख बड़े तत्र प्रमत्त हो उसे साधुवाद दो । यदि कांड प्रशमा करे तत्र समझो कोई विशेष बात है । प्रतिदिन शास्त्र सुनाओ, अपना कथा मन मिलाओ । जो आगमम लिया है, उसे सुनाओ । परन्तु यत्नपूर्वक पत्थ गीता विवेचन करो । वर्तमानमें चितने मत दृष्टिपथ

हा रह हं ये सर्व मनुष्योंक विचार ही ता हैं । सद्यः वह यथापि मन पदाथाना दृष्टा है ।

—सके इन्द्रा नहीं, तथा भासमन भा नहीं अत यह तो आगमकी रचना करत हैं । जो रचयिता हैं, व सर्वज्ञ नहीं । हों, यह अचक्षु है जो इन असर्वज्ञोंम जो माहसे परे हैं व अभिप्राय पृथक् अथवा नहीं लिखते । केवल चारित्रमोट चिन्ते हैं व पदाथाना व्यवस्था करते हैं ।

( प्र अथाद् शुदी ६ )

एक निरंतर आलम्बन करो वही परमार्थ पदका अद्वितीय पथ है । ध्ययद्धारसे परमात्मा निश्चयम आत्मा । एवमो मदा त्यागा, एक सेने-ड भी इसम विलम्ब मत करो । यह चक्षु अथ कक्षु नहीं पर पदार्थम आत्मीय कल्पना है । जिसर यह फलना है वही मोहा जीव है । अत इस कल्पनाके अस्तित्वम अपनेका ज्ञाना मत माना ।

( अथाद् शु० ७ )

चिन जीवाकी परम निजत्व कल्पना है वही मोही मिथ्या दृष्टि नास्तिक है । यदि यह चेतन आपको ज्ञाता-दृष्टा मान अनायास यह कल्पना मिट जाय । ज्ञानम ज्ञेयका आना अथ यात है, ज्ञेयका निव मानना अन्य वान है । ज्ञानम 'मिथी मधुर है' यह आता है । परन्तु 'मीठा ज्ञान है' यह कोई नहीं कहता । मिथी माठी है ।

( अथाद् शु० ८ )

ग्रहण और त्याग आपही म है पर पदाथ पर ही है । न ता उसे हम ग्रहण कर सकत हैं और न त्याग ही करते । अत जिहे

द्रव उत्पन्न होते हैं, उनका हम त्याग। तथा जो हमारा दशन, ज्ञान, चरित्र है उसे स्वीकार करे। विशेष राते अनुभरसे पूछो।

( अथा ३० ९ )

जिस कार्यके करनेमें शक्तिहीन हा उसका विकल्प करना सर्वथा त्याग। कर्याणका भाग त्यागम है। सर्वसे प्रथम मिथ्यात्वका त्याग करो। मिथ्यात्वके त्यागसे ही अज्ञानास असत्य असत्यो का त्याग हो जाता है। जितने विवाद हैं मिथ्या कल्पनाक द्वारा ही होते हैं। आन संसारम चितनी शुरीतिया आ रही हैं इसका मूल कारण मिथ्या अभिप्राय हा है। अत चेष्टाकर इस रोग को निवारण करो। चेष्टा करनेकी आवश्यकता नहीं, स्वयं स्वयं जानो यही इसका मूल उपाय है। आन तक हमन मको नहीं जाना, केवल मुखसे कहनामात्र ही जाना है।

जब हम स्वयं अन्यकी वैद्यावृत्त्य करनेमें संकाच करते हैं तब अथ हमारी वैद्यावृत्त्य कर, यत् सवथा अनुचित है। श्रीदयाचन्द्रजी जो वैद्यावृत्त्य करता है, वह सापेक्ष है। उसे आभ्यंतर तपमें नहीं गणना कर सकते हैं। और जो त्यागी हैं उनको अंतरङ्गसे वैद्यावृत्त्य करनेकी रुचि नहा। यद्यपि हम पर प्रचारो वृद्ध है, करनेमें अशक्य है। यदि कोई हमारा उपचार करे तब उचित ही है। परन्तु ऐसा सरता प्रवृत्तिका अत्र मनुष्य नहीं रहा है। शास्त्रोम जीव ध्यान है, वह कहनेका पदार्थ है। उस रूप प्रवृत्ति करना परम दुष्कर है। जब यह व्यवस्था है तब भक्तप्रत्याख्यानमरण ता हो नहा सक्ता, क्योंकि उसमें अनुकूल सामग्री नहीं। प्रायोपगमन सत्यास तो इस कालमें सर्वथा असम्भर है। ऐसे शक्तिशाली जन नहीं जो न परसे वैद्यावृत्त्य करावें और न आप करें। अत उगिनीमरणका ही शरण लेना चाहिए। यदि कोई राग आजावे ता स्वयं उपचार करे। यह विचार कर कर्म ना स्वयं तपसे

रूपान्त किं ह्ये । अत्र तत्र व्ययमानमे घट आया तव भय वरना  
व्यय है । यत् ज्ञो कृतमम ह्ये उच्य भोगना ही पडेगा । अत  
सर्वे विरन्व त्यागवर जा वम मानामाता रूप उदयम आर  
वमनो आत-दके साथ भागवर संतोष परो ।

प्रतिदिन विचार करता है ना अत्र इन गल्पवादमे आत्मीय  
परिणतिना रथिन वरनम पूर्ण मकरुन होंउ । किन्तु फत्र इसरे बिरुद्ध  
ही पाना हू । इसना मून कारण यत् है, हमने अपने तद्वयना निश्चय  
ही नहीं किया । जितना काई तद्वय हा नहीं बनना मनुष्य जीघन  
ही नहीं । मनुष्य चर्दी है जा अपनेको अन त संसारकी भीषण  
यातनाआसे रचा मरे । प्रतिदिन मंत्रिमे शाश्व प्रोचते हैं अथवा  
मुनते हैं । परन्तु फिर घटा प्रवृत्ति जा समारकी बननी है रहीं  
नसना प्रथम न मरे तत्र नोतारण ही हुआ । तोनाराम  
गन प्रतिदिन रहता है, परन्तु राम शीत मे, यत्र नाम लेनेम  
क्या हमना होगा । नहीं जानता है । इसी प्रकार हम लोग प्रति-  
दिन भगवन्नामना उच्चारण करत हैं और उस नामसे हमको क्या  
लाभ होगा ? इसपर कुछ भी विचार नहीं करते ।

( प्र० अषाढ़ सुदी १०११ )

मत्तारथ करना काइ कठिन काय नहीं, परन्तु फाय करनेम  
अपनी शक्तिना सदुपयोग करना कठिन है । प्रतिदिन राग द्वेष  
मोहके त्यागना कथा सरत सरत तम आत गया । चितने उप  
आयुके गण, अत्र उतने मास भी चीघनाम्नित्तर रना कठिन है ।  
परन्तु एक दिन भी जो बाला उमना शताश भी न किया ।

प्रायः समारम मनुष्य समानम ही विशेष जान और विशय  
काय करते देखा जाता है । पशुआम न मो उतना ज्ञान है और न  
परिमद भी है । पशु जो मनुष्य पाते हैं उनरे तो परिग्रहना  
रोश भी नहीं, मनुष्या के उपर हा उनरी रक्षाका भार है । जो

यत्न प्रदे-धडे पशु है उनके पद से सिद्ध है कि  
 आस आदि ग्याकर रात्रिसे गिरा बदलते पशु-पशु  
 कोई निश्चित स्थान भी नहीं, जो कि पशु-पशु  
 से। हों यह देखा जाता है कि पशु-पशु  
 नेत्रलकर कृपण लोगोंका खेलाद्ये पशु-पशु  
 देखा जाता है, परन्तु जो पशु-पशु  
 आदि पर मो जाते हैं। पशु-पशु  
 नेर्यश्चिनी गभिणी हो जानपर व पशु-पशु  
 तथा तियश्चोमि यह भी देखा गया है कि पशु-पशु  
 माण तक विसर्जन कर देते हैं। पशु-पशु  
 यहाँ तक देखा गया है जा पशु-पशु  
 पशु-पशुसे जी मामना करके पशु-पशु

तथा कोई पशु पेशे भा पशु-पशु से पशु-पशु  
 केवल अपनी छामे रखते हैं। पशु-पशु  
 कतूतर और कतूतरी इतना जान पशु-पशु  
 चालाक होते हैं। जैसे—पशु-पशु  
 पुष्ट होता है। मयल मागिर्य पशु-पशु  
 और जय वे पुष्ट हा जान है कि पशु-पशु  
 काकिलाका नाम वाकपुण है। पशु-पशु  
 शाली चीर है। हमने मान-पशु-पशु  
 इसमें सपत्नीघांती अपेक्षा विद्व गति पशु-पशु  
 उपयोग बने तत्र प्रदेसे व पशु-पशु  
 बुद्धि नहीं जो वपादिस पशु-पशु। मनुष्य सर्व पशु-पशु  
 रक्षाके लिए गृह प्राना है।

नियममे त्यागपरातः (आपत्तु...)

परामर्शना काय कराग, सकल हाग। और पूवापर विना विचार काम करागे, असफल हागे। असफलता दुखकी कारण होगी। जा मनुष्य निरपत्त हात हें यहा कल्याणके पात्र होते ह। जो जनताको प्रमत्त करना चाहत हें व ही दूत हें।

( भाषाद् शु० १३ )

रात्रि त्ति कल्याणकी चचा हार्ता ह, परन्तु कल्याणका मार्ग क्या है ? उसपर अभी मेरी बुद्धिसे श्रीगणेश भी नहीं हुआ। इसका कारण यदि यह कल्पना करूँ कि तूने मनायोग पूवन अध्ययन नही किया तो बहुतसे महाशय एम भी दरनेम आते हैं जो बहत हें, पर कल्याण मार्गसे पर हें।

अहनिश गृहर्थाकी चचाम अपना हित गमा दत हें। मोक्ष मार्गकी भी कथा करूँगे जिमम अयन लिण ही मुख्य प्रयत्न रहगा। आप ता जलभिन्न कमलका अनुसरण करूँगे। कदाचिन् यह कल्पना करे कि इनका त्यागना आर लक्ष्य नहीं पर ऐसे भी देख जान हें तिहोंन आचम राई रम नहीं लिया, फिर भी कपायामिसे अतदग्ध हें। कएँ ऐसे भी महानुभाव दर गए, जो पण्डित भी हें और त्यागा भी हें, परन्तु तत्र उनर चिरद्व शब्दरा प्रयाग हुआ, महाराज दापायन मुनि बन जात हें। इससे एन् निष्कप तिरुलता हें, जा कल्याणका भाग अभ्यंतर निर्मलतासे हें। ज्ञानका होना अय घात ह और उसका मदुपयोग करना अय घात ह।

( प्र० भाषाद् सुदा १४ )

प्राय शारीरिक बदनाकी अपहासे मानसिक बदनायाल बहुत निस्तीगे। हम निरंतर दस प्रयत्नम हें जा वियरूप जारासे मुक्त होव। परन्तु इमम उत्तीण नहीं होते। एक का भी हल नहीं कर सवत। इसका मूल कारण बुद्धिम नहीं आया।

यद लिखा—“यन् अज्ञानारस्थाम कर्त्ता होता ह, ज्ञानाय

स्थामे कर्त्ता नहीं।" तब क्या मन्थट्ट रुन्ध इदं यद् आत्मा करत्ता नहीं ? यदि कर्त्ता नहीं तब यह ज्ञान कब बन होगा ? मा क्यों होता है ? तथा जा किन्दा, ग्रीं कता है सा किन् भावोंका निदा करता है। इत्यादि प्रश्नोंका बराब मन्त्र निवना चाहिए, यही उत्तर आत्मासे मिलता है। परिश्रमि वा होकर भी आत्मा जो अंतरङ्गसे नहीं चलाता है और करने पत्ते हैं। जैसे आनखल गह्लाका राशन है, राशनका टुकामे मड़ा गला मिलता है। अत परवश होकर चारम गला चरवाना पडता है। रिश्रत देना पाप है, परन्तु एमे अन्तर अल है वो निना रिश्रतके काम नहीं चलता। एम मन्त्र एतु ही अन्तरसंबन्धव मनुष्य होगे, जो रिश्रत न लेते होंगे। परिश्रम पाप सय कद देते हैं, परन्तु अर्जन करते समय धमक करेमे मे रिश्रत लना देगा जाता है।

(५० आयाद गु० १५)

परिश्रम करनेसे कुछ मिलना है, स्वयं नहीं। काइ मनुष्य तेलके अर्थ घाल्को घानीमें पैल तय का मन्त्रका लाभ होगा ? एम ममार बंधनमे मुक्त होनेके निमित्त काइ गुन काय करे तब मुक्ति-लाभ असम्भव है। चिंता करनेमे भी नचा लाभ असम्भव है। हम न किमीके न कोई हमारा, इस एमन नी भदज्ञान न होगा।

आन वानपुरके प्रसिद्ध दक्षीम चन्दाचार्यजी आए, आप याम्य पुरुष हैं। हमारे ऊपर वो अपकी पूर्ण दया है; इसका मल कारण आप धार्मिक रिचारक बरमे सुन्य हैं।

(दि० आयाद क० ५)

एक महापुरुषने प्रश्न किया, किन्तु ज्ञानका स्वरूप किसेवा करा। मेरे तो यह उत्तर आया—किन् ज्ञानम मोह, राग, कल्पना नहीं होती उसी ज्ञानका स्वरूप किसेवा



राग-रूप मोह नहीं, यहाँ अतनुतुल्य, अनन्तपीर्य है। जहाँ आहुताता नहीं वहीं गुण और शांति है।

महापुराणका पाठ हमारे द्वारा हुआ। श्रीनुमानजी मृत वाकर राजा जाड़े हैं। गोमम महेन्द्रपुरसे राजासे परास्त किया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। महेंद्र अज्ञानाव विना ये। अपने पीतेका वैभव देकर बहुत ही प्रसन्न हुए।

पुण्यशाला चायानी चेष्टा आनन्दमणिणा हाती है। राजाका मिलाकर ला चाण ऋद्धिधारा मुनि श्रीर तीन राजकुमार्याओंका उपसंग में। अनन्तर ये कथा था रामके पास बरती गई श्रीर हनुमानिने लंकाका कोट विध्वंस किया। कोटके मंरुकरों परलोक धाम पहुँचाया। अनन्तर उसकी कथासे बहुत युद्ध हुआ। अतम रथाने कामनाम हनुमानका परास्त किया। अतम मोर्का प्रभुतासे कामदेवमा प्रल योद्धा सामान्य कथासे पराजित हा गया। अन्या भा कामकी बदनासे पितृ-जय शोकसे भूलने हनु मानके साथ विषय मुद्रम तीन हागई। जत्र तद्वय मातृगामा नीर भी रामके धशीभूत हाकर पसी-पेसी चेष्टा परते हैं तत्र अय सामान्य पुरुषानी कौनमी कथा।

( द्वि० भाषावृ० २ )

प्रश्न—इस संसारका मूल कारण क्या है? उत्तर—मोह। प्रश्न—मोहका स्वरूप क्या है? उत्तर—निसके मद्भास म अपना और परका ज्ञान न हा। आप क्या है? जा यह कहता है कि मैं बीन हूँ जिससे यह राजा हाती रही ना मैं हूँ। इससे अतिरिक्त यह है, इसी का नाम भेदविज्ञान है। उसके जलमे ही अत्मा अनन्त संसार को सेंट मफता है।

( द्वि० भाषावृ० ३ )

श्रीद्विरम निमरा विम्व तुम्हार ज्ञानम आता है यद पूज म

मनुष्य ही तो वे। उठाने निच मुग्धावत ही माह शत्रुको परानित किया। तुम भी मनुष्य हा, य राजकि भोहरो पराम्त करा। और आशिर शातिका लाभ लनेर पात्र वतो।

आच पण्डित पत्राबालनी व यहाँ भोवन हुआ। आप बहुत हा श्रद्धालु और कर्मठ जीव ह। आपका लोगाने योग्यता नहीं जानी। आपके द्वारा जा काय हाता, यह बहुत कारतक जैधममन वातव रहता, परन्तु यर्ग तो समाप्त गति विचित्र है। धनिक-उगकी गति धन पात्रर जा होती है, यह किसीम गोप्य नहीं।

आचरुणमे महानमे मगन चो चतमानम श्रुपिराने है तथा उनके श्रुगामी त्यागाग्र और जनना मामान्य है। मेर धति यह भाव रत्त है जो इस व्यक्ति को जैनमना मार्मिक परिचय नहीं है।

यदि इसे जैधमना परिचय हाता तत्रहरिनाका मन्त्रि प्रवेश की अनुमति न देता। बस मत्र तो इतना ही है। यनमानमे असप्रकारने सुधार्य बहुत हागण। ये मर्ग जैनधमने अनुगामी नहीं, इनका जैन नहा सममना चाण्डि। मैं इन महानुभावोंका श्रवतक मादर दृष्टिसे देखता हूँ।

( द्वि० वापाद् कृ० ४ )

रोइ एन्द्र कहे, तुम अपने स्वप्नम च्युत नहोओ। प्रत्येक पदा अपने अपने स्वरूपमें लाने है। माननेसे पदाथरा श्रयथा परिणमन नहीं होता, हाँ, हमारी कल्पना माह मिथ्या हातानों। जैसे राई महानुभाव चारचिन्त्यादि दोषसे सापम चाण्ड और रज्जुमे मपनी कल्पना कर लेवे। पनायना माप रजत नहीं हुआ और न रज्जु मर्प ही होगया।

मनुष्यको उचित है प्रथम आत्म-कन्याणनी चेष्टा कर। आत्म-कन्याणके प्राह् आत्माको जाने पत्रात् उसमें जा कताव है, उहे परिमार्जन करे। अन्धा अथ घतलाआ आत्मा क्या है ? उत्तर— महाशय जिसमें यह प्रश्न हुआ है जिसने उसने व्यक्त करनेसे लिए

आत्मीय अभिप्रायको शब्द सचेता द्वारा व्यक्त किया वही आत्मा है। वह कैसा है ? इसका उत्तर अपनेमे पूँछा। वह कोई सुदृगल पिण्ड तो है नहीं, जा कोई भटिति उचार द्य, ऐसा है। जिसमे सत्त्व विकल्प होते हैं वही आत्मा है। सत्त्व विकल्पके अभायम जो शाक्तिका पात्र हाता है वही तो यह है। श्री स्वामी भमिचन्द्र महाराजने लिखा हैं—द्रव्यसंपत्—

‘जीवो उवओगमओ अमुक्ति कता सदेहपरिमाणो ।

‘भात्ता ससारत्यो सिद्धो मो विस्ससोद्गर्ह ॥’

सबसे प्रथम लक्षण आत्माका उपयोग आचार्यने बनाया। यह लक्षण ऐसा है जो आत्माकी सब अवस्थाओंमे व्यापक होवे रहता है। आत्मा द्रव्यरूपसे तो निर्य है, परन्तु पर्यायरूपसे एकरूप नहीं रहता। सामान्यत आत्माकी दो अवस्था हैं—एक संसारी और एक मुक्त। मुक्त अवस्थामें तो आत्मा केवल रहता है, पर पदार्थके साथ जो गूढ़ मग्ध था, वह छूट गया। उसका परिणमन शुद्ध ही रहता है। उस समय आत्माना ज्ञान केंद्र कहनाता है। मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय ज्ञानका अभाव हा जाता है, क्योंकि ये ज्ञान क्षायो परामिक हैं। यदि यह क्षयोपराम न हुआ, ज्ञान मिट जाता है। जो-जो कार्य जिन जिन कारणोंके सहायमें होते हैं व-वे कार्य उन कारणोंके असद्भावम नहीं होते। इससे सिद्ध हुआ कि वेचलज्ञान ही एक ऐसा ज्ञान है जा म्योत्पत्ती परकी अपेक्षा नहीं रखता। अत यह ज्ञान कभी भी नाश नहीं होता।

( द्वि० भाषातु क० ५ )

जबतक स्थिर परिणति करनेम असमर्थ आत्मा रहता है तबतक ही दु खका पात्र होता है। एक तो यह मनुष्य सुखी होता

है जिसन परिग्रहको स्थाधान कर रखा है। म्याधीनका अथ परिग्रह त्याग दिया है। परिग्रह लिये समार प्रयत्न करता है, इसम मूल कारण मिथ्यात्व है।

( द्वि० आपाद क० )

चार माममें आनन्दसे अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन करा। व्यथके प्रयादसे बचो, बसलग स्वात्मचिन्तनम काल लगाओ। अयोपशम ज्ञान है, ज्ञेयांतरम जाय जाने ना, राग द्वर्षी मात्रा न हो। उही पुरुषार्थ करो, व्यथ टुसी मत हाओ।

( द्वि० आपाद क० ७ )

समारम कर्म आधीन सबप्रकारकी विपत्ति इस जीवको भागनी पड़ती है। चाय अनंत है। सबके परिणमन प्रयत्न प्रयत्न हैं। अपने अपने परिणामोंके अनुसार जायका फल होता है। व्यवहारम चार वर्ण हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनम ब्राह्मण वर्ण अपनेको सबश्रेष्ठ मानता है, और वैम शास्त्र भी मिलत हैं, जो कृत्याद मानते हैं। उनका तो रहना है—“ब्राह्मणो मुखमासीत्”।

( द्वि० आपाद क० ८ )

ब्राह्मण भगवानका मुख हैं, अथात् मुखमें ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई और बाहुस क्षत्रिय हुए, उस वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मणोंका कार्य है जो वेदाध्ययन करें—तथा तीनों वर्णोंको सुमार्ग पर लानेका उपदेश करें। क्षत्रिय भूमिका पालन करें, वैश्य पशु पालन, कृषि, वाणिज्यादि व्यापार करें, धन सम्ह कर। शूद्र तीनों वर्णोंकी सुश्रूपा करें, सेनावृत्ति करें यह क्रम है। यही मान लिया जाय, परन्तु अथ तो उन्होंने यह करना छोड़ दिया। सेनाय प्रविष्ट होते हैं, कबल आदि पदों पर भी प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

कृषि भा करते हैं, पशुपालन भा करते हैं, गिरनीका भा कार्य करते ह, रोटी बनानेका भा कार्य करते हैं, पाना भी भरते हैं । त्रिप ताग भी खेती करने लग गए हैं, व्यापार भी करते ह तथा सेवा-श्रुति भी करते ह । वैश्य भी सेनामें भरती होने लगे, नौकरी भी करने लग । कवन शूद्रान् प्रति यह प्रतिबन्ध है, तुम्हारा परिचरन न ई हो सक्ता । यह मन्ता बलात्कारिता है । यहाँ तक प्रतिबन्ध लगा रक्खा है कि निम्न कृपरा पाना उत्तम धनसे उग्रयागम लाये, जहाँ पर अस्पृश शूद्र जलादिपाननी कर सकन । यत्कि दम्भितनम तो तिम मागसे ब्राह्मण गमन कर जहाँ अस्पृश शूद्रको जाना तक निषिद्ध है ।

( द्वि० आषाढ कृ० ९ १० ११ )

धम बिसीरा मूल धन नहीं है । प्राणी मात्रम धम है । उस पर भा लागान एक जमानेकी चेष्टा कर खूरी की ।

( द्वि० आषाढ कृ० १२ )

मानरूपाय ही संस्कारका कारण है । अतः जहाँ तक उन मानादिरूपायका अभान करनेका प्रयत्न करो । यही श्रेयोमार्ग है ।

( द्वि० आषाढ कृ० १२ )

शांति का कारण रागादि मल्लोका न होना है । दुःखका मूल कारण रागादि हैं, अन्ध नहीं । यह जारमा पर पदार्थोंका त्यागनेका प्रयत्न करते हैं तथा उनको निव मानते हैं । उन वियोगमें वेचन हो जाते हैं । यह विदग्धना सब भेदज्ञानके न होनेसे हो रही है ।

( द्वि० आषाढ कृ० १४ )

जा मनुष्य शांति के अभिलाषी है उठ पर पदार्थोंकी समा लोचना त्याग देना चाहिये । आत्मा अचिन्त्य शक्तिमाना है, यह काद मदिनाही साज नहीं । सर्व पदार्थ ही अचिन्त्य शक्तिराली

हैं। आत्मा ज्ञानवान् है, यह उसकी विशेषता है। यह भी कोई महन्वना घोटक नहीं, सर्व आत्माज्ञानी है। राग-द्वेषका हास जिमम हो वही पूज्य है।

( द्वि० भाषाद् कृ० ३० )

ह आत्मन् ! कबल कल्पनासे सुखसा आस्वाद नहीं आता, सुखकी प्राप्तिसे लिए आवश्यकताओंकी अल्पता ही सहकारिणी है। आत्मामे आवश्यकता हानेसे मूल कारण परम निरत्य मानना है। यही उमरी जड है।

( द्वि० भाषाद् शु० ३ )

अनेक सिद्धान्त जगतम हँ सपसे जघय सिद्धात चार्थाकका हैं। जो आत्मामे अस्तिहयसो म्वाकार नहीं करता। उस सिद्धात को माननेवालोंका कहना है, जो भौतिक पदार्थोंसे विकारमे कोई पेमा सामर्थ्य शक्ति आ जाती है जो यह सर्व धार्य करता है, उमीम सुख-दुखसा स्वेदन हाता है।

( द्वि० भाषाद् शु० ४ )

मनुष्य जब अपनेसा मदान् समभता है और उमकी रक्षाके अर्थ प्रयत्न करता है, वह वास्तवमे मनुष्य हो जाता है। और जो अभिमानसे लित होय इतरका निरस्कार करता है व ससारम मनुष्यतासे दूर होता है।

( द्वि० भाषाद् शु० ५ )

यह बडे-बडे शास्त्रार्थी सम्मति हैं जो सम्यग्दृष्टि विरल जीव होते हैं। जब यह व्यवस्था है तब रोद काहेका ? अन्यायसा मार्ग बठिन नहीं, परन्तु तब उस ओर दृष्टि ही नहीं तब नियमसे बठिन है।

( द्वि० भाषाद् शु० ६ )

सिनेमामे दृश्य देरकर जैसे मनुष्य लाभ उठाते हैं. यहाँ

घटाके घचनको भी श्रयण कर थाड़े समयका प्रसन्न हा जाते हैं । बहुत हुआ घचनको हृषित करनेके लिए धन्यावाद शब्दका उपयोग कर देते हैं ।

( द्वि० भाषादृष्टु० ९ )

प्रत्येक काय शांतिमे परा, और शांतिमे लिए करो । शान्ति का स्वरूप जानकर अशांतिके भागमें मत जायो । जो भी काय करो उसमें आत्मीय लाभ और हानि देख लो । आत्मीय लक्ष्य कुछ नहीं, नन तुम्हारे सब प्रयत्न व्यर्थ हैं । सर्वदा आत्मीय लक्ष्य पर दृष्टिदान रफना । आम् ।

( द्वि० भाषादृष्टु० १० )

नो नियम लो, उसका पालन करो । उपदेश देकर मानको आसान करो । सद्बचन वाला, अल्प विहार करो । ययार्थ मत कहो, जो कटुक भाषा हो उम्मा प्रयोग न करो । सत्यका पालन वही कर सरता है जो ममारमे भयभीत हो । जो लक्ष प्रणिष्टा चाहता है वह मुमुक्षु नहीं ।

( द्वि० भाषादृष्टु० ११ )

शुद्ध भाव रखो, परकी मूच्छासे ही शुद्ध भावका घात होता है । अभिज्ञा सम्पक ही जलम विवृतिना कारण होता है ।

पुण्य पाप बधने कारण होनेसे दोनों ही कुशील हैं । उनमें एकको कुशील और एकको मुशील मानना बुद्धिम नहीं आता । चाहे सुषणकी बड़ी हो चाहे लोहेकी बड़ी हो, दोनों ही पुरुषोंको बधनना कारण हैं । इससे कुशील जो हैं उनसे ससग और राग त्यागो । कुशील शुभ कर्म भी है और अशुभ कर्म भी है । दोनों आत्मानो ससार व धनम काते हैं । जैसे लोकमें जन यह विश्वय हो जाता है जा अमुक मनुष्यकी प्रवृत्ति दुष्टा है । तब हम उस मानुषका चाहे वह उत्तम वर्णका हो चाहे अधम वर्णका हो, संसर्ग

त्याग दते ह । इसी सन्श यह कर्म प्रकृति चाहे यह शुभ हो चाहे अशुभ हो । जब हमको दोनों ही परिणतियाँ समारम्भ कारण होती हैं तब जो विज्ञानी वीतरागी हैं वे उनके साथ न मसर्ग करें और न राग करें । लोकम यद् भी देखा गया है, जो कुशरा हम्नी होता है वह स्वकीय वपनने लिए कृणपटलसे आच्छन्न हो गत है, मपर स्थित जो करेणु बुद्धिनी है चाहे यह मनोरमा हो चाहे अमोरमा हा उसका समग नर्हा करना । इसीमे भगवान बुन्द बुन्नाचायका उपदेश है—

‘रत्तो वधदि कम्म मुचदि जीणो विरागसपत्तो ।  
एसो जिणोपदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥’

जानाणनेऽपि कथित—

‘रागी वच्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते ।  
एषो जिनोपदेशोज्य सक्षेपाद्बन्धमोक्षयो ॥’

जो रागी जात्र है वह बन्धका प्राप्त होता है और वीतराग श्रुता हैं, यहा जिन भगवान्का उपदेश है इससे रागसे त्यागता चाहिए । जो मनुष्य परमाथ मागसे न्युन है, व तब शील नप करके भी समारके पात्र होते हैं ।

( द्वि० भाषादृ० १८ )

सजमे पर अपनेको ममके, अपनेम मी अपनापन छोडो अथात् अभिमान न करो । अभिमानसे आत्मगुणका घात होता है । जैसे मैलापन कपडेकी म्बच्छताका घातक होता है । अग्निका न्पण पर्यायके सम्बन्धको पाकर जाके शैयका पता नर्न चलता एक कालमे एक गुणकी एक ही पर्याय रहती है ।

( द्वि० भाषादृ० १३ )



शीघ्रता न करो, धीरतासे प्रेम करो। परका प्रसन्न करनेको आत्माको सुमार्गमें लगाओ। सुमार्गका अर्थ है अपनी परिणति इतनी स्वच्छ करो, ना उसमें ज्ञेय ज्ञेयरूप रह। ज्ञानकी परिणति ज्ञानका ही स्पर्श कर, यद्यपि ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध मात्रमें एत दूसरेका सम्पर्क है और बुद्ध नहीं।

( द्वि० भाषाणं शु० १४ )

आज गुरुपूणिमा है। स्वयं रागादि दोषोंसे अदपित हा प्राणी मात्र पर अनुकम्पा करो।

( द्वि० भाषाणं शु० १५ )

पदार्थांक परिणामन स्वाधीन नहीं, अज्ञानी जीवोंकी कल्पना असत्य है। परम ही अस्तित्व मानते हैं, अपने का बुद्ध नहीं मानते। यही महती अज्ञानता है। इसका मिटना असम्भव है।

( भाषणं कृ० १ )

तब तो जो है। सा रहेगा, वह कभी भी विनाश न होगा। बंगल परके सम्बन्धको पाकर विकृत हो जाता है। जैसे काँडे फल अधिक गर्मी पाकर सड़ जाता है, उससे रसादि गुण विकृत परिणामनका प्राप्त हो जाते हैं। उसको अभक्ष्य संज्ञा दे दी जाती है।

( भाषणं कृ० २ )

शान्तिके लिए व्यय मत हाओ, वह अत्यन्त नहीं ममीप है। परन्तु उस ओर हमारा लक्ष्य नहीं। हमारा विषय वाह्य है, अतरंगकी ओर लक्ष्य नहीं। जो निचकी दशासे परिचय न किया तत्र मनुष्य जन्म यों ही बिताया, मनुष्यमें उत्तम अर्थ नहीं।

( भाषणं कृ० ३ )

देखकर चलो, देखकर भोजन करो, भोजन करते समय उपयोग को अन्यत्र मत जाने दो। सुधारे अनुरूप भोजन करो, जो रुचे

तथा पचे उसे उपयोगमें लाओ। भोजनका प्रयोगन गतरहा रहा है। यदि भोजनमें शरीर रोगा हो जाव तब वह भोजन विर है।

(कान्त ४०५)

बहुत कम मोलो, कुछ न करे वह अच्छा है, किन्तु अनुचित काम न करो। उचित अनुचितकी परिभाषाका निम्न स्वप्नमें करो। आपका अनुभव ही कल्याणका मार्ग है अनुभव अन्य ज्ञान कल्याणका कारण नहीं।

ससारमें सर्व मनुष्य अपने-अपने गात्र गते हैं। काट किन्नाका उपकारी नहीं। केवल जो आत्मा कर्मात्तर दाना है उसे दूर करनेका प्रयास करते हैं। कर्मात्तर आत्मामें यह प्रयत्नका वैचैनी हो जाती है। वह वैचैनी ही कर्मात्तर प्रगति करता है। जैसे-निम्न समय हमको क्रोध उपन्न होता है, उस समय परका अनिष्ट करनेकी इच्छा होती है। उससे हमका कुछ लाभ नहीं, पानु यह इच्छाजन तरु है तब तक वैचैनीसे विक्रमता जाता है। तब परका अनिष्ट हो गया, वह विपत्ता मिट जाता है। अन्य उदा क्रोध कर्मात्तर कार्य ही इसका कारण है। कर्मात्तरमें जो विक्रमता थी, वह क्रोध कर्मात्तरसे थी। कार्य हानसे हमका क्रोध मिट गया। विचार कर देखो न?

न हम क्रोध करते न विक्रमता होता, अतः कर्मात्तर न होने देना ही हमारा पुरुषार्थ है। इसका अर्थ है जो क्रोध होनेपर हममें आसक्त न होना। यही आत्मा न हानका कारण है। क्रोध वह उपलक्षण है यात्रा मोहकमें के दस नव हो उन पूर्वमें आसक्त न होना। फर्कतरु क्या जाव? इन्व ज्ञाननेमें जो पदाथ आई आनेकी राह-टोक नहीं हो सकती। नमें रागात्तर न करना ही संसार-बन्धनसे मुक्त होनेका अर्थिगत माग है। आत्मा इन्व परिक्रमि आत्मातिरिक्त पनात्तर ही कर्मात्तर हो -

हैं। कल्पितका अर्थ यह है जा जा पदार्थोंमें चित्तव्य कल्पना कर हम किसी पदार्थमें राग करते हैं और जो हमारे रागके विरुद्ध होत है उनको वियोगका यत्न करते हैं। इस प्रकार प्रक्रिया करते-करते अन्तमें हम पर्यायका अन्त आ जाता है। अनन्तर निस पर्यायमें जाते हैं वहाँ यही प्रक्रिया काममें लाते हैं। इस तरह अनन्त ससारके पात्र होते हैं। वास्तवमें न तो अन्त पदार्थ हमारा है और न हम मन्त्रमें हैं। तब क्या उनमें निज व कल्पना? यही कल्पना दूर करनेका अर्थ आगमाभ्यास है। आगम म तो इतना सुन्दर कथन है। यदि वह हमारे अनुभव में आना तब कल्याण मार्ग अति सुलभ होजाय।

आत्मा नामक एक पदार्थ है। उसका अनादितासे अनीय पुद्गलके साथ सम्बन्ध है। आत्मा चैतन्यगुणवाना द्रव्य है। पुद्गल जड़ है, उसका लक्षण स्पर्श, रस, गंध, रूप है। जहाँ ये पाये जायें उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गल के साथ जीवता के साथ सम्बन्ध है जो यह जीव उसका चित्त मान लेता है। चित्त मानकर उसको सदा रखनेका प्रयत्न करता है। यदि उसमें कोई बाधा पहुँचाना है तब उसे चित्त शत्रु मान लेता है।

( ध्यायण वक्ता ५ )

उचित और अनुचित विचारकर किसी कार्यमें प्रवृत्ति करनेका आरम्भ करा। उचित तो यह है कि प्रथम आपको जानकर सद्रूप रहनेका प्रयत्न करा। बात मरना यातुका काम करना है।

( ध्यायण कृष्ण ७ )

सुदृढताका अर्थ है, एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यसे नादा न्य नहीं। सम्बन्ध अनेक प्रकारके हैं। उनमें संयोगादि सम्बन्धका विषय नहीं। तात्कालिक सम्बन्ध मात्रका निषेध है। जैसे आत्माका जानने

साथ सादाख्य है, वैसा पुद्गलादि द्रव्यर साथ सम्बन्ध नहीं।  
अतः जो तिन जन्तु हैं उसीका अपात्रो।

( भावण कृष्ण ८ )

हे आत्मन् । सत्र उपद्रवोंसे पृथक् हानेकी चेष्टा करा । संसारम  
आपकी प्रवृत्ति ऐसी निर्मल करो जिसे देखकर अयका शान्ति  
पहुंचे । यह लक्ष्य मत रगो जा अयका शान्ति पहुंचे । परकी  
रुच्यना त्यागा । परसं कभी भी आत्मशांति नहीं । शांतिका कारण  
आपको आप रगो ।

( भावण कृष्ण ९ )

आपका काय कल पर मत छाड़ा, अथवा कभी भी कोई  
कार्य नहीं कर सगोये । जा काय करो, सागापाग करो । किसीने  
द्वारा यदि नस कार्यकी समालोचना हा तो यदि वह षचिन है तत्र  
उमे स्वीकार करो । और जा कायमे तोप हो उहें प्रथक् करा ।

( भावण कृष्ण १० )

धर्म अतीन्द्रिय नहीं, यदि काइ मनुष्य प्रयास करे तत्र धर्म  
तत्काल अनुभवमे आ सकता है । धर्म आत्माका वेदन परिणाम  
है । जिसने उद्यमे अनायाम समार वचनमे छूटकर वेदलदशा  
जीवकी हो जाता है ।

( भावण कृष्ण ११ )

संसारमें प्राणीमात्रर प्रति मद्रव्यग्रहारेसे प्रवृत्ति करा । किसीको  
तुच्छ मत मानो, तुच्छ मानना मान-कपायना शोतन है । मान  
रुपाय ही संसारम दुखदाता है । मनुष्योंम मनुष्यताका व्यवहार  
करो, क्योंकि जैसे आप मनुष्य हो अन्य भी मनुष्य हैं ।

( भावण कृष्ण १२ )

किसीसे द्वेषभाव न करा, द्वेषभासे पाप प्रवृत्तिर्याजा वच  
हाना है । प्रवृत्तिके उद्यमे निर्मलभाव नहीं होते, निर्मल भासोंके

अभावम निरंतर तीव्र संशयना रहती है। सफ़शता ही दुःखकी जननी है। बिना दुःखमे मुक्त होना हो ये रागादिक परिणामों से उचें।

( धावण कृष्ण १४ )

जब तब आप आकुलताके कारणोंम यन्त है, परको घीत रागताका उपदेश देकर उपदेशा जननेरी चेष्टा मत करो। जो प्रतिपा करो, उसका निराह करो। यदि अनुचित प्रतिज्ञा हो, उमना भग करनेम हा लाभ है। किसी भी मनुष्यने साथ अशिष्ट व्यवहार मत करो, चाह बह अपरा शत्रु क्यों न हो ?

( धावण कृ० २० )

आप स्वरायरा दिवस है, अत भारत सरकारकी ओरसे छुट्टी है। दिन आना जाना होता है। यदि उस घातका है कि हम लोग अपनेको नहीं समझालते। समारका उपदेश दते है, कल्याण मार्ग पर चलना, परन्तु हम स्वय कल्याण मार्ग पर नहीं चलते। अन्यको उपदेश दते है, क्रोध मत करो। हम स्वय भमारी अब खेलना करते हैं।

( धावण सु० २ )

ना क्रुद्ध धरा, विचारने धरा। विचारमे तात्पर्य आत्मतत्त्वको तीव्र समझो और उसीम रत रहा। तथा उमका देखना जानना ही माना। राग द्वेष औषाधिक भाव हैं, ज्ञानो त्यागो। जो तुम्हारी निरपेक्ष परिणति है, उमना आनर करो।

( धावण सु० ३ )

जिस कार्यो करनम उत्साह नहीं उस कामको मत करो। व्यव परिश्रमसे क्रुद्ध लाभ नहीं। मनरो स्थिर रखनेने लिए आत्म पोषरी महती आवश्यकता है। मन्थदशनका यन् अर्थ है जा

वस्तुको यथाव प्रतीत करा देव । सम्यग्दृष्टि जीव परके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि गुण निच वस्तु हैं ।

( ध्यावण शु० ४ )

जहाँ तक मेरे आत्माको प्रसन्न रखो यदि कोई अपमान करे तो दुर्गम मत होओ । प्रसन्न वृत्त विचारोंसे निचनी रक्षा करो । ज्ञाता, दृष्टान्त केवल अर्थ ही मत समझो प्रत्युत ज्ञाना दृष्टा रहो ।

( ध्यावण शु० ६ )

किसीके साथ स्नेह मत करा । मन्ह [ही] ध्यानना मूल है । स्नेहका मूल मिथ्यात्व है । मिथ्यात्व ही परम निचत्व कल्पना करता है । प्रश्न यदि ऐसा है तो मिथ्याज्ञान जाले जादू क्या पर पदाथमि राग होता है ? तत्रसे राग नहीं हाता, सम्कार के बलसे वह थोड़े काल रहता है पश्चात् अनायास चला जावेगा । किसीसे राग न करो, द्वेष तो सुतरा हेय है । रागमे मोक्षमार्गकी उपलब्धि का उपाय होनेकी सम्भावना है, परन्तु है राग पचना हेतु, अत हेय है ।

( ध्यावण शु० ८ )

निच कायमे करने योग्य सामर्थ्य न हा, उसे आरम्भ मत करो । पराश्रित जीवनको मत बनाओ । पर घर भिक्षायालोंको चित हैं जो दाताके घर पर भोजन मिले उसे मतोप पूर्वक भक्षण कर न्दरपूति कर लें । गृहताको त्याग भोजन करो । भोजन तो पर पदाथ है, इतने मुग्ध क्यों होते हो ?

( ध्यावण शु० १० )

मेरा स्वय विश्वास है, जो मनुष्य मात्र संयमका पात्र है । विकास उमकी योग्यताके अनुरूप होता है । किसीको तुच्छ

ममभक्ता मन्ता अज्ञानता है। उत्तम कुनम पैदा होनेसे ही आत्मा संयमका पात्र होता है, यह हमारी बुद्धिम नहीं आता।

( भावण शु० ११ )

शांतिमा माग कहों नहीं आत्मीय परिणतिम है। परंतु उसम मोहादिजन्य विचार न हाना चाहिये। मोहसे आत्माके पर पदार्थमे निजत्व भाव हा जाना है और जहाँ निजत्व हुआ, वहाँ ही राग-द्वेषको आश्रय मिलता है। जहाँ राग द्वेष हुआ वहाँ ही फिर संस्र करनेकी रचि होती है।

( भावण शु० १२ )

सबसे बलवान् पाप पर पदार्थमे निजत्वकी कल्पना है। जिस महापुरुषने इम छाडा, अपने मनुष्य जन्म लानेका फल पाया।

( भावण शु० १३ )

परकी रक्षा बर्हा कर मरता है, जा स्वय आत्माकी रक्षा करनेम ममथ है, जा आत्माकी रक्षा करनेम असमर्थ है यह क्या परका कल्याण कर सकता है? रक्षासे तात्पर्य आत्माका पाप से ग्रन्थ कर पाप नी समावनी जड है।

( भावण शु० १४ )

यह भारतवर्षमे अवस्था थी, ना पाँच बषके बालकाकी रचना इस प्रकारकी वणप्रिय आर भावपूर्ण होती थी। एव बालक उपार्यान है जा एव पंडितने समाव यह समस्या नी जो—  
 धाम कि कुर्म हरिणशिशुरेव निलपति”।

( भावण शु० १५ )

परकी समालोचना त्यागा, आत्माय समालोचना करो। समावोचनाम काल लगाना भा उचित नहीं। प्रत्युत यह काल उत्तम विचारोंमे लगाओ। आत्माका स्वभाव ज्ञाना इष्टा है, बर्हा

रहने दो। उसमें इष्ट अनिष्ट कल्पनासं बचा। जनादिनातसे यहां उपद्रव करते रहे।

( भाद्रपद कृ० ३ )

परके समागमसं लाभ भा हाता है और हानि भी हाता है। और न लाभ होता है न हानि होती है। जैसे जीवने मरनेपर हिंसा होती भी है और नहीं भी होती है। प्रमत्त योग सद्भावम हिंसामा सद्भाव है, अभ्यासमें नहा। इसा काय मात्रम यही प्रणाला है। स्वच्छ भावार्थी उत्पत्तिमा मूल कारण स्वयं है।

( भाद्रपद क० ४ )

बहुत विस्मय हाता ही दुःखमा मूल कारण है। आत्माना परिणाम दर्शन, ज्ञान है। उसमें जो इष्टानिष्ट कल्पना होती है, यही आत्मानो प तित बनाती है। फिर उस पतितको दूर करनेके लिए पतित पावन तक पुकार होता है। जब पतित पावन कोई साक्षात् मुननेवाला नहीं मिलता और जो कृतकृत्य आत्मा हो चुने, उनके इन्द्रियजय ज्ञान नहीं, जो उसकी पुकारको सुने। ज्ञानमें आनेपर भी मोहके अभ्याससे भक्तपर करुणा बुद्धि नहीं। फिर हम पत्थरकी मूर्तिमें भगवान्की कल्पना कर अपना दुःख मुनाते हैं। मुननेवाली मूर्ति ही तो है, हमके इन्द्रिय नहीं, कौन सुने ? आतसो-गत्वा यही समझम आता है, जैसे हम पापके कता हैं, तद्वत् हमारी आत्मा ही उमरु कारण करनेवाली है। तत्र सिद्ध हुआ, हम स्वयंही पतित हैं और स्वयं ही पतितपावन हैं। किन्तु हमारी अनादि कालसे श्रद्धा परम हा रही है। यही ससारका मूल कारण है।

( भाद्रपद क० ५ ६० )

अनादि कालसे पर पदार्थोंके सम्बन्धमें मोही, रागी-



रहा है, यदि यह आत्मीय ज्ञान, दर्शन पर ही आत्मीय स्वयं रक्ते तब आत्म-बन्ध्याणम मार्ग प्राप्त हो सकता है ।

( भाद्रपद ४० ८ )

आत्मीय परिणति से स्वच्छ रग्या, परन्तु भा जो यर्ता नहीं ससारका ठेका होता है । जो मनुष्य आत्म-बन्ध्याणसे बन्धित है, व ही समारम्भ बन्ध्याणम प्रयत्न करते हैं । परमात्मसे जो भी पदाय किसी पदायका कुछ नहीं कर सकता, प्रकृति लेमी होती है जो कुम्भकारने घट बनाया । कुम्भकारने प्रयत्न किया, कुम्भकार उम प्रयत्नका करता है ।

( भाद्रपद ४० ९ )

ससारम यदि शांति चाहत हो तब मयसं पत्ता परमे निवृत्त का कल्पना त्यागा । अनन्तर अनादिकालम वा यह परिषद पिशाचके आगेम आत्मीय पदार्थमि आत्मनिष्ठा संस्कार है, ज्ये त्यागो । हम आहादिक मज्ञाओंसे आत्म हृत् करनेका प्रयत्न करते हैं, यह मय भिर्या धारणा त्यागो । मतोपका कारण त्याग है । उम पर स्वयं बन्ध्याण करो । प्रतिदिन जो मस्ववादसे जगत को मुनमानेमी चेष्टा है, उसे त्यागो और आपकी मुलमानेका प्रयत्न करो । संसारम धर्म और अधम तथा ग्यान और पान यही जो परिषद है । यह जो धम है, जिसे ताकम पुण्य शब्दमे ब्यवहार करत हैं, तुम्हारा मयभाव नहीं । संसारम ही रगनेघाता है ।

( भाद्रपद ४० १० )

निःशङ्क रहो, यही मातृमार्गका प्रथम मूल मन्त्र है । गृहस्थोंके चक्रमें मत आओ । यह ही संसार वृद्धिकी मूल बड है । पराधी ही रहना और आपत्तियोंसे मुक्त करनेवाता है । आत्मा जहाँ पराधीन हुआ, यहीं अनेक प्रकारसे मङ्गलोंम पड़ जाता है ।

क्रिस्तीको बचन मन दो, जा आपका परिणतिका पराधाननाम  
मन रखो ।

( भाद्रपद कृ० ११ )

दृष्टम प्रतिज्ञाके अनुमार कार्य करनेवालोंका सिद्धि हस्ता  
मलकरत् हे । बहुतसे मनुष्य भ्रंसारम ग्यातिकी चाहस नाना  
प्रकारके कष्ट उठाते हैं । अततो गत्या यदि लौकिक यश न मिला  
तय पश्चात्तापके पात्र होते हैं । यदि शांति और सुखकी कामना है  
तय इन विरुद्धोंका छोड़ो और सरल भावोंसे काम करा ।

( भाद्रपद कृ० १२ )

जा निभय होते हैं, व ही काय करनेम उत्तीण होत हैं । ससार  
रागादि परिणामोंके द्वारा जाव और पुद्गलकी विभाव पयाय  
है । विभाव पर्यायकी उत्पत्ति ही पदार्थोंके विनक्षण सम्प्रथसे  
होती है । एक स्थान पर रजन और स्त्रणका पिण्ड रमा है इससे  
उनम विभृति नहीं हाता । किन्तु जन दोनोंका याग कर एक पिण्ड  
यना क्रिया जाता है तय विभृति हो जाते हैं । एय जीव और पुद्गलका  
विनक्षण सम्प्रथ हा ससारका जनर है । किन्तु इनम पुद्गल  
अचेतन है, इसको यह ज्ञान नहीं जा हमारी विभृतामस्थाम कारण  
जीवका विभाव परिणाम है । अत उसके प्रति बदला लनेकी चेष्टा  
है । जायमे चतन गुण है, अत पदार्थोंके साक्षाभ्यन्तर कारणोंको  
चान उनके पृथक् करनेका प्रयत्न करता है ।

( भाद्रपद कृ० १३ १४ )

मैं इन सबका ज्ञाता दृष्टा हूँ, ऐसी मेरेम शक्ति है । अनादिसे  
स्वभाव मेरा सेर साथ है, किन्तु इसम यह दोष आ गया जिसको  
मैं देखता हूँ । उसको निन मानने लगा । यही महता श्रुति हुई ।  
दर्पणम स्वच्छता है और उसका कार्य म्त्रपरप्रकाशकर है । जैसे  
दर्पणम अग्नि मूलपती है ।

( भाद्रपद कृ० ३० )

स्वाधानता ही मुख्यका बनना है। परत-श्रुतासे आत्मविक्रमम वाधा आती है। परने ध्यान करनेसे आत्माकी क्षति नहीं, उसम राग द्वेषकी कल्पना ही क्षतिकारण है। राग द्वेषकी उत्पत्तिका मूल कारण तो आत्मा ही है। परन्तु जिसमें मोहनीय बर्तकी सत्ता हागी, वही आत्मा रागादि परिणामका पात्र होगा।

( भाद्रपद शु० १ )

परका समागम ही दुःखका निमित्त है। मोह, राग द्वेषके लिए इसका अंश पयाप्त है। महान् पुरुषोंने इसीसे ध्यानी रहना इष्ट किया। यहाँ तक महापुरुषोंने विचार किया, जो हमारे आधुनिक मनुष्योंके यानम उनके विचारोंका आभास भी नहीं होता।

( भाद्रपद शु० २ )

चित्तम निमतता रम्यना। अपनी कपायको अपनी न समझो। जब अपनी नहीं तब उमे रखनेका प्रयास ही क्यों? आप तो ज्ञानादि गुणाना पिण्ड है, तब उममें अन्यको रखनेकी चेष्टा क्यों?

( भाद्रपद शु० ४ )

हम अपनेको भीरु समझते हैं यही हमारे ज्ञानमें बाधक है। जिस दिन हम सिंह बन निमग्न हो जावेंगे, अनायास आत्म कल्याण मन्निहित है।

( भाद्रपद शु० ५ )

दिन शांतिसे यापन करा। 'मगयसार' म यह दिखाया है जो सप्रद्रव्य अपने अपने स्वरभाषम परिणमन करते हैं। अन्य द्रव्यका परिणमन करानेमें समर्थ नहीं। इससे यह न समझना, जो श्रीकृन्द कृन्द महाराजने निमित्तको मेटा डो, उपादान कारणकी अपेक्षा यह कथन है।

( भाद्रपद शु० ७ )

सत्यका अर्थ हैं यथायस्तु तथा निरूपण करना। शास्त्रके द्वारा निरूपण होता है। यह डडा लेकर प्रवृत्ति नहीं करता तथा यह भी नहीं कहता कि तुम हमसे आचरण करो। हमका उचिन है कि हम स्वयं मार्गपर चलकर उमसे लाभ उठाये। मन्वि लाभकी आशा छोड़कर हमपर अमन करना ही आत्मनल्याणका साधक है। व्याख्यात देकर मनुष्य जगतको प्रमत्त करना चाहते हैं। आत्माको प्रसन्न करनेकी अश्वेलना करते हैं। फल हमका उत्तम नहीं, उत्तमता तो इसमें है जो निरन्तर पापासे ग्रथ्य रहनेकी चेष्टा करा। पापका मूल कारण राग है, इसका निपात करो।

( भाद्रपद शु० १-९ )

तत्त्वसे देखा तब आत्मा ता निर्विकल्प है। उसमें यशोलिप्सु ही व्यर्थ है। यश तो नामरूपकी प्रवृत्ति है। यशसे बुद्ध मिलता जुलता नहीं।

( भाद्रपद शु० १० )

आपको निर्मल मनानेका प्रयास करो। परकी चिंता करनेसे कुछ लाभ नहीं। पर पदार्थके परिणामके तुम वक्ता नहीं और न दाता भी हो। व्यर्थके सकल्प विकल्प जालम अपनेको फँसाते हो। विचारो तो सही, बन्दर चनेके लोभसे घटमें अपने दोनों हाथोंको फँसा लेता है। धिक् ! इम लोभको।

( भाद्रपद शु० ११ )

मंमारकी लीला अनन्त नहीं, कथायाभ्यसान अमंग्यान्त लोभ प्रमाण ही तो हैं।

( भाद्रपद शु० १२ )

निरन्तर स्वात्मचिन्तन करो। इसका अर्थ यह है कि तुम अकेले हो, यह शरीर भी पर है, इसका स्वभाव अर्थ है। तुम देखने-जाननेवाले हो। यह दृश्य है, इसमें तुम्हारा अंश भी नहीं।

सका अंश तुममें नहीं, व्यर्थ जालम भत पड़ो । जालम फेंकनेका कारण तुम्हारा लाभ है,—"ताम पापका ताम बग्याग ।"

( भाद्रपद शु० १३ )

निर्भीक होकर काम करा । भय पापसे करा । उत्तम अभिप्रायका यत्न करनेमें मरुच गत करो । निसन उत्तम बातका प्रचार न किया यह मनुष्य गणनाका पात्र नहीं ।

( भाद्रपद शु० १४ )

मरसे महान बधन संसारमें परका निवृत्त मानना है । आनन्द कीरका आत्मा मानकर सम्पूर्ण जगत अनन्त दुःखका पात्र होना है । यदि दुःखमें मुक्त होना चाहते हो, परम भगवत त्याग ।

( भाद्रपद शु० १५ )

सबसे प्रथम आत्माकी आराधना करा जा भाग्य दिखाने ला है । यही आराध्य देव है । उममें अचिन्त्य सामर्थ्य है । यह है तो आत्माको ऐसे स्थानपर लेनाये जहाँ पर आसम अठारह रजम-भरण अनन्तकाल भुगतना पड़े । और यह चाहे तो ऐसे पापर ले जावे जहाँसे फिर आगामी फल नहीं पुनरागमन नये । यह लिगना सहज है, परन्तु करना कठिन है । त्रिभुवनका जाल मरल है, किन्तु उसका करना अति कठिन है । कठिन ही में अति कठिन है । अतः जिन्हें सुख चाहना है उन्हें विकल्पोंका त्याग करना चाहिए । केवल कथा करनेसे कांड लाभ नहीं ।

( भाषिण कृ० १२ )

परमार्थमें क्षमा, अंतरंग शक्तिभावकी प्राप्ति हो जाना यही है । किन्तु हम लोग परते क्षमा भोगते हैं और परतो देते हैं । यह उधार है, उसे त्यागना ही भय है । इसपर लोगकी दृष्टि नहीं ।

( भाषिण कृ० १३ )

ना काम करा, दृढ निश्चयसे करो । परकी कल्याण कथा

जो। श्रेयोमार्ग पर नष्टिपान करा। केवल गल्पवादमें समझ न  
माओ।

( भाषित्व कृ० १ )

आत्मद्रव्य है उमम क्या प्रमाण है ? आपका च्छेना हा  
समें प्रमाण है। आपके यह भाव हुआ, जा मैं ध्यान है ? निम्न  
द इच्छा हुई यही ता आप हो।

( भाषित्व कृ० २ )

काम समासम दु सकी सनि है और अर्थ अनन्त वस्तु  
। इन दोनोंका मूल धम (गुण) है। अत इसमें आरम्भ  
पुत्र मित्र-कलत्राणि न हि सुखकाण्णि, एतानि त्रीणि  
रित्यज्य मोक्षमार्गे प्रवृत्ति कुरु।

( भाषित्व कृ० १० )

परके ऊपर दया करना उमम वचिन है ज न न समझे या  
रनेवाला मैं कौन हूँ ? जब मैं स्वयं तु त्वा परक ऊपर क्या या  
हूँगा ? तिसपर दया करता हूँ, त्मे लघु मान्ना है। यहा तो  
महती अज्ञानता है।

( भाषित्व कृ० ११ )

परसे समागम करना हा परम दुःख कारण है। तुम अन्य  
वस्तु नहीं, आत्माम आहुलता ही दुःखों जनना है। यदि इसका  
प्रयत्न करनेकी इच्छा है तब परक समागमका त्यागो। गल्पवादमें  
कुछ नहीं होता। कर्तव्य परम आत्मा, कुछ करके दिमाओ।

( भाषित्व कृ० १२ )

व्यग्रता त्यागो, कोई भी वाय हा शान्तभावम करो। शांति  
अर्थ अशांत होना महान् अनर्थक वृद्ध है। अन्य परम्परसे  
काति बहुत दूर हो जाता है। अतः काइ भी परिस्थिति आजाव

असम व्यस मत होआ । न्यप्रतामे वायम धाधा ही हागी । केवल शातिका लाभ भा ७ हागा ।

( भाषित शृ० ३३ )

अनेक प्रकारके विकल्प उक्त हैं जिनमें प्रायः व्यथ हैं । जिनमें तो यह है कि मय कल्पनाओंका त्यागकर कष्टों का भय ही रह जाय । फिर भी पत्नीके सदृश कष्टों का भय ही आप कल्याणका विषय रह जायेगा । उम्र पान्थम जिन कल्पना ज्ञानमें नाना प्रकारके आशुताजय दुःख होत थ य स्वयमेव शान्त हो जायेंगे ।

( भाषित शृ० ३० )

प्रत्येक प्राणीको सुभागम लगानेका प्रयत्न करो । किसीका भुरा मत समझो । मय प्राणी आत्म्याय परिणतिके अनुकूल प्रयत्न करते हैं । ज्ञान विम्वे आप विपरीत मान रहे हो, कल उर्माको सुपरीत समझन लगागे । जैसे शीतपानमें पान गुलाता है, यही गर्मीमें पान अमुहायता लगता है । अतः मद्दता कोइ सिद्धांत स्थिर मत करो ।

( भाषित शृ० २ )

चिरागी व्यसतामे कोई भी इष्ट सिद्धि नहीं हाती । केवल पापका यथ होता है । पुण्य-पाप दोनों विकृत भाय हैं । इनसे पर जो भाय है यही शातिका दाता है । शाति संसारम यही नहीं, शातिका उदय स्वयं आत्मामें हाता है । आधश्यकता स्वयं साकी है ।

( भाषित शृ० ३ )

कोईका अनिष्ट चिन्तन मत करो । किसीका हित हो इसका हर्ष मानो । परका उत्कर्ष देगकर हर्ष मानो । किसीको दुष्ट देग उसे सज्जन धनानेकी चेष्टा करो । उसकी निन्दा मत करो । कर्मके

विपाकसे प्राणी कहीं-कहीं नहीं जाता । यह सर्व विवृत परिणामोंका ही तो निपाक है, उन्हें त्यागो ।

( भाषित्तु ४ )

परकी आशासे जो कल्याण चाहते हैं वह गर्तमें पात करते हैं ।

( भाषित्तु ६ )

जिससे मनम क्लुपना आये, वह परिणाम त्यागो । पर पतार्थ को दुःखगर्णी मत मानो । आभाम जो ज्ञान त्यज हो उस परसे त्रिगुद्धता और सकलशतानी कल्पना करो । परका व्यर्थ उपासम्भ मत वा । यह तुम्हारी कल्पना ही तो है उसका अश भी तुममें नहीं आता ।

( भाषित्तु ८ )

पाप कार्यासे भय करो, अन्यसे भय करनेकी आवश्यकता नहीं । निव स्वरूपकी आराधना करो, परकी आराधना बुद्ध लाभ-प्रद नहीं, समारणी जड़ है ।

( भाषित्तु ९ )

यही महान् पुरुष है । जो अपने दोषोंको देखकर श्रयक् करनेकी चेष्टा करता है ।

( भाषित्तु १० )

निष्कार रहो । भयसे आत्मा पतित होनारगा । मोक्ष-भागसे कञ्चिन्ना होना पड़ेगा, पाप मत करो । परमेश्वरकी आराधनाकी आवश्यकता नहीं ।

( भाषित्तु ११ )

ईश्वरकी ज्यासनासे ईश्वर नहीं हांता और धनादिने व्ययसे आत्मा शान्ति नहीं पाता । आप स्वयं अपनेको अपनाथो, यही शान्ति और सुखका भाग है । आगम पढनेसे आत्मा ज्ञाना व्यर-हारमें हांता है, परंतु उसमें पारमार्थिक ज्ञानना लाभ नहीं ।

( भाषित्तु १२ )



परका सम्प्रथ जगतन है तत्र तक हा समार है । परके सम्प्रथना अर्थ यह है जा निम भावसे परको अपना मानता है वही त्यागने योग्य है । अथवा जा भाव हो गया उमका त्याग ही क्या हो सकता है ? उसम ज्पेक्षा युद्धि ही ( अष्ट है ।

( आश्विन शु० १३ )

निर्मल परिणामका यह अर्थ है जा आत्माम कर्तुपता न आवे । कर्तुपताका यह अर्थ है जा आपकी परिणतिको मोधादि रूप न होने देवे ।

( आश्विन शु० १४ )

आनन्दमे जीवन यापन करो, विशेष चिन्ता त्यागो । कंमे ही प्रबल उपदेष्टा उपदेश देकर सुधारनेका चेष्टा करे और तुम उमके मर्मको जान नाओ, परतु जगतन परपदाथासं भ्रमत्व न त्यागोगे तत्रतक भांके भौंदू रहोगे । पर पदाथाका सम्पक छूटना ही कन्याणका भाग है ।

( आश्विन शु० १५ )

विराध आनेपर संतोष करो, जिना विरोधके कार्यसिद्धि नहीं हाती । विरुद्ध सामग्रीने समयधान होनेपर जिसके आभाम विवाद नहीं होता वही पक्का योद्धा है । समरभूमिम निमने पाठ दिया ही बंद शूर नहीं, कायर है । कायरोंसे देशका बल्याण नहीं ।

( कार्तिक कृ० १ )

बहुत विमल्प करना अपनेको दुर्गी जनानेका उपाय है । आपको आप रहने दो, फिर किन्ही आराधनाकी आवश्यकता नहीं । जा मनुष्य अधिक विकल्प करत ई वे किन्ही कार्यके अधिकारी नहीं । क्योंकि सामग्री अल्प विमल्प बहुत, अत जो सामग्री दे वह भी बेकार जाती है ।

( कार्तिक कृ० २ )

शान्तिमेवैतन्मन्त्रं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 यानि हे । इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 विमुक्तहासः । इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 निता रोहिणे इत्येवमेव है । इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 वा वृष्यान्तरे ॥

वृष्यान्तरे

विना कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 वा, इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 देवता-इत्यादि हे । इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 हाते है इत्येवमेव है । इति कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 पुत्रवाम दत्तयेव है ॥

वृष्यान्तरे

अनेक मन्त्रानि कर्तव्यानि कर्तव्यानि कर्तव्यानि कर्तव्यानि  
 रमदा मन्त्र कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 है । शान्तिमेवैतन्मन्त्रं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं

कर्तव्यं

व्याजान् कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं

कर्तव्यं

वा कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 जा मित्रं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 यदि कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 प्रामिणे कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं

कर्तव्यं

विना कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं  
 कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं कर्तव्यं

तक कह, परमात्माको भी थपना मिा मत मानो । यह तो भीत राग है ।

( कातिक कृ० १० )

निमी कायरी चिंता मत करो । कार्यकी सिद्धिका मूल कारण उत्साह है । उत्साहहीन मनुष्य कुछ नहीं कर सकता । आत्ममे अनंत शक्तियों हैं । उनके कार्य उत्साहसे ही व्यक्त होते हैं । मोही जीव निरन्तर टुटती रहते हैं ।

( कातिक कृ० ११ )

त्रिसीसे भी स्नेह न करता । समारका मूल कारण यही है । वल्कि यहा स्नेह ससार है । इसके सत्त्वम ही तिल घानीमे पैला जाता है । लोभ भी स्नेहकी पर्याय है । निन्होने इसको घरा किया घनी परमेश्वर है ।

( कातिक कृ० १२ )

परको प्रसन्न करनेकी अपेक्षा आत्माको आत्मा जानो । इतरको आत्मा मत जानो । सर्व आत्मा आत्मीय परिणामने कत्ता हैं । तुम यर्थ कर्त्ता बनते हो ।

( कातिक कृ० १३ )

प्रतिष्ठा की लिप्ता पतनका कारण है । जैसे तो परको निज मानकर आभा बैसा ही है । प्रतिष्ठाका अर्थ है, हम समारमे उच्च कहलाएँ । उच्च-नीच दोनों ही विकार हैं । इनम हर्ष विपाद ही ससारका कारण है । ससार दुःखमय है । जो समारके कारणोंमें रत है वह मूढ है ।

( कातिक कृ० १४ )

सग सग छोड़ो और एकाकी रहो, इसीमे आनंद है । परना समागम ही आपत्तिना मूल है । आपत्तिना अर्थ यह है जो परके

समागमसे प्रथम तो उममें ममता बुद्धि होती है। ममतामे ममताका अभाव होनाता है। तत्र आत्मा दुरी होता है।

( कार्तिक शु० १ )

आत्मा जो बड़े, सो करो। यही कन्याणका भाग है और जहाँ कन्याण है वहीं शान्ति है। शान्तिमे अर्थ सर्व प्रयास है। विना शान्तिके कुछ नत्त्व नहीं। अथान् इसी प्रकार मसारकी यातनाएँ सहन ! करनी पडेंगी। केवल गन्पनाकी प्रवृत्तिसे मसारको थाना है।

( कार्तिक शु० ५ )

सकोचका त्याग करो। कोपीनमात्रकी लालसा अविचन भावनाकी बाधिका है। मसारकी चिंतासे वहाँ तक शान्ति मिलेगी ? बुद्धिम नहीं आता। रात-दिन उत्तमसे उत्तम ग्रन्थोंम विवेचन मिलता है। परन्तु हम वही के वही हैं।

( कार्तिक शु० ७ )

बधन ही दुरगता मूल है। बधन स्नेहमूलक है। स्नेह मोह मूलक है। विना पर द्रव्यमे निवृत्तका कल्पनाके राग नहीं। जत्र हम पर का अपना मानते हैं तत्र इन विकारों की सृष्टि होती।

( कार्तिक शु० ८ )

सकोचसे सब प्रकार हानि होती है। प्रथम तो अपना आत्मा भयभीत हो जाता है। तथा ययार्थ बात न करनेसे अन्यथा वास्तविक जो कार्य है वह रुक जाता है।

( कार्तिक शु० ९ )

प्रकृति नाम स्वभावका है। जिसकी जो प्रकृति है उसे अवयवा करनेको कोई समर्थ नहीं यह सत्य है, परन्तु ऐसा नियम है, अज्ञानता अभाव कर सकते हैं, क्योंकि यह पयाय है। पयाय

क्षण-भगुर हे । एकरे द्राद अन्य पयाय होती, हे । यदि मोह मिट जाये तत्र आत्माम अज्ञान पयाय मिट सरती हे ।

(कार्तिक शु० १०)

परमायसे प्रियार किया जात्र तो लोकित्र प्रतिष्ठा पतनरा ही कारण है क्यारि उत्तम हर्ष मानना ही बधका जनक है । बध म मूल कारण मोह है ।

(कार्तिक शु० ११)

धार्मिक मनुष्योंरे मद्वान्ममें त्रिन रिताओ । गल्पनादवाले मनुष्यारी सगति त्यागी । जा त्यागी भी हो, यदि बढ लिप्सायान है तत्र उमरा समागम त्यागी । धार्मिक मनुष्यारी वृत्ति देवपर प्रमोत् भायना भायो ।

(कार्तिक शु० १२)

आत्म द्रव्य ज्ञान-शानरा पिण्ड है किन्तु अनादिकालसे शरीर का सम्बध है । अत शरीरके साथ मोह है । उसकी रक्षाके लिए आढारादि विविध उपाय जीर करता है ।

(कार्तिक शु० १४)

त्याग उत्तम धम्नु है परन्तु उसरा स्वरूप समझनेमें कुछ भ्रान्ति है । जैसे स्नान करनेसे शरीरम स्फुति आती है । शरीरारी निमलतासे हम अन्ध्रा कार्य कर सरते हैं ।

(कार्तिक शु० १५)

जो मनुष्य न्दतम विचारम गिरे हैं उनसे न तो न्म लोक सम्बधी कार्य हो सगता है और न परलावरा हो सरता है ? ये हम लोत्रसे भा पतित हैं और परनोत्रमे भी बद्धिन हैं । आम बल्याणरा मार्ग उपेक्षा है । न्पेक्षा ससारका नाश करनेवाली है । समाररा कारण मोह राग-द्वेष है । हममे मोह ही मुख्य है । यही परम निवत्य कल्पनारा कारण है ।

(मार्गशीर्ष शु० १-२)

बहुत विवादसे कई स्वात्मसिद्धि नहीं होता। स्वात्मसिद्धि का मूल कारण पर पदार्थसे सम्बन्ध छोड़ना है। पर पदार्थ लुप्त नला त्कार नहीं करता। जो तुम्हें ग्रहण कर यह आत्मा अपने राग भावसे स्वयं किसीको ग्रहण करता है और किसीको त्यागता है। ना अनुमूल है उसे ग्रहण करता है, प्रतिफलका त्याग करता है।

( मार्गशीर्ष कृ० ३ )

इस भीषण समारम अनादिमे यत् नीर पर पदार्थम नितत्वकी कल्पना करता है। जिसमे नितत्व मानता है उसे अपना नेकी चेष्टा करता है। उसमे अति प्रेम करता है, मका मिसा प्रसार जाधा न पहुँचे ऐसा प्रयत्न मतत करता है। यत्ति उमने प्रतिमूल हुआ तत्र उससे पृथक् होनेका चेष्टा करता है।

( मार्गशीर्ष कृ० ४ )

इस ससार अटवीम अनन्तकाल भ्रमण करते-करते प्राण यह अलाध मनुष्य पयायका लाभ हुआ। यह भी कथनमात्र है, अनन्त बार यह पयाय पाया। पयाय ही नहीं पाया, अनन्तबार त्रयमुनि होकर अनन्तबार मैत्रेयक तप गया जर्णोइमतीस सागरकी आयु पाइ, नच्यपिचारम समय गया, किन्तु स्वात्ममानसे वञ्चित रहा। अत्र अक्षमर अन्ध है यदि अंतरगसे परिश्रम किया जावे तत्र अनायाम ज्ञानका लाभ हो सकता है। भेदज्ञान यह रस्तु है जिससे हाते ही यह आत्मा अनन्त समारके वधनका छेद सकता है। भेदज्ञानके अभावम जो हमारी रशा ने रही है वह हमको विदित है। उसने जिना हम परको अपना मानते हैं।

( भिण्डक मागम मार्गशीर्ष ६-७ )

हम निरन्तर यही प्रयास करते हैं जा यह पदार्थ हमारे अनुमूल रह। पदार्थ दो तरहसे हैं-एक चेतन और एक अचेतन। अचेतने पदार्थ तो जड हैं। उनम न तो राग है और न द्वेष है।

यह न तो किसीका भत्ता करते हैं और न किसीका घुरा करते हैं। हम व्यथ अपना रुचिसं अनुकूल प्रतिकूल दम कल्पनिघ्न घुरा-भला मान लेते हैं। इसका कारण हमारी रुचिभिन्नता है।

( मार्गशीर्ष ४० ८ )

पत्तारिका उत्पत्तिम केवल उपानान कुट्ट कर सकता है और निमित्त कुट्ट कर सकता है। यद्यपि कायका प्रहण उपानानमें ही होता है।

( मार्गशीर्ष ४० १० )

सामग्रीकार्यकी उत्पत्तिम सहायक होती है। सामग्रीमें एक उपादान और इतर सहायकी अनेक होते हैं। जैसे कुम्भकी उत्पत्तिम मिट्टी उपानान और कुम्भकार आदि सहायकी होते हैं। इन सहायियोंमें चेतन भी होते हैं और अचेतन भी होते हैं। अचेतन कारण ही चाहे चेतन ही, बलात्कारसे कार्य उत्पन्न नहीं करत। किन्तु उनकी सहायिता अति आवश्यक है।

( मार्गशीर्ष शु० ४-९ )

गल्पवात्से आत्मा सुमागसे न्युत हो जाता है। आत्मान जो आहुतता होती है उसका एक कारण यह गल्पवाद भी है। पर पत्तारिका परिणामना होता है। इसमें आपका न लाभ है और न हानि है। तुम व्यर्थ उसे अपना मानकर दुःखमें भोक्ता बनते हो।

( पूर मार्गशीर्ष शु० १२ )

ह आत्मन्। तुम्हारी शक्ति अचित्य है। अतीत पत्तारिकामें तुम घोरर समारकी विभूति निघाते हो। और जिस दिन उनसे सम्पर्क छोड़ दोगे, आनन्दके पात्र होंगे। व्यथ मायाके जालमें पड़कर अपनी परिणतिको कल्पित करते हो।

( पूर मार्गशीर्ष शु० ११ )

परिणामोंकी जाति असत्य प्रसारकी है। ज्योंतन बने इसे न्यून करो। विकल्पनाल ही से आकुलता होती है। ज्ञानमे ज्ञेय आनमे कोई प्रसारकी आकुलता नहीं। आकुलतारा उपादान मोह राग-द्वेष है, कहना कुट्र और करना कुट्र यही महती अज्ञानता है।

(चम्बलतटपर मार्गशीर्ष शु० १५)

ज्ञानारण आत्मासे ज्ञानगुण विद्यनन प्रकाश प्रकट नहीं होना देना। उसमें मूल कारण मोह परिणाम है जो यह दुदशा कर रह है। जिन महापुरुषोंने इसपर विनय प्राप्त की व अन्य हैं।

(मार्गमें पौष कृ २)

जो स्वाभिमानी है वह इतरको तुच्छ मानता है। इतरको उत्कर्ष न सहना यही महती अज्ञानता है। जहाँ अज्ञानता है वह पर भेदज्ञान होना असम्भव है। सर्वजीव सामान्य रूपसे, समान हैं कमकृत भेदमे भिन्न हैं। कोई उत्तम है, कोई मध्यम और जघन है। इन भेदासे सर्वथा तुच्छ मानना ज्ञानी जीवोंरा अच्छा नहीं।

(मार्गमें पौष कृ ३)

परमाथसे देखा जावे तब केवल निवर्ती परिणतिसे हम च्युत हैं। अत इन लोगोंने चक्रम आजाते हैं।

(पौष कृ० ४)

परका समागम सुखद नहीं, क्योंकि परके समागमसे अनेक विकल्प होते हैं। विकल्प ही आकुलताके जनक हैं। आत्माने ज्ञान है। उसमे यह उस विकल्पके अनेक अर्थ स्वरचिके अनुकूल ही लागता है। और कुट्र यथाथ भी लगता है तब उनको रखनेके चेष्टा करता है।

(पौष कृ० ५)

परके समागममे अनिष्ट और इष्ट कल्पना मत करो। इष्टा निष्ट कल्पना अतरगसे होती है। अत यदि समागमको नहीं



चाहते हो तब अन्तरंगकी उल्पना त्याग दो। परको इष्ट अनिष्ट माननेकी बातको त्यागो। दोष आपसे दगो, तभी सुभाग मिलेगा।  
( पौप कृ० ६ )

आप मन पूर्ण हुआ और कतमे सन उदत जायेगा। समारका चक्र इसी प्रकार चल रहा है। इसमें हर्ष निपादकी बात नहीं। समारकी दशा मदा यदा रहेगा और हम जैसे ही जैसे ही रहेंगे। बहुत अभ्यास किया परन्तु शानिते पायम असक्त ही रहे। इसका कारण माहकी बहुलता हा पाइ गई।

( पौप कृ० ७ )



